समय प्रवाह

Blank Page

समय प्रवाह

गोपाल जालान

विशाल प्रकाशन
गुवाहाटी

SAMAY PRAVAH

A collection of various Articles written in Hindi by
Gopal Jalan and published by Brajen Nath Deka
Guwahati of behalf of Vishal Prakashan
Rajgarh Link Road, Guwahati- 3
First Edition : September, 2019 Price : Rs. 200/- Only

ISBN :-978-93-82587-77-4

समय प्रवाह

प्रकाशक: ब्रजेंद्र नाथ डेका
विशाल प्रकाशन, राजगढ़, गुवाहाटी-3
फोन : 98640-38814
लेखक द्वारा सर्वाधिक सुरक्षित
प्रथम प्रकाश : सितंबर, 2019
मूल्य : 200/- रुपए
मुख्य पृष्ठ : मोंजित मालाकार
अलंकरण : दुर्गाप्रसाद हाजरिका
डी.टी.पी. : केदार नाथ दास
मुद्रण : शराईघाट फोटो टाइप
बामुनीमैदाम, गुवाहाटी-21

सादर-समर्पित

पुज्यनीय पिताश्री स्वर्गीय वासुदेव जालान
और माताश्री स्वर्गीय पुष्पा देवी जालान की
पवित्र स्मृति में यह पुस्तक समर्पित करता हूं ।

-गोपाल जालान

Blank Page

लेखक के दो शब्द

'समय का प्रवाह' कभी रुकता नहीं है। जो कल था, वह आज नहीं है और जो आज है, वह कल नहीं रहेगा। लेकिन आज और कल के काल खंड की महत्वपूर्ण घटनाओं को तो सहेजकर रखा ही जा सकता है। 'समय प्रवाह' ऐसी ही महत्वपूर्ण घटनाओं का एक लेख संग्रह है, जिन घटनाओं ने समाज जीवन के साथ ही देश-दुनिया को जागृत करने और मनन-चिंतन करने को प्रेरित किया। ऐसा प्रयास कोई नई बात नहीं है। प्राचीन गुफाओं की दीवारों पर हजारों साल पहले उकेरी गई चित्रकारी और ताम्रपत्र-भोजपत्र पर उस जमाने की लिखी गई बातें आदि बीते समय को संभालकर रखने जैसा ही तो है। लेखक, चित्रकार, गायक, नाट्यकार सभी लोग अपने-अपने तरीके से किसी घटना अथवा कालखंड को बांधकर रखने का प्रयास करते हैं। मौजूदा पीढ़ी की यह जिम्मेदारी भी बनती है कि वह अपनी आने वाली पीढ़ी को गुजरे जमाने की घटनाओं के बारे में बताए। वह युवा पीढ़ी को यह भी बताए कि उनके समय घटी किस घटना ने समाज और देश-दुनिया को किस तरह से प्रभावित किया। कौन-सी घटना अनुकरणीय और समाज को प्रभावित करने वाली थी और किस घटना से बचा जा सकता था। उड़नपरी

हिमा दास का नाम जब किसी के जेहन में आता है तो वह व्यक्ति जरूर सोचता होगा कि उसकी बेटी भी हिमा दास जैसी बने, लेकिन कोई भी असमवासी यह नहीं चाहेगा कि बेलतला कांड अथवा जीएस रोड कांड जैसी घटना किसी भी देश अथवा सभ्य समाज में घटे। इसी नजरिए को सामने रखकर प्रस्तुत लेख संग्रह 'समय प्रवाह' आपके सामने है।

मेरे इस लेख संग्रह में शामिल किए गए सारे लेख हिंदी दैनिक 'दैनिक पूर्वोदय' के अलावा राज्य के अन्य असमिया दैनिकों में प्रकाशित हो चुके हैं। दैनिक पूर्वोदय के प्रबंधन मंडल एवं संपादक मंडल के प्रति मैं हृदय से आभार प्रकट करता हूं कि मेरे लेख को अखबार के नियमित स्तंभ में प्रकाशित किया। मैं उन सभी पाठकों का भी धन्यवाद करता हूं, जिन्होंने मेरे लेख पढ़ने के बाद मुझे फोन कर मेरा हौसला बढ़ाया और अपने बहुमूल्य सुझाव भी दिए। मैं विशाल प्रकाशन के प्रमुख ब्रजेंद्र नाथ डेका के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूं, जिन्होंने मेरे लेख-संग्रह को पुस्तक के आकार में प्रकाशित किया। 'समय प्रवाह' की सार्थकता पर विचार करने की जिम्मेदारी अपने पाठकों पर सौंपता हूं।

गोपाल जालान

भूमिका

समय प्रवाह दरअसल श्री गोपाल जालान के विचारों का प्रवाह का संकलन है। जब कहीं कुछ घटित होता तो किसी भी संवेदनशील व्यक्ति को स्पंदित करता है। घटना चाहे आस-पास की हो या दूरदराज की, किसी भी विचारवान को वह प्रभावित करती हैं। संवेदनशील व्यक्ति अलग-अलग माध्यम से अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। गोपाल जालान कलम के धनी हैं और इसीलिए वे अपनी प्रतिक्रिया शब्दों और वाक्यों के माध्यम से व्यक्त करते रहे हैं। वे असमिया और हिंदी में समान रूप से लिखते रहे हैं। उनके लेखन का क्षितिज काफी व्यापक है। वे प्राय: हर क्षेत्र की घटनाओं पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते रहे हैं। इसी से पता चलता है कि उनके देखने और परखने का दायरा कितना व्यापक और विशाल है।

कई बार ऐसा भी होता है कि हम जिसे सामान्य बात मानकर आगे बढ़ जाते हैं, लेकिन वही बात किसी संवेदनशील व्यक्ति को प्रभावित करती है। उदाहरण के लिए जालुकबाड़ी में बना उड़नसेतु। हम अक्सर उधर से गुजरते हैं, लेकिन ध्यान नहीं देते कि यह जगह गुवाहाटी का

प्रवेशद्वार है। एक तरफ डॉ. भूपेन हजारिका की समाधि भी है। लेकिन उसी उड़नसेतु पर सड़क के किनारे अवैध रूप से खड़े वाहन यातायात के संतुलन को बिगाड़ते हैं। अनायास जाम की स्थिति पैदा हो जाती है, जो नहीं होनी चाहिए। यह स्थिति किसी भी बाहरी व्यक्ति के लिए गुवाहाटी में प्रवेश करने के पहले ही इस शहर के बारे में एक नेगेटिव राय बनाने को मजबूर कर देती है।

समय प्रवाह में विभिन्न घटना-गतिविधियों पर लेखक की अपनी प्रतिक्रिया का संकलित रूप है। गोपाल जालान नियमित रूप से दैनिक पूर्वोदय में लिखते रहे हैं। असमिया अखबारों में उनके लेख नियमित रूप से प्रकाशित होते रहे हैं। इस पुस्तक में उन लेखों को शामिल किया गया है। उनके ऐसे कई संग्रह पहले भी प्रकाशित हो चुकेहैं। मुझे विश्वास है कि यह लेख संग्रह पाठकों को पसंद आएगा।

शुभकामनाओं के साथ-

रविशंकर रवि
संपादक, दैनिक पूर्वोदय

सूची पत्र

1. पुलवामा अटैक 15
2. जालुकबाड़ी फ्लाईओवर पर पार्किंग ! 18
3. बजट 2019-20 पर एक नजर 20
4. नागरिकता (संशोधन) विधेयक 22
5. सराईघाट पुल 24
6. कौन समझेगा दिव्यांगों का दर्द 26
7. जानलेवा होते जा रहे वनभोज 29
8. बोगीबिल पुल 31
9. 170 करोड़ की शादी 34
10. 'होम वर्क' के दबाव में पिसता बचपन 36
11. असमिया साहित्य-संस्कृति में मारवाड़ियों का योगदान 38
12. पंचायत व्यवस्था : भारतीय लोकतंत्र की आत्मा 41
13. परीक्षाफल : अभिभावकों की चिंता 44
14. समन्वय का प्रतीक : गोपाष्टमी मेला 47
15. आप के भरोसे है सामाजिक समस्याओं का समाधान 49
16. पुस्तक मेले की प्रासंगिकता 52
17. ब्रह्मपुत्र के किनारे बने लाचित की गगनचुंबी मूर्ति 55

18. पटरियों पर दौड़ती मौत 58
19. दुर्गा पूजा पर हो स्वच्छता की बातें 61
20. ऑस्कर की दौड़ में विलेज रॉकस्टार्स 64
21. दुर्गा पूजा, पुख्ता हो सुरक्षा इंतजाम 67
22. हिमा को सम्मान खेल को मिला मान 69
23. भूपेन दा के गीतों की प्रासंगिकता 72
24. खेल, खिलाड़ी और तनाव 74
25. राष्ट्रीय सुरक्षा और लोगों की पहचान से जुड़ा है एनआरसी 77
26. दरकते रिश्ते, मिटती संवेदनाएं 79
27. अविश्वास प्रस्ताव के गिरने के मायने 81
28. असम के खेतों की उड़नपरी : हिमा दास 83
29. थाईलैंड जैसे हादसे से निपटना कितना आसान-कितना मुश्किल ... 85
30. मरती संवेदनाएं, बिखरते रिश्ते 88
31. मोरल पुलिस : कानून से ऊपर कोई नहीं 90
32. बच्चों के कंधों पर बस्ते का बोझ 93
33. कटघरे में सोशल मीडिया 96
34. निर्दोष मजाक नहीं है रैगिंग 99
35. प्लास्टिक प्रदूषण को हराएं 101
36. बढ़ते वृद्धाश्रम, घटती संवेदनाएं 104
37. अगले जनम मोहे बिटिया ही दीजो 107
38. मंत्री नहीं जनता के हृदय का सम्राट बने जनप्रतिनिधिगण 110
39. बलात्कार की बढ़ती घटनाएं, एक गंभीर सामाजिक संकट 112
40. दोनों सदनों के ठप होने का जिम्मेदार कौन 115
41. स्वच्छ भारत अभियान 118
42. बोहाग बिहू पर नृत्यांगनाओं की व्यस्तता 120
43. अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस की सार्थकता 122
44. त्यौहारों का देश है भारत 125
45. महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव 128

46. वैश्विक निवेशक सम्मेलन के मायने 131
47. एक साथ हो केंद्र-राज्य के चुनाव 134
48. गणतंत्र दिवस के मायने 137
49. स्वच्छ गुवाहाटी 140
50. महामाया मंदिर और नजरूल इस्लाम 143
51. नए साल की सकारात्मक बातें 145
52. यातायात नियमों पर अमल करेंगे, हो नए साल का संकल्प..... 147
53. देवदूत ईशा मसीह की वाणी का मानव जीवन पर प्रभाव 150
54. परंपरागत पकवान 153
55. मातृभाषा सर्वोपरि 155
56. कौन लेगा दिव्यांगों की सुध 157
57. ओ मोर आपोनार देश 160
58. क्यों बढ़ रहा है हाथी-मनुष्य का संघर्ष? 162
59. रसराज के मकान का संरक्षण 164
60. भक्तिरस, रासलीला और श्रीमंत शंकरदेव 166
61. वाकिंग जोन : एक सराहनीय प्रयास 169
62. ज्ञान गंगा का उद्गम स्थल है पुस्तक मेला..... 172
63. याद हैं जयंत हजारिका..... 174
64. दीपावली देती है अंधकार से प्रकाश की ओर यात्रा का संदेश..... 177
65. पर्यटन को बढ़ावा देकर बदली जा सकती है देश की तकदीर..... 180
66. दुर्गोत्सव : श्रद्धा पर भारी पड़ती सजावट 183
67. सुधाकंठ के 91वें जन्मदिन पर कुछ बातें दिल से..... 185
68. स्वच्छ भारत अभियान एक पहलू यह भी 188
69. स्वच्छ भारत अभियान एक पहलू यह भी 191
70. उस नवजात का कसूर क्या था ?..... 194
71. नई पीढ़ी के सामने स्वाधीनता दिवस का अर्थ..... 196
72. गुवाहाटी के विकास में सिटी बस सेवा वरदान या अभिशाप..... 198
73. डोकलाम पर क्यों है चीन की टेढ़ी नजर 200

74. बढ़ती जनसंख्या को संभावनाओं में बदलने की चुनौती 202
75. बाढ़ ही नहीं भूस्खलन भी है एक बड़ी समस्या 205
76. भ्राम्यमान थिएटर की 'भाग्यदेवी' 207
77. योग दिवस पर प्रधानमंत्री का असमिया गमछा प्रेम 210
78. अंबुवासी मेला और पर्यटन की संभावनाए 213
79. पेरिस जलवायु समझौते से अमरीका का पीछे हटना 216
80. परीक्षाफल के बाद अब दाखिले की समस्या 218
81. भूपेन हजारिका सेतु 220
82. स्मार्ट पुलिस : वर्दी बदली अब व्यवहार बदलने की बारी 222
83. देश में ही नहीं विश्व राजनीतिक पटल पर हो रहा है परिवर्तन 224
84. लाल बत्ती हटी, नेताओं की मानसिकता कब बदलेगी 226
85. पाक सेना की नृशंसता पर कितने दिन चुप रहेगा भारत 228
86. औपचारिकता मात्र है 'मजदूर दिवस', अब भी नहीं मिलता श्रम .. 231
87. प्राकृतिक छटाओं के बीच बसा है मां वैष्णव देवी का मंदिर 234
88. अक्लांत नायक : अरुण शर्मा 239

पुलवामा अटैक

पाकिस्तानी सेना की शह प्राप्त जैश ए मोहम्मद द्वारा विगत 14 फरवरी, 2019 की दोपहर जम्मू-श्रीनगर राष्ट्रीय राजमार्ग पर अवंतीपोरा के पास गोरीपोरा (पुलवामा) में सीआरपीएफ के जवानों पर उरी से भी बड़ा हमला किए जाने की घटना ने पूरे देश को हिला कर रख दिया है। सैन्य सूत्रों के हवाले से छपी खबरों के अनुसार 1990 से उभरकर आए आतंकवाद के समय के बाद यह पहला आत्मघाती हमला है। इस आत्मघाती हमले को अफजल गुरु स्क्वाड के आतंकी आदिल अहमद उर्फ वकास ने अंजाम दिया। आदिल ने विस्फोटकों से लदे एक वाहन को सीआरपीएफ के काफिले में शामिल जवानों से भरी एक बस से टकराकर विस्फोट कराया, जिसमें 40 जवान शहीद हुए और इतने ही जख्मी हो गए। घटना के तुरंत बाद आतंकी संगठन जैश-ए-मोहम्मद के इस हमले की जिम्मेदारी लेने से यह बात भी साफ हो गई कि यह पूरी घटना पाकिस्तान के इशारे पर अंजाम दी गई है। इस घटना के तुरंत बाद केंद्र सरकार हरकत में आई और प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने दो टूक शब्दों में देश को अपने ट्वीट के माध्यम सीआरपीएफ

पर हमले को घृणित कृत्य बताया और कहा, 'मैं इस कायराना हमले की कड़ी निंदा करता हूं।' प्रधानमंत्री ने यह भी कहा, 'हमारे वीर सुरक्षा कर्मियों का बलिदान व्यर्थ नहीं जाएगा।'गृह मंत्री राजनाथ सिंह ने जम्मू-कश्मीर के राज्यपाल सत्यपाल मलिक, सीआरपीएफ के डीजी आरआर भटनागर से इस बारे में बात की। इस घटना ने पूरे देश को आक्रोशित कर दिया।

मुख्य विपक्षी दल कांग्रेस के अध्यक्ष राहुल गांधी ने भी कहा कि पूरा विपक्ष इस समय भारत सरकार और सेना के साथ खड़ा है। राहुल ने कहा कि हम हर शहीद के परिवार के साथ खड़े हैं, देश को कोई शक्ति नहीं तोड़ सकती है। पूरा का पूरा विपक्ष देश और सरकार के साथ खड़ा है। पूर्व प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने कहा कि देश इस समय अपने 40 जवानों के शहीद होने से शोक में है। कांग्रेस पार्टी का पूरा समर्थन जवानों और उसके परिवारों के साथ है। पूर्व राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी ने कहा कि वह आतंकवादियों के अमानवीय कृत्य से दुखी हैं। श्री मुखर्जी ने कहा, 'दु:ख की इस घड़ी में हमें एक राष्ट्र के रूप में एकजुट रहना होगा। सेना, सीआरपीएफ और जम्मू-कश्मीर पुलिस ने मंगलवार को एक संयुक्त संवाददाता सम्मेलन कर इस हमले के पीछे जैश ए मोहम्मद का हाथ बताया और दावा किया कि घाटी में किसी भी आतंकी को छोड़ा नहीं जाएगा। सेना के लेफ्टिनेंट जनरल केजेएस ढिल्लन, जीओसी चिनार कॉर्प्स ने जम्मू-कश्मीर की माताओं से अपील की कि अपने बच्चों को समझाएं और गलत रास्ते पर चले गए लड़कों को सरेंडर करने के लिए बोलें। उन्होंने यह भी साफ कर दिया कि आतंकी वारदातों में शामिल रहने वालों के लिए कोई रहमदिली नहीं दिखाई जाएगी। उन्होंने जैश ए मोहम्मद को पाकिस्तान सेना का बच्चा बताया और कहा कि इस हमले में पाकिस्तानी सेना का 100 फीसदी हाथ है।

इससे पहले सरकार ने भी इस हमले में पाकिस्तान का हाथ होने का दावा करते हुए पाकिस्तान के खिलाफ कड़ी कार्रवाई किए जाने के संकेत दिए थे। घटना के दूसरे दिन ही पाकिस्तान को दिया गया एक तरह मोस्ट फेवर्ड नेशन (एमएफएन) का दर्जा छिन लिया गया और बाद में पाकिस्तान से आयात की जाने वाली सामग्री पर 200 प्रतिशत का आयात शुल्क लगाया

गया। इससे पाकिस्तानी सामग्री बेहद महंगी हो जाएगी। इसके अलावा सरकार विदेशी राष्ट्रों को भी इस पूरे घटनाक्रम की जानकारी देकर उन्हें अपने पक्ष में करने में लगी है। इस संकट की घड़ी में विश्व के 47 देशों का भारत के साथ आकर खड़े होना कोई कम बड़ी बात नहीं है। अमेरिका के राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार जॉन बोल्टन ने भारत के राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार अजीत डोवाल से फोन कर कहा कि आतंकवाद का मुकाबला करने में अमेरिका भारत के साथ खड़ा है। बोल्टन ने एनएसए डोवाल से फोन पर बातचीत कर हमले में शहीद हुए जवानों के लिए दुख जाहिर किया और आतंकवाद के खिलाफ इस लड़ाई में भारत के साथ खड़े रहने और दोषियों को इसकी सजा देने का आश्वासन दिया। इस पूरे घटनाक्रम के बाद पाकिस्तान विश्व बिरादरी के सामने अपना मुंह दिखाने लायक नहीं रह गया है। पुलवामा हमले को लेकर उपजे जनाक्रोश से सरकार भारी दबाव में है और सरकार का एक फैसला देश और स्वयं नरेंद्र मोदी का भविष्य तय करने वाला साबित हो सकता है।

जालुकबाड़ी फ्लाईओवर पर पार्किंग !

असम को जहां पूर्वोत्तर का मुख्यद्वार कहा जाता है, वहीं जालुकबाड़ी को असम के मुख्यद्वार की संज्ञा दी जाती है। जालुकबाड़ी क्षेत्र में प्रवेश करते ही सुधाकंठ डॉ. भूपेन हजारिका का समाधिक्षेत्र दिखाई पड़ता है। इसके अलावा चारों ओर बिखरे पड़े फ्लाईओवरों का जाल तो किसी भी व्यक्ति को भ्रमित कर सकता है। कई दशकों बाद असम में आने वालों के लिए यह दृश्य असम विकास की एक बानगी भी हो सकता है। पिछले कई दशकों में असम ने जिस रफ्तार से विकास किया है, इन फ्लाईओवरों को उसका ट्रेलर कहा जा सकता है। मुख्यमंत्री सर्वानंद सोनोवाल गुवाहाटी को देश की खेल की राजधानी और असम को देश का सर्वश्रेष्ठ राज्य बनाने का संकल्प अपनी हर एक रैली-सभा-समारोह में दोहराते हैं। हम गुवाहाटीवासी और प्रशासनिक अधिकारी मुख्यमंत्री के उक्त सपने को साकार करने के प्रति कितने गंभीर हैं, इस बात का पता जालुकबाड़ी फ्लाईओवर पर की जाने वाले वाहनों की अवैध पार्किंग को देखकर ही लगाया जा सकता है। फ्लाईओवर पर वाहनों की अवैध पार्किंग न सिर्फ स्वच्छता अभियान को चुनौती है, बल्कि मानवीय सुरक्षा के प्रति भी खतरा है।

पूर्वोत्तर के सिंहद्वार जालुकबाड़ी फ्लाईओवर पर लगी वाहनों की अवैध पार्किंग किसी भी सभ्य एवं संवेदनशील नागरिक को चिंतित कर सकती है। बाहरी राज्यों से प्रतिदिन हजारों की संख्या में छोटे-बड़े वाहन इसी फ्लाईओवर से होकर असम सहित पूर्वोत्तर के अन्य राज्यों में आते-जाते हैं। असम सहित पूर्वोत्तर राज्यों में आना है तो उसे जालुकबाड़ी और खानापाड़ा से होकर गुजरना ही होगा। इतने महत्वपूर्ण स्थानों के सौंदर्य और सुरक्षा पर विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए, लेकिन ठीक इसके विपरीत हो रहा है। अब यह बात विस्तार से समझाने की जरूरत नहीं रह गई है कि असम सहित पूर्वोत्तर के आर्थिक विकास में इस फ्लाईओवर का कितना महत्व है।

इसके बावजूद पुलिस अधिकारी-जवानों के नाक नीचे जालुकबाड़ी फ्लाईओवर पर वहनों की अवैध पार्किंग का काला धंधा बेरोक-टोक जारी है। इस फ्लाईओवर से जुड़ने वाले अन्य कई संयोगी पुलों पर भी यह धंधा उसी रफ्तार में जारी है। विश्व में संभवत: गुवाहाटी ही एक मात्र ऐसा महानगर है, जहां लोग फ्लाईओवरों पर अवैध रूप से अपने वाहन खड़े करते हैं, सामने पुलिस भी होती है, इसके बावजूद उन पर किसी भी प्रकार की कार्रवाही नहीं होती। इस बात को बड़ी आसानी से समझा जा सकता है कि फ्लाईओवर पर वाहनों की अवैध पार्किंग के कारण ही महानगर में जाम की स्थिति पैदा होती है। जनता को रोज-रोज की इस मुसीबत से निजात दिलाने के लिए जरूरी है कि सरकार वाहनों की पार्किंग के स्थान मुहैया कराए। सड़क के किनारे अथवा फ्लाईओवर पर वाहनों को खड़ा कर पार्किंग समस्या का स्थायी हल नहीं निकाला जा सकता। सिर्फ यही नहीं फ्लाईओवर पर स्थाई दुकानें लगाना न सिर्फ पुलिस और संबंधित प्रशासन का नाकामी दर्शाता है, बल्कि महानगर में बड़े जोर-शोर से चलाए जा रहे स्वच्छता अभियान की भी धज्जियां उड़ाते प्रतीक होते हैं। वाहनों की अवैध पार्किंग के कारण फ्लाईओवर गंदा रहता है, जो बाहरी राज्य से आने वाले लोगों को हमारे लापरवाह स्वभाव की चुगली करता है। एक प्रकार से यदि देखा जाए तो यह समस्या बहुत बड़ी नहीं है। जरा भी संजीदगी और जागरूकता दिखाकर इसका हल किया जा सकता है। वाहन चालक फ्लाईओवर पर अपने वाहन न खड़ा करे और यातायात पुलिस कर्मी उन्हें यदि फ्लाईओवर पर यदि वाहन खड़ा न करने दे तो समस्या का चुटकी में समाधान निकल सकता है।

बजट 2019-20 पर एक नजर

वित्त मंत्री डॉ. हिमंत विश्व शर्मा द्वारा विगत 6 फरवरी को विधानसभा में पेश किए गए वर्ष 2019-20 के बजट को लेकर वैसी प्रतिक्रिया देखने को नहीं मिली, जैसी की आमतौर पर बजट के पश्चात देखने को मिलती है। परंपरा का निर्वाह करते हुए विपक्षी पार्टियों ने इस बजट को चुनावमुखी और झूठे आश्वासनों का पिटारा बताया तो मुख्यमंत्री सर्वानंद सोनोवाल ने अपने वित्त मंत्री द्वारा पेश किए गए इस बजट को जनता के सपनों का बजट करार दिया। भाजपा प्रदेश अध्यक्ष रंजीत कुमार दास ने इस बजट को खिलंजिया (स्थानीय) समाज आधारित ऐतिहासिक बजट बताते हुए कहा कि यह ऐसा पहला बजट है, जिसने समाज के हर तबके के लोगों के चेहरे पर मुस्कुराहट लाने का काम किया है। इस बजट में बड़े-बुजुर्ग, किसान, मजदूर, कलाकार, वृद्ध- विधवाओं से लेकर अविवाहित युवतियों का भी पूरा ध्यान रखा गया है।

कांग्रेस के वरिष्ठ नेता तथा पूर्व मुख्यमंत्री तरुण गोगोई ने वर्ष 2019-20 के बजट को झूठा और लोगों को भरमाने वाला बताया। उन्होंने कहा कि पिछले तीन सालों से जिन योजनाओं की घोषणा की जाती रही है, उन्हीं को दोहराया गया है। इसमें कृषि, स्वास्थ्य, सड़क निर्माण आदि की पूरी तरह से अनदेखी की गई है, जबकि शिक्षा जगत को लेकर बड़े-बड़े दावे किए गए हैं। पूर्व मुख्यमंत्री ने कहा कि बजट में चाय मजदूरों के जीवन स्तर को ऊंचा उठाने के नाम पर कई घोषणाएं की गई हैं। असम गण परिषद के अध्यक्ष अतुल बोरा ने इस बजट को आगामी लोकसभा चुनावों को ध्यान में रखकर बनाया गया बजट बताया। श्री बोरा ने कहा कि इस बजट में राज्य के बाढ़-कटाव और भू-स्खलन प्रभावितों के पुनर्वास को लेकर एक भी शब्द नहीं कहा गया है और न ही बेरोजगारों को लेकर कोई घोषणा

की गई है। वहीं दूसरी ओर मुख्यमंत्री श्री सोनोवाल इस बजट को जनता के सपनों का दर्पण बताया। उन्होंने कहा कि यह बजट वृहत्तर असमिया समाज के सभी समुदायों के आर्थिक विकास के साथ ही सबकी सुरक्षा सुनिश्चित करने की भावना से भरा हुआ है। मुख्यमंत्री ने खाद्य सुरक्षा के लिए अन्न योजना, कन्या संतानों के माता-पिता के लिए अरुंधती, शिक्षा के क्षेत्र में ज्ञान दीपिका योजना को भी मील का पत्थर बताया। राज्य के दो लाख तक की आय वाले परिवारों के बच्चों को स्कूल-कॉलजों में नि:शुल्क दाखिले की सुविधा भी मिलेगी।

वित्त मंत्री ने सदन को बताया कि सरकार 'सुलभ पुष्टि और प्राप्ति' योजना नामक एक नई योजना के तहत राज्य के 53 लाख परिवारों को मौजूदा तीन रुपए के बजाए एक रुपया प्रति किलो चावल देगी और मार्च महीने से यह परियोजना शुरू होगी। इसके अलावा 'अरुंधती' योजना के तहत सालाना 5 लाख रुपए की आमदनी के नीचे के परिवार को बेटी की शादी के समय 1 तोला सोना (11.664 ग्राम) सरकार की ओर से दिया जाएगा, जबकि 'ज्ञान दीपिका' योजना के तहत 2 लाख तक सालाना आय के अभिभावकों के बच्चों को स्नातक स्तर तक नि:शुल्क दाखिले की व्यवस्था होगी। इस बजट में 12वीं तक नि:शुल्क पाठ्य-पुस्तक, आठवीं तक नि:शुल्क पोशाक, नौवीं और दसवीं के विद्यार्थियों को पोशाक के लिए शिक्षा विभाग की ओर से हर साल 700 रुपए देने की भी घोषणा की गई है। प्रथम विभाग में हायर सेकेंडरी परीक्षा पास करने वाले विद्यार्थियों को सरकार ने इलेक्ट्रॉनिक मोटर साइकिल देने की घोषणा की है। इसके अलावा शिक्षा ऋण लेने वाले सभी विद्यार्थियों के बैंक अकाउंट में 50 हजार रुपए बतौर रियायत राशि प्रदान किए जाएंगे। जनकल्याणकारी योजनाओं की कड़ी में 45 साल से कम उम्र की विधवा महिलाओं को 25 हजार रुपए की एकमुश्त सहायता राशि और 60 साल तक 250 रु. प्रति माह पेंशन तथा 60 साल की उम्र होते ही उन्हें विधवा पेंशन योजना में शामिल करने की बात भी कही गई है। बजट में राज्य के 63 हजार स्वयं सहायता गुटों में से प्रत्येक को बैंक लोन पर 50 हजार रुपए की सहायता राशि देने की घोषणा की गई है। इसके अलावा और भी अनेक जनकल्याणकारी योजनाओं का जिक्र बजट में किया गया है, जबकि करदाताओं पर एक पैसे का भी अतिरिक्त कर का बोझ नहीं डाला गया है।

नागरिकता (संशोधन) विधेयक

नागरिकता (संशोधन) विधेयक 2016 को लेकर असम सहित पूर्वोत्तर की जनता और केंद्र सरकार आमने-सामने है। लोकसभा में पारित हो चुके इस विधेयक को केंद्र सरकार हर साल में राज्यसभा में भी पारित करवा लेना चाहती है, जबकि पूर्वोत्तरवासी इस विधेयक को खारिज किए जाने की मांग को लेकर अड़े हुए है। इस विधेयक को लेकर पिछले दो साल से असम सहित पूर्वोत्तर राज्यों में विरोध-प्रदर्शन का सिलसिला जारी है। इस विधेयक में यह प्रावधान किया गया है कि अफगानिस्तान, बांग्लादेश और पाकिस्तान से आने वाले अल्पसंख्यक समुदाय हिंदू, सिख, बौद्ध, जैन, पारसी और इसाई के लोगों को अवैध नागरिक नहीं माना जाएगा। जबकि हमारे देश का वर्तमान नागरिकता कानून भारतीय नागरिकता चाहने वाले व्यक्ति के साथ धर्म के आधार पर भेदभाव नहीं करता या फिर उसे कोई रियायत नहीं देता। इस कानून की यह वो बुनियादी खासियत है जिसमें नए विधेयक केजरिए बदलाव किया जाना प्रस्तावित है। इस विधेयक को लेकर ब्रह्मपुत्रघाटी और बराकघाटी में विपरीत परिस्थितियां बनी हुई है। इसकी वजह से ब्रह्मपुत्र और बराक घाटी के बीच रही पुरानी खाई फिर गहराती दिख रही है। बराक घाटी के हिंदुओं में एक बड़ी आबादी बांग्लादेश से आए विस्थापितों की बताई जाती है और इन बांग्लाभाषियों ने इस विधेयक का समर्थन किया है। जबकि ब्रह्मपुत्र घाटी के लोगों (भूमिपुत्रों) को लगता है कि यह विधेयक क्षेत्र के जातीय अनुपात को बदलने का जरिया है और इस आधार पर ये इसके विरोध में हैं। इस कारण ब्रह्मपुत्रघाटी में कांग्रेस, असम गण परिषद,

अखिल असम छात्र संघ, असम जातीयतावादी युवा छात्र परिषद, कृषक मुक्ति संग्राम परिषद, असम साहित्य सभा, अखिल असम कर्मचारी परिषद, अखिल असम वकील संघ सहित सौ से अधिक क्षेत्रीय दल-संगठन लामबंद होकर इस विधेयक के खिलाफ आंदोलन कर रहे हैं। एक वाक्य में यदि कहा जाए तो असम की जनभावना और जनमत इस विधेयक के खिलाफ है। ऐसे में केंद्र सरकार को चाहिए कि वह असम सहित पूर्वोत्तर की जनता के मन में इस विधेयक को लेकर जो भी शंकाएं और सवाल है, इसे दूर करने का समुचित प्रयास करे। यह याद रखा जाना चाहिए कि लोकतंत्र में जनभावना और जनमत सर्वोपरि है। लोकतंत्र में जनभावना और जनमत को हरगिज नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। इस विधेयक से संबंधित संयुक्त संसदीय समिति ने पिछले दिनों जब असम सहित पूर्वोत्तर के अन्य कई राज्यों का दौरा किया था, तब कई जगह इसके खिलाफ विरोध प्रदर्शन हुए, लेकिन यहां भी सबसे ज्यादा विरोध प्रदर्शन ब्रह्मपुत्रघाटी में हुआ, जबकि बराकघाटी में संयुक्त संसदीय समिति का स्वागत किया गया।

आसू सहित 30 क्षेत्रीय दलों की 23 जनवरी, 2019 को लताशील खेल मैदान में हुए 'खिलंजिया (भूमिपुत्र) वज्र निनाद' रैली से निकले स्वर को गंभीरता से लिए जाने की जरूरत है। इस विधेयक को किसी राजनीतिक दल के एजेंडे के साथ जोड़कर देखने के बजाए असम सहित पूर्वोत्तर के लोगों की भावना के साथ जोड़कर देखा जाना चाहिए। यह बात समझने की है कि मेघालय, नगालैंड और मिजोरम की सरकारें भी इस विधेयक के खिलाफ प्रस्ताव पारित कर चुकी है। वज्र निनाद रैली में शामिल पत्रकार, बुद्धिजीवी, कलाकार, छात्र नेता आदि ने एक स्वर में इस विधेयक का विरोध किया और कहा कि इसके पारित होने से असम की भाषा, संस्कृति और पहचान के सामने अपने अस्तित्व को बचाए रखने का खतरा पैदा हो जाएगा। इस विधेयक को लेकर यदि जनता के मन में इतने सवाल, इतना गुस्सा है तो सरकार को चाहिए कि उनके सवालों के जवाब दिए जाए, उनके गुस्से को शांत किया जाए। विधेयक पारित किए जाने के नाम पर यदि इसे असम की जनता पर जबरन थोपा जाता है तो इसके दूरगामी परिणाम भी हो सकते हैं।

सराईघाट पुल

राज्य का ऐतिहासिक कीर्ति-चिह्न कहे जाने वाले पूर्वोत्तर राज्यों के मुख्यद्वार कहे जाने वाले सराईघाट पुल की स्थापना के 55 साल पूरे हो चुकेहैं। अब तक न जाने ब्रह्मपुत्र का कितना पानी इस पुल के नीचे से होकर बह चुका है। देश के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने वर्ष 1963 की 7 जून को यह पुल राष्ट्र को समर्पित किया था। यह असम के बह्मपुत्र पर बना पहला सड़क सह-रेल मार्ग पुल था। इस पुल के निर्माण से असम सहित पूर्वोत्तर क्षेत्र में विकास की धारा को और अधिक गति मिली है। पहले बाहर के लोगों के लिए ब्रह्मपुत्र की अथाह जलराशि को पार कर असम आना-जाना कोई आसान काम नहीं था। सराईघाट के पुल को केंद्र सरकार की ओर से असम को दिया गया एक अनुपम उपहार कहा जा सकता है। वैसे भी सराईघाट वीर लाचित के शौर्य और वीरता के लिए भी जाना जाता है। यही वह जगह है, जहां लाचित बरफूकन ने 'देश से मामा बड़ा नहीं' का उद्घोष करते हुए अपने ही मामा का सिर उनके धड़ से अलग कर दिया था। यही वह स्थान है, जहां लाचित बरफूकन ने मुगलों की सेना को पराजित कर असम को गौरवान्वित होने का सौभाग्य प्रदान किया था। इसी स्थान पर अपना सिर उठाए खड़ा है सराईघाट का पुल। पुल के निर्माण से पहले यहां एक जहाजघाट हुआ करता था। इस जहाजघाट पर चलने वाले पानी जहाज ही ब्रह्मपुत्र के दोनों किनारों के लोगों को जोड़ने का काम करते थे, लेकिन

इसके लिए काफी समय खर्च हो जाया करता था। असम के विकास की गति को तेज करने और इस अति पिछड़े इलाके को राष्ट्र की मुख्यधारा में शामिल करने के लिए स्वाधीन भारत की सरकार ने ब्रह्मपुत्र के ऊपर एक पुल बनाने का निर्णय लिया। वर्ष 1958 के केंद्र सरकार के वार्षिक बजट में ब्रह्मपुत्र पर पुल निर्माण का प्रस्ताव लिया गया और 1958-59 में पुल का निर्माण कार्य भी प्रारंभ कर दिया गया। साल 1962 तक पुल का निर्माण कार्य भी संपूर्ण कर लिया गया और इसी साल 23 सितंबर को परीक्षण के तौर पर इस पुल से होकर रेल इंजन चलाया गया। यह परीक्षण जब सफल साबित हुआ तो भारतीय रेलवे ने वर्ष 1962 की 31 अक्टूबर को इस पर से मालगाड़ी भी चलाना प्रारंभ कर दिया। आखिरकार वर्ष 1963 की 7 जून को वह क्षण भी आ गया, जब देश के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने औपचारिक रूप से इस पुल का उद्घाटन कर असम वासियों को एक अनुपम सौगात दी। मालूम हो कि तब 4285 फीट लंबे और 24 फीट चौड़े इस पुल के निर्माण में 10.64 करोड़ का खर्च आया था। इसके अलावा पुल के दोनों ओर 6 फीट के दो फुटपाथ भी बनाए गए ताकि राहगीर भी इस पुल पर से आ-जा सकें।

तब से अब तक न जाने कितने ही वाहन इस पुल पर से होकर गुजर चुके हैं। इसके बावजूद यह पुल आज भी अपना सर उठाए खड़ा है। पुल का निर्माण संपूर्ण होने के बाद से ही इसकी देख-भाल की जिम्मेदारी पूर्वोत्तर सीमा रेलवे निभाते आ रहा है। पुल की मम्मत से लेकर रंग-रोगन सभी का दायित्व पूर्वोत्तर सीमा रेलवे पर ही है। अब यह पुल कमजोर होने लगा है। लोहे से बने खंभे आदि पर जंग लगने लगा है और वाहनों के गुजरने वाले मार्ग के मरम्मत की जरूरत महसूस की जा रही है। लिहाजा पुल के मरम्मत की आवश्यकता को देखते हुए अगले कई दिन बाद इस पुल को कम से कम तीन महीने के लिए सामान्य वाहन व लोगों के आने-जाने के लिए बंद कर दिया जाएगा। कहना न होगा, अब की बार भी पुल केमरम्मत में अत्याधुनिक तकनीक का उपयोग किया जाएगा। असमवासियों की चाहत है कि उनका सराईघाट पुल न सिर्फ लंबा चले, बल्कि सुंदर भी दिखे। उम्मीद की जा रही है, पुलिस के मरम्मत कार्य में लगे लोग-संस्थान असमवासियों की इस भावना का ख्याल रखेंगे।

कौन समझेगा दिव्यांगों का दर्द

मानवीय समाज में दिव्यांगता किसी अभिशाप से कम नहीं है। इंसानी दिव्यांगता के लिए कभी-कभी भगवान तो कभी मनुष्य स्वयं जिम्मेदार होता है। विश्व की कुल जनसंख्या की 15 प्रतिशत दिव्यांग आबादी है। इनमें शारीरिक व मानसिक दोनों प्रकार के दिव्यांग शामिल हैं। ऐसे दिव्यागों को आमतौर पर देश-समाज पर एक बोझ समझा जाता है। दिव्यांग व्यक्ति के परिवार वाले भी उसकी उपेक्षा करते हैं। सवाल यह उठाता है कि विश्व की इस 15 प्रतिशत दिव्यांग आबादी को मानव संसाधन में नहीं बदला जाता। अध्ययन करने के दौरान यह चौंकाने वाली जानकारी भी सामने आई है कि उक्त 15 प्रतिशत में से सिर्फ दो-चार प्रतिशत ही ऐसे दिव्यांग लोग हैं, जो कोई काम नहीं कर सकते। यानी की बाकी बची 11 प्रतिशत दिव्यांग आबादी को प्रशिक्षण आदि देकर रोजगार-

उपार्जन करने लायक बनाया जा सकता है। हमारे समाज में ऐसे बहुत से अल्प-दिव्यांग व्यक्ति मिल जाएंगे, जो पढ़े-लिखे, कौशल युक्त होने के बावजूद उनके पास कोई काम नहीं है। जबकि शारीरिक व मानसिक रूप से वह लोग किसी सामान्य व्यक्ति से किसी भी मायने में कम नहीं हैं। शारीरिक विकृति की वजह से उनको उनकी योग्यता के आधार पर काम नहीं मिलता। समाज और देश के लिए यह एक चिंताजनक स्थिति है। भले ही हमने विज्ञान के नए-नए पायदान तय कर लिए हों, हम खुद को आधुनिक समाज से जुड़ा बताने लगते हैं, लेकिन किसी दिव्यांग व्यक्ति के प्रति हमारी सोच और मानसिकता आज भी सौ साल पुरातन वाली है।

ऐसे दिव्यांगों के उत्थान के लिए विभिन्न प्रकार की सरकारी-गैर सरकारी एजेंसियां दिन-रात अपने काम में लगी हैं। इनके कल्याण के लिए विभिन्न योजनाओं के माध्यम से सरकार हर साल हजारों करोड़ रुपए की धनराशि खर्च करती है। एक नहीं कई सरकारी विभाग दिव्यागों की स्थिति को सुधारने के काम में लगे हैं, फिर भी हमारे दिव्यांग भाइयों की स्थिति में समुचित बदलाव नहीं आया है। केंद्रीय सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय के दिव्यांगजन सशक्तिकरण विभाग द्वारा निजी क्षेत्र में दिव्यांग व्यक्तियों को नियोजन प्रदान करने के लिए नियोक्ताओं को प्रोत्साहन प्रदान करने की योजना वर्ष 2008-09 में शुरू की गई। इस योजना के अंतर्गत निजी क्षेत्र में नियोजित दिव्यांग व्यक्तियों को ऐसे पद पर नियोजन जिसमें 25,000 रुपए तक की उपलब्धियां प्राप्त होती है, प्रथम तीन वर्ष के लिए कर्मचारी भविष्य निधि और कर्मचारी राज्य बीमा निगम (ईएसआईसी) में कर्मचारी के अंशदान का भुगतान केंद्र सरकार द्वारा किया जाता है। इसके अलावा केंद्र सरकार दिव्यांगों के जीवनस्तर को ऊंचा उठाने के लिए एकाधिक कल्याणकारी योजनाएं चला रही है। केंद्र सरकार की तर्ज पर राज्य सरकारें भी दिव्यागों की भलाई के लिए निरंतर प्रयासशील रही है। असम में भी दीनदयाल दिव्यांगजन सहजया योजना चलाई जा रही है। इस योजना के अंतर्गत राज्य के दिव्यागों को उनके इलाज के लिए 5000 रुपए का एकमुश्त अनुदान दिया जाता है। यह योजना देश के उपराष्ट्रपति वेंकैया नायडू ने इस योजना का शुभारंभ करते हुए कहा था कि यह जरूरी है कि दिव्यांग लोगों

के लिए कानून बनाए जाएं जो दिव्यांग लोगों के जीवन की स्थिति को सुधारने में मदद करेंगे। उन्होंने अधिकारियों को भी सार्वजनिक स्थानों को सुलभ-सुगम बनाने का निर्देश दिया था ताकि दिव्यांग किसी भी अवसर से वंचित न हों। उन्होंने कहा था कि दिव्यंगों के लिए अवसरों को अनिवार्य बनाया जाना चाहिए और पूरे समाज को सभी संभव व्यवहार करके ऐसे लोगों को प्रोत्साहित करना चाहिए। उन्होंने 2011 की जनगणना के अनुसार दुनिया भर के15 प्रतिशत विकलांग लोगों में से 2.21 प्रतिशत दिव्यांगों को भारतीय बताया।

लिहाजा दिव्यागों की स्थिति में सुधार लाने के लिए केवल सरकार और संबंधित एजेंसियां-विभाग ही नहीं हमारी मानसिकता में भी बदलाव लाए जाने की आवश्यकता है। किसी को काम पर रखने के दौरान हम दिव्यागं भाई-बहन की शारीरिक स्थिति पर ध्यान देने के बजाए उनकी योग्यता पर ध्यान देना होगा। यह सवाल भले ही साधारण सा लगे, लेकिन कम बड़ा नहीं है। अब वक्त आ गया है कि दिव्यांगों के प्रति हम अपनी धारणा को बदलें। विकलांग को सिर्फ दिव्यांग कह देने भर से इनकी स्थिति में बदलाव नहीं आएगा। कोई यदि 15 प्रतिशत दिव्यांग आबादी को नजरअंदाज कर समाज के संपूर्ण विकास की बात सोचता है तो यह सही नहीं होगा। समाज का संपूर्ण और सर्वांगीण विकास तभी होगा, जब हम समाज के सभी तबके, वर्ग, संप्रदाय, जाति आदि को अपनी विकास यात्रा में सहयात्री बनाएंगे। दिव्यागों को पीछे छोड़ हम यदि विकास-मार्ग पर आगे निकल भी जाएं तो हम इसे अपनी संपूर्ण सफलता नहीं कह सकते।

जानलेवा होते जा रहे वनभोज

हमारे देश में नए साल के मौके पर वनभोज पर जाना एक अलिखित परंपरा रही है और हमारा राज्य भी इससे अछूता नहीं है। असम में दिसंबर के अंतिम सप्ताह से वनभोज पर जाना शुरू होता है और यह सिलसिला जनवरी के अंतिम सप्ताह तक चलता है। जनवरी में ही भोगाली बिहू तथा माघ बिहू आता है। माघ बिहू के मौके पर भी असमवासी झील-तलाब, खेत-खलिहानों के आसपास इकट्ठा होकर भोग-भाग खाते हैं। मगर, पिछले कई सालों से वनभोज जानलेवा बनते जा रहे हैं। वनभोज से वापस लौट रही गाड़ी के दुर्घटनाग्रस्त हो जाने अथवा झील-तलाब, नदी-झरने में डूबकर लोगों के मर जाने की खबरें भी इस दौरान आए दिन देखने-पढ़ने को मिलती हैं। वनभोज की खुशियां मनाने गए एक लोगों में से किसी का दुर्घटना की भेंट चढ़ जाना भीषण दुखदाई है। यह किसी एक परिवार के लिए पूरे समाज, राष्ट्र के लिए मानव संपदा का नुकसान है। ऐसी दुर्घटना के कारणों की तह पर जाने पर शराब का सेवन एक मुख्य कारण के रूप में उभरकर सामने आता है। पता चलता है चालक के अत्याधिक शराब का सेवन करने के कारण वाहन दुर्घटनाग्रस्त हो गया या नदी-झील में नहाने गया युवक शराब के नशे में होने के कारण डूब गया। इसके अलावा ऐसी दुर्घटना के अन्य कारण भी हो सकते हैं, इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता। ऐसे में सवाल उठता है कि ऐसी दुर्घटनाओं को, ऐसी मौतों को क्या टाला जा सकता है। यह बात तय है कि इस प्रकार की समस्या का समाधान कानून बनाकर तो नहीं निकाला जाता है। जब-जब कानून बनते हैं तो उसके उल्लंघन की प्रवृत्ति भी बनती

है। यह बात आज भले ही स्वीकार्य योग्य न लगे, मगर जन-जागरूकता के माध्यम से ऐसी दुर्घटनाओं को कम किया जा सकता है।

वनभोज पर जाने वाले अपने ही लोग अथवा अलग-अलग गुट के लोगों के बीच आपसी मारपीट और उसमें घायल आदि होने की घटनाओं के पीछे भी कहीं न कहीं शराब ही नजर आती है। ऐसे में वनभोज स्थल पर शराबखोरी पर पाबंदी लगाकर इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम उठाया जा सकता है। शराब सेवन पर अंकुश लगाने से किसी के भी आनंद में खलल नहीं पड़ेगा। इससे वनभोज पर जाने वालों में अनुशासन बढ़ेगा और सभी लोग बराबर वनभोज का आनंद उठा सकेंगे। यहां यह भी सवाल उठाया जा सकता है कि वनभोज स्थल पर शराब के सेवन पर पाबंदी कौन लगाएगा, जिला अथवा पुलिस प्रशासन के लिए यह संभव नहीं है कि हर एक वनभोज स्थल पर पहरा बैठाया जाए, इसके लिए बेहतर होगा कि वनभोज स्थल के आसपास के गांव-बस्ती अथवा गैर सरकारी संगठन के लोगों को इसके लिए जागरूक बनाया जाए, उन्हें जिम्मेदारी सौंपी जाए और उन्हें जरूरत पड़ने पर जुर्माना वसूलने का भी अधिकार मिले। यह सुझाव भले ही किसी को अतिरंजित लग सकता है, मगर ऐसा हो सकता है। आज गुवाहाटी महानगर की पार्किंग व्यवस्था को सुचारू रूप से संचालित करने में गैर सरकारी संस्थाएं भी उल्लेखनीय भूमिका निभा सकती है। सड़क के किनारे वाहनों को कतार में खड़ा करते और उनसे शुल्क वसूलते युवाओं को देखा जा सकता है। ठीक इसी तर्ज पर वनभोज स्थल पर भी व्यवस्था की जा सकती है। इन संस्था-संगठनों को वनभोज स्थल की साथ-सफाई, वाहनों की पार्किंग आदि की भी जिम्मेदारी सौंपी जा सकती है। अभी हाल भी में हाथीशिला में वनभोज पर गए लोगों के वाहन पास की ही झील के कीचड़ में फंस गए थे। मेरा मानना है कि अगर स्थानीय लोगों की जानकारी में इन वाहनों को पार्किंग किया जाता तो इनके कीचड़ में फंसने जैसी नौबत ही नहीं होती, क्योंकि स्थानीय लोगों को पता होता है कि झील के किस हिस्से पर दलदल-कीचड़ आदि है और कहां नहीं। इसके अलावा स्थानीय संगठनों को वनभोज स्थल के साफ-सफाई की जिम्मेदारी भी सौंपी जा सकती है। इन सब कदमों से यह तय है कि वनभोज पर जाने वाले लोग सही मायने में वनभोज का आनंद उठाकर अपने घरों को लौट सकेंगे।

बोगीबिल पुल

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने बोगीबिल का उद्घाटन कर न सिर्फ असम-अरुणाचल प्रदेश की दूरी को कम किया है, बल्कि भारत-चीन अंतर्राष्ट्रीय सीमा को और भी अधिक मजबूत बनाने का काम किया है। यह पुल असम के धेमाजी जिला और डिब्रूगढ़ जिला को जोड़ता है। श्री मोदी ने पिछले साल की 26 मई को असम-अरुणाचल प्रदेश को जोड़ने वाले अन्य एक पुल भूपेन हजारिका सेतु को भी राष्ट्र को समर्पित किया था। इस सेतु को धोला-सदिया पुल भी कहा जाता है। असम के सदिया और अरुणाचल प्रदेश के धोला को जोड़ने वाले इस पुल की लंबाई 9.15 किलोमीटर अर्थात 5.69 मीटर है। यह देश का सबसे लंबा सड़क पुल है। धोला-सदिया पुल ने भी न सिर्फ असम-अरुणाचल प्रदेश के बीच के यातायात के समय को चार घंटे कम करने का काम किया, बल्कि चीन से लगती भारतीय सीमा को और अधिक सुरक्षित करने का काम किया। कुल मिलाकर दो साल से कम समय में असम के दो चिर-प्रतिक्षित पुलों का उद्घाटन कर प्रधानमंत्री ने पूर्वोत्तर के विकास के साथ-साथ देश की अंतर्राष्ट्रीय सीमाओं के प्रति गंभीरता को उजागर करने का काम किया है।

बोगीबिल पुल की आधारशिला पूर्व प्रधानमंत्री एचडी देवगौड़ा ने 22 जनवरी, 1997 को रखी थी। लेकिन इस पर काम 21 अप्रैल, 2002 को तत्कालीन अटल बिहारी वाजपेयी सरकार के समय में शुरू हो सका। भारत के सबसे लंबे (4.94 किमी) रेल-सह-सड़क सेतु बोगीबिल पुल पर कारें और ट्रेन एक साथ दौड़ सकेंगी। इस पुल की विशालता का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि इसके निर्माण में 30 लाख सीमेंट की बोरियों का इस्तेमाल किया गया। इतनी सीमेंट से 41 ओलंपिक स्वीमिंग पूल बनाए जा सकते हैं। इसके नीचे के डेक पर दो रेल लाइन हैं और ऊपर के डेक पर 3 लेन की सड़क है। बोगीबिल ब्रिज से पहली गाड़ी तिनसुकिया-नाहरलागुन इंटरसिटी एक्सप्रेस गुजरी। इससे असम के धीमाजी, लखीमपुर के अलावा अरुणाचल के लोगों को भी फायदा होगा। बोगीबिल पुल चीन के लिहाज से भी काफी अहम माना जा रहा है और सेना को इस पुल से जरूरत पड़ने पर खासी मदद मिलेगी। इस पुल को बनाने में इंजीनियरों को कई तरह की चुनौतियों का भी सामना करना पड़ा है। बारिश से इसके काम में कई बाधाएं आईं। इस पुल के माध्यम से उत्तर-पूर्वी सीमा पर तैनात सेना को आसानी से रसद आदि पहुंचाई जा सकेगी। यानी की रक्षा मोर्चे पर भी इस पुल की एक महत्वपूर्ण भूमिका होगी। बताया जा रहा है कि इस रेल-सड़क बोगीबिल पुल की मियाद कम से कम 120 साल है। परियोजना में अत्यधिक देरी के कारण इसकी लागत में 85 फीसदी की बढ़ोत्तरी हो गई। शुरुआत में इसकी लागत 3230.02 करोड़ रुपए थी जो बढ़कर 5,960 करोड़ रुपए हो गई। इस बीच पुल की लंबाई भी पहले की निर्धारित 4.31 किलोमीटर से बढ़ाकर 4.94 किलोमीटर कर दी गई। परियोजना के रणनीतिक महत्व को देखते हुए केंद्र सरकार ने इस पुल के निर्माण को 2007 में राष्ट्रीय परियोजना घोषित किया था। इस कदम के बाद से धन की उपलब्धता बढ़ गई और काम की गति में तेजी आ गई। देश के सबसे लंबे डबल डेकर रेल-रोड ब्रिज का इंतजार सिर्फ असम-अरुणाचल वासियों को ही नहीं सेना को भी था। इस पुल को पूर्वोत्तर क्षेत्र की जीवन रेखा भी कहा जा सकता है। बोगीबिल पुल असम और अरुणाचल प्रदेश के पूर्वी क्षेत्र में ब्रह्मपुत्र नद के उत्तर और दक्षिण तट के बीच संपर्क की सुविधा प्रदान करेगा। यह पुल भूकंप प्रभावित क्षेत्र में होने के कारण इस पुल

को भूकंपरोधी बनाया गया है, जो 7 तीव्रता से ज्यादा के भूकंप में भी धराशायी नहीं होगा। ब्रह्मपुत्र नदी पर डबल डेकर रेल और रोड ब्रिज (बोगीबिल पुल) की सहायता से न सिर्फ असम और अरुणाचल राज्यों के बीच लोग आसानी से आ-जा सकेंगे, बल्कि उत्तर-पूर्वी सीमा पर तैनात सेना को भी आसानी से रसद आदि पहुंचाई जा सकेगी, यानी रक्षा मोर्चे पर भी यह पुल अहम भूमिका निभाने के लिए तैयार है। इसका निर्माण इस तरह से किया गया था कि आपात स्थिति में एक लड़ाकू विमान भी इस पर उतर सके। अधिकारियों ने कहा कि यह ब्रह्मपुत्र नदी के उत्तरी किनारे पर रहने वाले लोगों को होने वाली असुविधाओं को काफी हद तक कम कर देगा पर इसकी संरचना और इसकी डिजाइन को मंजूरी देते समय रक्षा आवश्यकताओं ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। एक रक्षा सूत्र ने कहा, 'यह पुल रक्षा बलों और उनके उपकरणों के तेजी से आवागमन की सुविधा प्रदान करके पूर्वी क्षेत्र की राष्ट्रीय सुरक्षा को बढ़ाएगा।

170 करोड़ की शादी

देश के मशहूर उद्योगपति मुकेश अंबानी की बेटी ईशा और पिरामल ग्रुप के मालिक अजय पिरामल के बेटे आनंद पिरामल की शादी को लोग लंबे अर्से तक याद रखेंगे। कहा जा रहा है मुकेश अंबानी ने अपनी बेटी की शादी में दिल खोलकर अपने अरमान पूरे किए और इस शादी में 170 करोड़ रुपए खर्च हुए। संभवतः हमारे देश में यह शादी अब तक की सबसे खर्चीली शादी रही होगी। इस शादी में अमरीका के पूर्व राष्ट्रपति बिल क्लिंटन की पत्नी तथा पूर्व विदेश मंत्री हिलेरी क्लिंटन, देश के पूर्व राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी, गृहमंत्री राजनाथ सिंह से लेकर फिल्म जगत के तमाम सितारें शामिल हुए। शादी पूर्व के सारे मांगलिक कार्य उदयपुर के 'द ओबेराय उदय विलास' और सिटी पैलेस में संपन्न हुए, जबकि 27 मंजिला महल एंटिला में शादी की रस्में पूरी की गईं। शादी का रिसेप्शन मुंबई के वांद्राकुर्ला कांप्लेक्स के जियो गार्डन में दिया गया। बॉलीवुड में इस शादी को लेकर जबर्दस्त क्रेज देखने को मिला। ईशा की शादी में अमिताभ बच्चन, अभिषेक बच्चन, ऐश्वर्या राय बच्चन और उनकी बेटी आराध्या से लेकर नवविवाहित जोड़ी दीपिका पादुकोण-रणवीर सिंह और प्रियंका चोपड़ा-निक जोनस की मौजूदगी भी खास रही। करण जौहर और सलमान खान भी इस शादी में खास तौर से शामिल हुए। इस शादी में शाहरुख अपनी पत्नी गौरी खान के साथ पहुंचे। जबकि आमिर

खान किरण राव के साथ इस जश्न में शामिल हुए। शिल्पा शेट्टी और आलिया भट्ट ने भी इस मौके पर अपने अंदाज से सबका दिल जीत लिया। बेटी सोनम कपूर के साथ अनिल कपूर तो वही करीना कपूर खान और करिश्मा कपूर के साथ सैफ अली खान भी इस शादी में पूरे रंग में नजर आए।

शादी के बाद मुंबई में ईशा अंबानी के रिसेप्शन में बॉलीवुड से बोमन ईरानी और गायक अदनान सामी के अलावा अन्य क्षेत्र के दिग्गज मेहमान भी शामिल हुए। गायक अदनान सामी अपनी पत्नी और बेटी संग इस मौके पर खास अंदाज में नजर आए। रिसेप्शन में सनी देओल, ईशा देओल, प्रसून जोशी, नील नितिन मुकेश, सुभाष घई, कार्तिक आर्यन आदि कई स्टार शामिल हुए। एकता कपूर पिता जीतेंद्र और भाई तुषार कपूर के साथ पहुंचीं। शादी में हॉलीवुड की सिंगर बियोंस सबके आकर्षण का केंद्र रहीं। कहा जाता है कि बियोंस को उसके संगीत प्रस्तुति के लिए 28 करोड़ रुपए दिए गए।

जिस देश में आज भी गरीबी है। आबादी का एक बड़ा हिस्सा गरीबी रेखा के नीचे है, उस देश में 170 करोड़ रुपए की शादी का चर्चा में रहना स्वाभाविक है। भले ही मुकेश अंबानी के लिए 170 करोड़ रुपए की राशि बहुत अधिक न हो। हो सकता है कि वे अकेले अपने दम पर असम जैसे राज्य के कई महीनों का खर्च उठा सकते हों, ऐसा अमीर व्यक्ति यदि अपनी लाडली बेटी की शादी में अपने सामर्थ्य के अनुसार 170 करोड़ रुपए खर्च कर भी दे तो कौन-सी बड़ी बात है। उन्होंने अपनी कमाई के पैसे खर्च किए हैं, किसी से उधारी तो नहीं ली। लेकिन यह भी सच्चाई है कि जिस देश में अपनी बेटी की शादी में अंबानी जैसे अमीर 170 करोड़ रुपए खर्च कर देते हैं, इसी देश में बेटी की शादी की कोशिश में माता-पिता की चप्पलें घिस जाती हैं। दहेज देने के नाम पर उनको अपनी खेत-जमीन से लेकर घर तक बेचने पड़ते हैं। कई बार तो गरीबी के कारण बेटी की शादी न कर पाने की वजह से लोगों के आत्महत्या तक की खबरें तक सुनने को मिलती हैं। माना दहेज लेना-देना गैरकानूनी है, मगर परंपरा के नाम पर आज भी इसका प्रचलन जारी है। महिला सशक्तिकरण और महिलाओं को आर्थिक रूप से सक्षम बनाने के लिए एक-आध योजना शुरू कर श्री अंबानी अपनी बेटी की शादी की यादों को और अधिक समय तक बनाए रख सकते हैं।

'होम वर्क' के दबाव में पिसता बचपन

बच्चों पर पढ़ाई के बढ़ते दबाव ने उनके बचपन को कुचलकर रख दिया है। कोमल मन वाले बच्चों पर स्कूल में पढ़ाई का जितना दबाव रहता है, घर पर ही होम वर्क का उससे कम दबाव नहीं रहता। बच्चों पर पढ़ाई के अत्याधिक दबाव के कारण उन्हें न तो खेलने का वक्त मिलता है और न ही शैतानियां करने का। पहले की यह सोच थी कि बच्चों को खेल-खेल में पढ़ाया-सिखाया जाना चाहिए। घर-स्कूल में भी इसी को ध्यान में रखकर पढ़ाया जाता था। खेल-खेल में बच्चे बहुत कुछ पढ़-लिख जाया करते थे। सांप-सीढ़ी और लूडो खेलते-खेलते बच्चे एक-दो की गिनती सौ तक कैसे सीख लेते थे, किसी को पता भी नहीं चलता था। अब वैसा नहीं है, पढ़ाई के अत्याधिक दबाव के कारण ट्यूशन से लेकर विभिन्न प्रकार के खेलों के लिए भी बच्चों को स्पेशल कोचिंग लेनी पड़ती है। पहले बच्चों के लिए खेलने का भी एक खास वक्त तय हुआ करता था। पढ़ाई के दबाव के कारण खेल का वक्त मोबाइल गेम्स और टीवी दिखाई जाने वाली कार्टून फिल्म तक सिमट कर रह गया है।

वैसे मनोचिकित्सक कहते हैं कि बच्चों के संपूर्ण मस्तिष्क विकास केलिए

पर्याप्त समय और उपयुक्त माहौल चाहिए। कम समय में अधिक पढ़ाई करने और उसको याद रखने का दबाव बच्चों के विकसित होते मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव डालता है। बच्चों के मस्तिष्क पर उसकी क्षमता से अधिक दबाव कभी-कभी खतरनाक भी साबित होता है। इस वजह से कभी-कभी बच्चों के मस्तिष्क विकास क्रिया पर भी इसका प्रभाव दिखाई देता है। अच्छे परीक्षाफल हासिल की कोशिश में अक्सर बच्चों पर उनकी उम्र, उनकी क्षमता को नजरंदाज कर उन पर पढ़ाई का बोझ लाद दिया जाता है। क, ख, ग, घ सीखने की उम्र वाले छोटे-छोटे बच्चों को भी भारी स्कूली बैग लेकर स्कूल आते-जाते देखा जा सकता है। मगर, यहां इस बात का भी उल्लेख करना होगा कि महानगर में अंतर्राष्ट्रीय सुविधाओं से युक्त स्कूलों में आज भी बच्चों को खेल-खेल में ही पढ़ाया-सिखाया जाता है। ऐसे बच्चों पर घर में पढ़ाई और सबसे अच्छा रिजल्ट लाने का दबाव नहीं होता। इन स्कूलों में बच्चों का मन भी खूब लगता है, क्योंकि सब कुछ खेल-खेल में होता है। लिहाजा यहां हम उन स्कूलों की बात कर रहे हैं, जो बच्चों के लिए डर और दबाव का पर्याय बनते जा रहे हैं। लेकिन सबसे चिंताजनक बात यह है कि ऐसे ही विद्यालयों में अपने बच्चों का दाखिला कराने के लिए कुछ अभिभावकों में होड़ लगी रहती है। बच्चों के बेहतर परीक्षाफल की कोशिशों में लगे रहने वाले ऐसे अभिभावक अपने बच्चों पर पड़ने वाले पढ़ाई के अतिरिक्त दबाव की बात को भूला देते हैं। कुछ अभिभावकों की यह सोच भी रही है कि जो विद्यालय बच्चों पर पढ़ाई का अधिक दबाव डालते हैं अथवा होम वर्क अधिक देते हैं, वैसे विद्यालय अच्छे होते हैं। केंद्रीय मानव संसाधन विभाग ने ही छोटे बच्चों पर पढ़ाई के बढ़ते बोझ पर गहरी चिंता व्यक्त करते हुए हाल ही में जारी एक आदेश में प्रथम और द्वितीय कक्षा के बच्चों को होमवर्क मुक्त रखने को कहा है। माना जा रहा है कि केंद्रीय मानव संसाधन विभाग के इस आदेश केअमल में लाने से बच्चों को पढ़ाई केअतिरिक्त दबाव से काफी हद तक मुक्ति मिल जाएगी। ऐसी स्थिति में अभिभावक और स्कूलों को चाहिए कि बच्चों के लिए पढ़ाई के साथ-साथ खेलने का भी वक्त निकाला जाए, क्योंकि अब यह कहावत पूरी तरह से गलत साबित हो रही है कि 'पढ़ोगे-लिखोगे बनोगे नवाब, खेलोगे-कूदोगे होगे खराब'।

असमिया साहित्य-संस्कृति में मारवाड़ियों का योगदान

मारवाड़ी शब्द आते ही आमतौर पर व्यवसायी वर्ग का स्मरण आता है। भारत के किसी भी राज्य में चाहे चले जाएं, वहां के व्यापार जगत पर आमतौर पर मारवाड़ियों का ही अधिपत्य देखने को मिलता है। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि मारवाड़ी लोग एक-दूसरे के साथ आसानी से हिल-मिल जाते हैं और सफल व्यापारी होने के कारण इसे एक महत्वपूर्ण गुण माना जाता है। असम में भी मारवाड़ियों की संख्या अन्य राज्यों की तुलना में कम नहीं है। यहां भी व्यापार-व्यवसाय और दुकानदारी में मुख्यत: मारवाड़ियों का ही अधिपत्य है। असम का शायद ही कोई गांव-कस्बा होगा, जहां मारवाड़ी न रहते हों। इसीलिए असम में एक कहावत भी प्रचलित है। 'जहां न पहुंचे बैलगाड़ी, वहां पहुंचें मारवाड़ी' लेकिन यहां का मारवाड़ी स्वयं को सिर्फ व्यापार-वाणिज्य तक ही सीमिति नहीं रखा है। सुदूर राजस्थान के किसी रेगिस्तानी गांव से आकर असम के किसी गांव में बसा मारवाड़ी परिवार यहां के साहित्य-कला-संस्कृति में उसी प्रकार से रच-बस गया है, जैसे पानी में शक्कर घुल जाती है। असम के मारवाड़ियों ने असमिया समाज में खुद को पूरी तरह से ढाल लिया है और स्वयं को असमवासी

बताने में गर्व का अनुभव करते हैं। यह लोग मारवाड़ी होने के बावजूद किसी भी मायने में असमिया से कम नहीं हैं। मारवाड़ी समाज के बच्चे न सिर्फ असमिया माध्यम के स्कूलों में पढ़ाई कर रहे हैं, बल्कि स्वयं को पूरी तरह से यहां के साहित्य-संस्कृति-कला आदि में भी ढाल लिया है। राजस्थानी बच्चे असमिया त्यौहार-पर्व में हिस्सा लेते हैं और युवतियां मेखला चादर पहनकर बिहू गीत पर थिरकती नजर आती हैं। यह और भी गर्व करने वाली बात है कि यहां केअसमिया समाज ने भी मारवाड़ियों को पूरी तरह से अपना लिया है। असमिया-मारवाड़ी बच्चों के बीच शादी होना आज के दिन आम बात है। असमिया-मारवाड़ियों के एक महामिलन को हम वृहत्तर असमिया समाज के एक शानदार-सशक्त और समन्वयपूर्ण पहलू के रूप में देख सकते हैं।

आज केदिन ऐसे बहुत से मारवाड़ी युवा मिल जाएंगे, जो न सिर्फ शुद्ध और साफ लहजे में असमिया बोलते हैं, बल्कि असमिया भाषा में कविता, कहानी, नाटक आदि भी लिखते हैं। तन-मन से पूरी तरह असमिया हो चुकेऐसे लोगों को अपने गौरवमय अतीत और वीरता से भरे इतिहास पर भी गर्व है कि वे मारवाड़ी संप्रदाय केअंग हैं। किसी एक अंचल में लंबे समय तक निवास करने पर वहां की भाषा-संस्कृति, पहनावा-खान-पान, सामाजिक रीति-रिवाज आदि के साथ घुल-मिल जाना आम बात है। असम के मारवाड़ियों के साथ भी कुछ ऐसा ही है। वह लोग भी असम के साहित्य-संस्कृति में रच-बस गए हैं। यहां के मारवाड़ियों का सीना तब और चौड़ा हो जाता है, जब वे स्वयं को असमिया समाज का ही एक अंग बताते हैं। राज्य के बहुत से संगठन, संस्थान आदि के साथ यहां के मारवाड़ियों का भी अटूट संबंध रहा है। असमिया साहित्य-संस्कृति में बहुत से मारवाड़ियों का अमूल्य योगदान रहा है। यहां के मारवाड़ी लेखकों द्वारा असमिया भाषा में लिखी पुस्तकों को आज भी बड़े सम्मान के साथ देखा व पढ़ा जाता है। रूपकुंवर ज्योतिप्रसाद अग्रवाला ने असमिया साहित्य में जो वृक्षारोपण किए थे, असमिया साहित्यकार आज भी उनकी छांव तले सुस्ताते-आराम करते नजर आते हैं। रूपकुंवर की रचनाएं समस्त असमवासियों के लिए न सिर्फ अमूल्य साहित्य संपदा है, बल्कि गर्व करने की एक वजह भी है। ज्योतिप्रसाद अग्रवाला ने ही असम की पहली असमिया सवाक फिल्म 'जयमती'

का निर्माण किया था। उन्होंने असमिया फिल्म की जो भागीरथी बहाई थी, उसकी धारा आज रीमा दास के माध्यम से आस्कर अवार्ड के मंच तक पहुंच गई है। असम केसंगीत जगत में 'ज्योति संगीत' का एक अलग ही स्थान है। स्वाधीनता आंदोलन के समय रूपकुंवर की रचनाएं-कविताओं ने युवाओं के हृदय में देशप्रेम का जोश भरने का काम किया था। इसके अलावा हम चंद्र कुमार अग्रवाला का भी जिक्र कर सकते हैं, जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से असमिया साहित्य को समृद्ध करने का काम किया है। ज्योतिप्रसाद-चंद्र कुमार ने असमिया साहित्य को जिस तरह से समृद्ध करने का काम किया है, उसे आने वाले सैकड़ों सालों तक श्रद्धापूर्वक स्मरण किया जाएगा। असमिया फिल्म केसिनेमाटोग्राफर दीनदयाल बाजोरिया ने 70-80 केदशक में 'फागुनी', सोनतरा, बोवारी, तरामयी, घर-संसार, एई देश मोर देश, रिक्शावाला जैसी कई कालजयी असमिया फिल्मों की सिनेमाटोग्राफी की थी। इनके अलावा डॉ. निर्मल साहेवाल, कमल कुमार जैन, रामनिरंजन गोयनका, नंदकिशोर महेश्वरी आदि लोग भी अपनी लेखनी-रचनाओं के माध्यम से असमिया साहित्य-संस्कृति को समृद्ध करने में लगे हैं। इसके अलावा भ्राम्यमान थिएटर, असमिया फिल्म आदि में भी मारवाड़ी युवा बड़ी तेजी से आकर्षित हो रहे हैं।

पंचायत व्यवस्था : भारतीय लोकतंत्र की आत्मा

हमारी पंचायत व्यवस्था को भारतीय लोकतंत्र की आत्मा कहा जाता है। इस व्यवस्था के माध्यम से ही शासन और सत्ता को समाज के अंतिम व्यक्ति तक पहुंचाने का काम किया जाता है। कोई सरकारी योजना हो या कार्यक्रम उसे पंचायत व्यवस्था के माध्यम से ही गांव-गांव तक पहुंचाया जा सकता है। भारत को अति प्राचीन और गांवों का देश कहा गया है। समाजहित में आदिकाल से ही यहां भांति-भांति के प्रयोग होते रहे हैं और पंचायत व्यवस्था को सर्वोत्तम पाया गया है। ग्रामीण क्षेत्र में प्रशासन की इकाई के रूप में स्थापित भारतीय प्रजातंत्र का यह प्राचीन प्रयोग और सिद्ध प्रबंध सर्व स्वीकृत रहा है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी भारतीय पंचायती राज व्यवस्था के बहुत बड़े समर्थक थे। बापू का मानना था कि भारत में कई फेरबदल और क्रांतियां आईं। इन सबके बीच में भारत जनता को बचा ले जाने का सबसे अधिक श्रेय पंचायत राज जैसी व्यवस्था-संस्थानों का है। ऐसी संस्थाओं ने न सिर्फ लोगों को सुखी रखा, बल्कि एक हद तक उनकी आजादी की रक्षा भी की है। गांधी जी को ग्राम पंचायत से इतना लगाव

था कि वे उन्हें ग्राम उद्धारक संघ भी कहते थे। प्राचीनकाल में हमारे देश के गांव आर्थिक व प्रशासनिक व्यवस्था के मामले में पूरी तरह से स्वावलंबी थे। मगर, ग्रामीण आर्थिक व प्रशासनिक व्यवस्था के पतन के कारण गांवों में दलबंदी, लड़ाई-झगड़े, ईर्ष्या, द्वेष, निरक्षरता, फूट आदि दुष्प्रवृत्तियों का विकास हुआ। पहले भारतीय ग्रामीण लोग पंचायतों के माध्यम से ही अपने विवादों का निपटारा किया करते थे। उनके निर्णय सर्व सामान्य और सर्वग्राह्य हुआ करते थे।

आज भी हमारे देश में पंचायती राज व्यवस्था को सबसे महत्वपूर्ण व्यवस्था माना जाता है। देश को पूरी तरह से ताकतवर तभी बनाया जा सकता है, जब देश की बुनियाद कही जाने वाली पंचायती राज व्यवस्था सुदृढ़ हो। हमारी पंचायती राज व्यवस्था जितनी मजबूत होगी, देश केआर्थिक-सामाजिक विकास की गति भी उतनी ही तेज होगी। इन्हीं सब बातों को समझते हुए बापू ने पंचायती राज व्यवस्था को सर्वाधिक महत्व दिया था। आजादी के बाद इतने संकट-समस्या आने के बावजूद भी यदि हमारा लोकतंत्र बिना डिगे कायम रहा तो उसकी बुनियाद में यह पंचायती राज व्यवस्था ही थी। शासन व्यवस्था को एकदम निचले स्तर तक पहुंचाने के लिए पंचायती राज एक श्रेष्ठ उपाय है। आज भी हमारे देश के बहुत से हिस्सों में ग्राम प्रधान अथवा पंचायती राज का मुखिया मिल-बैठकर आपस में ही स्थानीय स्तर की समस्या अथवा शिकायत का निपटारा कर लेते हैं और इसके लिए न तो वकील की जरूरत पड़ती है और न ही जज की। इस कारण बहुत से आपराधिक मामलों का विचार बिना थाने-अदालत गए गांव के चौपाल पर ही हो जाता है।

लेकिन समय केसाथ पंचायत व्यवस्था और पंचायत चुनावों का स्वरूप भी बदला है। असम में पंचायत चुनावों की घोषणा होने के बाद से ही पंचायती चुनावों को लेकर खासकर गांवों में न सिर्फ नेता-मंत्रियों का आना-जाना बढ़ गया होगा, बल्कि प्रचार अभियान भी जोरों पर होगा। अब पंचायत चुनावों में भी राष्ट्रीय और प्रांतीय स्तर के मुद्दों को खूब उछाला जाता है, जबकि ऐसे चुनावों में संबंधित पंचायत के विकास, समस्या और शिकायतों से जुड़ी बातों को उठाया जाना चाहिए पंचायत चुनावों के प्रचार के नाम पर चाहे कोई उम्मीदवार करोड़ों खर्च दें, मगर चुनाव नतीजे उसी उम्मीदवार के पक्ष में जाएंगे, जिसके पक्ष में

मतदाताओं ने वोट दान किया है। अब पंचायत चुनावों में भी लोकसभा अथवा विधानसभा चुनावों जैसी झलकियां दिखने लगी है। मतदाताओं को पटाने के लिए उम्मीदवार हर प्रकार के पैंतरे अपनाता है और काम निकल जाने के बाद उसे पहचानता तक नहीं। लेकिन बढ़ी शिक्षा और लोगों में फैल रही जागरूकता के कारण स्थितियों में बदलाव आ रहा है। वोट मांगने जाने पर उम्मीदवार को मतदाताओं द्वारा पूछे गए तरह-तरह का सामना करना पड़ता है और यह भी सुनिश्चित करना पड़ता है कि चुनाव जीतने के बाद वह जनहित में जुड़े किन मुद्दों को प्राथमिकता देगा। यही है लोकतंत्र के सबसे निचले पायदान की पंचायती राज चुनाव व्यवस्था की ताकत। अब बिंदिया-काजल देकर मतदाताओं को नहीं रिझाया जा सकता। पिछले कई सालों से चुनाव व्यवस्था में आए बदलाव 'नन ऑफ द एबव, यानी इनमें से कोई नहीं' ने मतदाताओं की हिम्मत को बढ़ाने और उम्मीदवारों की झूठे वादों पर लगाम लगाने का काम किया है। अंत में इस बात को समझना होगा कि लोकसभा से लेकर पंचायती राज व्यवस्था तक के चुनावों की सफलता का पूरा दारोमदार मतदाताओं के कंधों पर टिका है। शत-प्रतिशत और सही उम्मीदवार के पक्ष में मतदान ही लोकतंत्र की सार्थकता है।

परीक्षाफल : अभिभावकों की चिंता

मैट्रिक की परीक्षा लेकर हायर सेकेंड्री, स्नातक सहित विभिन्न प्रतियोगिता मूलक परीक्षाएं हो चुकी हैं और अब सभी को परीक्षाफल का इंतजार है। जहां एक ओर परीक्षार्थी इस चिंता में डूबे हैं कि परीक्षाफल कैसा आएगा, वहीं दूसरी ओर अभिभावक बच्चों के नतीजों के साथ-साथ अच्छे शिक्षण संस्थान में दाखिला दिलाने की चिंता में परेशान हैं। इस बात का जिक्र करना लाजमी नहीं है कि किसी भी अच्छे शिक्षण संस्थान में दाखिला दिलाने के लिए मैट्रिक और हायर सेकेंड्री का शानदार रिजल्ट का होना पहली शर्त है। परीक्षाफल के दम पर यह भी तय होता है कि बच्चा वाणिज्य, कला अथवा विज्ञान किस शंकाय में दाखिला लेने योग्य है। परीक्षाएं खत्म होने के बाद परीक्षार्थी हो या उसके अभिभावक चिंता का प्रमुख केंद्र बिंदु परीक्षाफल ही होता है। हमारे देश में पर्याप्त संख्या में शिक्षण संस्थान नहीं होने के कारण अन्य श्रेणी में उत्तीर्ण हुए विद्यार्थी की बात तो छोड़ ही दें, पहली श्रेणी में उत्तीर्ण होने वाले विद्यार्थी को भी नामी-गिरामी शिक्षण संस्थान में दाखिला नहीं मिलता। हर साल लाखों की संख्या में

विद्यार्थी मैट्रिक-हायर सेकेंड्री की परीक्षा उत्तीर्ण करते हैं। इन परीक्षाओं में द्वितीय और तृतीय श्रेणी में उत्तीर्ण करने वाले विद्यार्थियों की यदि खोज-खबर ली जाए तो चौंकाने वाली जानकारियां सामने आ सकती है। मैट्रिक की परीक्षा अच्छे नंबरों से पास करने के बाद भी विद्यार्थी-अभिभावकों की चिंता कम नहीं हो जाती। बच्चा आगे की पढ़ाई शहर के महाविद्यालय में करेगा अथवा बाहर के महाविद्यालय में इस बात को लेकर भी विद्यार्थी-अभिभावकों में विवाद की स्थिति देखी जाती है। दसवीं की परीक्षा देने वाले विद्यार्थी की उम्र 15-16 वर्ष के आस-पास होती है। इस उम्र को वय-संधि उम्र भी कहा जाता है। ऐसी उम्र में बच्चे एक ओर अधिक से अधिक आजादी में रहना चाहते हैं, वहीं अभिभावकों को लगता है कि यही उम्र है जब बच्चे पर सर्वाधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। विद्यार्थी-अभिभावकों की इस विरोधाभाषी सोच के कारण कभी-कभी दोनों पीढ़ियों में टकराव की भी स्थिति पैदा हो जाती है। वैसे अभिभावक हो या विद्यार्थी दोनों ही यह जरूर चाहते हैं कि आगे की पढ़ाई सबसे अच्छे शिक्षण संस्थान में की जाए। वहीं दूसरी और प्रतियोगिता मूलक परीक्षा उत्तीर्ण कर चिकित्सक, अभियंता अथवा एमबीए के पाठ्यक्रम में दाखिला लेने का सपना देखने वाले युवाओं की संख्या कम नहीं है।

वैसे आज के दौर में अभिभावकों को अपने बच्चों की पसंद-नापसंद से अधिक चिंता उनकी शैक्षणिक सफलता की रहती है। अभिभावक हर हाल में अपने बच्चे को सफल होते देखना चाहता हैं, चाहे इसके लिए कोई भी कीमत क्यों न चुकानी पड़े। अभिभावक अपने बच्चे को हर प्रतियोगिता में सबसे आगे देखना चाहते हैं, बिना इस बात को जाने-समझे की बच्चे की रुचि आखिर किस में है। इसके लिए कभी-कभी अभिभावकों को भारी कीमत भी चुकानी पड़ती है। पढ़ाई के अत्याधिक बोझ, माता-पिता का बेवजह का दबाव और अच्छा नतीजा न लाने के कारण शर्मसार युवा कभी-कभी तो आत्महत्या तक करने से नहीं चुकते। हर हाल में अपने बच्चे की सफलता चाहने वाले माता-पिता का यह दबाव कभी-कभी बच्चे को जिद्दी और विद्रोही भी बना देता है। बच्चों को जब अपनी पसंद के खिलाफ जाकर सिर्फ माता-पिता को संतुष्ट करने के लिए पढ़ाई करनी होती है तो उनका बाल-मन विद्रोह कर बैठता है। वैसे भी कला

में रुचि रखने वाले बच्चे का दाखिला यदि विज्ञान शंकाय में करा दिया जाए और उसके बाद उससे बहुत शानदार रिजल्ट की उम्मीद करें तो इसे ज्यादती ही कहा जाएगा। ऐसे बहुत से अभिभावक हमारे समाज में मिल जाएंगे, जो अपने बच्चे के परीक्षाफल अथवा पेशे को अपने सम्मान के साथ जोड़कर देखते हैं। ऐसे अभिभावकों की सोच होती है कि बच्चा यदि डाक्टर-इंजीनियर नहीं बन पाया तो वे समाज में किसी को मुंह दिखाने लायक नहीं रह जाएंगे। ऐसे अभिभावकों को अपनी सोच बदलती है। बच्चे और बचपन को उसके स्वभाव-रुचि के अनुसार ही परवान चढ़ने दें, ऐसे बच्चे सफलता के मुकाम तक जरूर पहुंचते हैं। क्या पता कल आपका बच्चा डाक्टर-इंजीनियर बनने के बजाए सचिन तेंदुलकर अथवा मैरी कॉम ही बन जाए।

समन्वय का प्रतीक : गोपाष्टमी मेला

श्री गौहाटी गौशाला में मनाए जाने वाला गोपाष्टमी मेला आपसी प्रेम और समन्वय का प्रतीक है। एक सदी पुराने इस मेले को असम का सबसे प्राचीन मेला कहा जाता है। पिछले दिनों तीन दिवसीय गोपाष्टमी मेले में उमड़ने वाली भीड़ के स्वरूप को देखकर कहा जा सकता है कि यह किसी समुदाय-संप्रदाय विशेष का मेला नहीं है। इस मेले में मारवाड़ी, बिहारी, असमिया, बंगाली, पंजाबी, गुजराती सभी जाति-संप्रदाय के लोग अपने परिवार के साथ आनंद उठाते नजर आए। गुवाहाटी का गोपाष्टमी मेला शहर और गांव के बीच भी संबंध बनाने का काम करता है। मेले के दौरान ग्रामीण क्षेत्र के लोग लकड़ी, लोहे, पीतल आदि की घरेलू वस्तुएं बेचने के लिए मेले में आते हैं, वहीं महानगरवासियों में भी इन सब वस्तुओं को खरीदने के लिए पूरे साल भर का इंतजार रहता है। मेले के दौरान उमड़ने वाली भारी भीड़ भी यही संकेत देती है कि इस मेले के साथ सभी का जुड़ाव बहुत गहरा है। गौशाला प्रबंधन समिति और गोपाष्टमी मेला आयोजन समिति के पदाधिकारीगण इस मेले को सफल बनाने के लिए दुर्गा पूजा के बाद से ही पूरे जी-जान के साथ जुट जाते हैं।

गोपाष्टमी के पर्व का मूल उद्देश्य है गो-संवर्धन की तरफ सबका ध्यान आकृष्ट करना। अतएव इस त्योहार की प्रासंगिकता आज की युग में और बढ़ी है। कार्तिक महीने के शुक्ल पक्ष की अष्टमी को गोपाष्टमी कहा जाता है। इस दिन मुख्यत: गायों का पूजन किया जाता है। गायों को नहलाकर उन्हें नाना प्रकार से सजाया जाता है और मेंहदी के थापे तथा हल्दी-रोली से पूजन कर उन्हें विभिन्न भोजन कराए जाते हैं। भविष्य पुराण, स्कंद पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण, महाभारत में भी गौ के अंग-प्रत्यंग में देवी-देवताओं की स्थिति का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। शास्त्रों में भी कहा गया है 'मातर: सर्वभूतानां गाव:' यानी गाय समस्त प्राणियों

की माता है। इसी कारण आर्य-संस्कृति में पनपे शैव, शाक्त, वैष्णव, गणपत्य, जैन, बौद्ध, सिख आदि सभी धर्म-संप्रदायों में उपासना एवं कर्मकांड की पद्धतियों में भिन्नता होने पर भी वे सब गौ-माता के प्रति आदर भाव रखते हैं।

हमारा देश कृषि प्रधान होने के कारण गाय को पूज्यनीय माना जाता है। हमारे यहां विभिन्न त्योहारें में भी गाय आदि को नहला-धुलाकर उनका पूजन किया जाता है। असम में गोरू बिहू के दिन खास तौर पर गायों का पूजन आदि किया जाता है। हमारे देश के प्राय: सभी भागों में गोपाष्टमी का उत्सव बड़े ही उल्लास व श्रद्धा से मनाया जाता है। विशेषकर गौशालाओं तथा पिंजरा पोलो के लिए यह बड़ा ही महत्त्वपूर्ण उत्सव है। गोपाष्टमी के दिन न सिर्फ गौशालाओं में दान आदि करना चाहिए, बल्कि गायों के संवर्धन व विकास के लिए चर्चा आदि की जानी चाहिए। ऐसा करने से ही गो वंश की उन्नति हो सकेगी, जिस पर हमारी उन्नति सोलह आने निर्भर है।

हम गाय को 'गोमाता' कहकर संबोधित करते हैं। मान्यता है कि दिव्य गुणों की स्वामिनी गौ पृथ्वी पर साक्षात देवी के समान हैं। सनातन धर्म के ग्रंथों में कहा गया है- 'सर्वे देवा: स्थिता देहे सर्वदेवमयी हि गौ:।' गाय की देह में समस्त देवी-देवताओं का वास होने से यह सर्वदेवमयी है। मान्यता है कि जो मनुष्य प्रात: स्नान करके गौ स्पर्श करता है, वह पापों से मुक्त हो जाता है। संसार के सबसे प्राचीन ग्रंथ वेद हैं और वेदों में भी गाय की महत्ता और उसके अंग-प्रत्यंग में दिव्य शक्तियां होने का वर्णन मिलता है। गाय के गोबर में लक्ष्मी, गोमूत्र में भवानी, चरणों के अग्रभाग में आकाशचारी देवता, रंभाने की आवाज में प्रजापति और थनों में समुद्र प्रतिष्ठित हैं। मान्यता है कि गौ के पैरों में लगी हुई मिट्टी का तिलक करने से तीर्थ-स्नान का पुण्य मिलता है। यानी सनातन धर्म में गौ को दूध देने वाला एक निरा पशु न मानकर सदा से ही उसे देवताओं की प्रतिनिधि माना गया है। गौ या गाय को हमारी संस्कृति की प्राण कहा गया है। यह गंगा, गायत्री, गीता, गोवर्धन और गोविन्द की तरह पूज्य है। माना जाता है कि गायों का समूह जहां बैठकर आराम से सांस लेता है, उस स्थान की न केवल शोभा बढ़ती है, बल्कि वहां का सारा पाप नष्ट हो जाता है। इस लिहाज से माना जा सकता है कि गौशाला, गौ-माता और गोपाष्टमी का महत्व हमारे दैनिक जीवन से जुड़ा हुआ है।

आप के भरोसे है सामाजिक समस्याओं का समाधान

त्योहार-पर्व का मौसम बीत चुका है। अभी दो दिन पहले ही हम लोगों ने स्वच्छता का महापर्व छठ मनाया है। दुर्गा पूजा से लेकर दीपावली-भाईदूज तक हम सभी ने न सिर्फ हर्षोल्लास के साथ अपना वक्त गुजारा, बल्कि घर, गली-मोहल्लों की साफ-सफाई भी की। रही-सही कसर हमने छठ पूजा के मौके पर घाटों की सफाई कर पूरी कर दी। दुर्गा-लक्ष्मी और काली प्रतिमाओं विर्सजन के कारण ब्रह्मपुत्र के घाटों पर काफी कचरा-गंदगी जमा हो गई थी, हमने छठ पूजा पर वह भी साफ कर दिया। मगर, हम यह सोच कर निश्चिंत न हों कि हमने अपनी सारी जिम्मेदारी पूरी कर ली। अब हम सभी को विभिन्न सामाजिक समस्याओं के समाधान की दिशा में काम करना है। मैंने दुर्गोत्सव के दौरान देखा, बहुत से पूजा पंडालों में पर्यावरण, प्रदूषण, गैंडों की हत्या आदि बहुत सी समस्याओं को झांकियों के माध्यम से दिखाया-दर्शाया गया था। अब उन पर अमल करने का समय है।

समाज में व्याप्त समस्याओं को लेकर जनता को जागरूक करने की दिशा में हम सभी को मिलकर काम करना होगा। राज्य की सभी पूजा समितियों को इस दिशा में सक्रिय भागीदारी निभानी होगी। पूजा समितियों को लाखों रुपए खर्च कर सिर्फ दुर्गा पूजा कर लेने तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए। यह बात भी समझने की है कि किसी भी समस्या को लेकर जन-जागरूकता फैलाने के लिए लाखों रुपए की जरूरत नहीं है। इच्छा शक्ति, समय और मानव संशाधन की जरूरत है। यह बात समझ लेने की है कि समाज की हर एक समस्या को हम सरकार के भरोसे नहीं छोड़ सकते। पांचवीं कक्षा में पढ़ने वाला हमारा बच्चा दिन भर यदि मोबाइल पर गेम खेलता है या टीवी पर कार्टून फिल्में देखता है तो सरकार इस मामले में भला क्या कर सकती है। पहली नजर में लोगों को यह सामाजिक नहीं एक पारिवारिक समस्या लग सकती है। लेकिन यह भी सच है कि पारिवारिक समस्या ही एक दिन सामाजिक समस्या में तब्दील होती है। ऐसे बच्चों को समझा-बुझाकर उसकी इस लत को छुड़ाना भले ही उसके माता-पिता अथवा अभिभावक की जिम्मेदारी हो, मगर इसे एक समस्या के रूप में चिह्नित कर उसके बारे में लोगों को जागरूक बनाने की जिम्मेदारी मेरी-आपकी हम सभी की है।

इसी तरह मोबाइल फोन का अत्याधिक प्रयोग न सिर्फ जानलेवा साबित हो रहा है, बल्कि समाज के लिए भी एक समस्या बनता जा रहा है। मोबाइल फोन से अधिक उपयोग से कैंसर आदि का खतरा कई गुणा बढ़ जाता है, यह मैं नहीं विशेषज्ञ-चिकित्सक कहते हैं। मोबाइल फोन को सड़क दुर्घटना की एक मुख्य वजह के रूप में भी चिह्नित किया गया है। मोबाइल से बात करते वक्त वाहनों की चपेट में आकर प्रति वर्ष बड़ी संख्या में लोग मारे जाते हैं। इनमें बच्चों की संख्या भी कम नहीं है। हमारे देश में वर्ष 2017 में 9,000 से अधिक बच्चे सड़क दुर्घटनाओं में मारे गए। मैं यह नहीं कहता ये सारे बच्चे मोबाइल के अत्याधिक उपयोग के कारण ही मरे हैं, लेकिन यह बात भी सभी जानते हैं कि ऐसी सड़क दुर्घटनाओं का मोबाइल फोन भी एक मुख्य कारण है।

जंक फूड का अत्याधिक चलन हमारे समाज में एक बड़ी व्याधि के रूप में उभरकर सामने आ रहा है। मैगी, चाउमिन, पास्ता, पिज्जा अब विदेशी खाद्य

नहीं रह गए हैं। हमारे देश में खासकर युवाओं में ऐसे जंक फूड का जोरों से प्रचलन बढ़ रहा है। जंक फूड का बढ़ता प्रचलन और शारीरिक व्यायाम तथा अन्य गतिविधियों के कम होने की वजह से हमारा घर-समाज बीमारियों का घर बनता जा रहा है। इन वजहों से समाज में मधुमेह, हृदयरोग, उच्च रक्तचाप जैसी बीमारियां बड़ी तेजी से फैल रही है। समाज में शराब-सिगरेट-गुटके के बढ़ते प्रचलन ने कैंसर केखतरे को कई गुणा बढ़ा दिया है। समाज की इस चिंताजनक स्थिति के बीच हमें अपनी भूमिका, अपनी जिम्मेदारी-जवाबदेही को चिह्नित व सुनिश्चित करना होगा। हम लोगों की बीमारी भले ठीक न कर सकें, मगर उनको ऐसी बीमारियों के कारणों व गंभीरता के बारे में जागरूक तो कर ही सकते हैं। समाज को जागरूक कर आने वाले कल को ऐसी बीमारियों पर अंकुश लगाया जा सकता है। विशेषज्ञ भी यह बात मानते हैं कि जन-जागरूकता फैलाकर बहुत सी सामाजिक समस्याओं का समाधान किया जा सकता है।

पुस्तक मेले की प्रासंगिकता

असम में पुस्तक मेला हमेशा से ही लोगों में आकर्षण का केंद्र रहा है। इसमें कोई दो राय नहीं है कि असमवासी न सिर्फ अच्छा पढ़ने में बल्कि अच्छा लिखने में भी पारंगत हैं। असम साहित्य सभा देश की अकेला ऐसी सौ साल से अधिक पुराना संगठन है, जो साहित्यकार-पाठकों को लेकर गठित है और साहित्यकार-प्रकाशक और पाठकों के लिए काम करता है। साहित्य सृजन को बढ़ावा देने में साहित्य सभा के साथ-साथ पुस्तक मेलों की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। नवंबर का महीना आते ही असम के विभिन्न हिस्सों में पुस्तक मेले का आयोजन करने की होड़ सी लग जाती है। इसी कड़ी में आगामी 10 नवंबर से गुवाहाटी के चांदमारी स्थित अभियांत्रिक प्रतिष्ठान के खेल मैदान में पुस्तक मेले का आयोजन किया जा रहा है। इसके बाद तो गुवाहाटी में भी पुस्तक मेले के आयोजन का सिलसिला शुरू हो जाएगा। पुस्तक मेले को लेकर यहां के लोगों में हमेशा से ही आमसहमति रही है। गुवाहाटी में आयोजित पुस्तक मेले में असम के विभिन्न हिस्सों के साथ-साथ देश भर के प्रकाशक अपनी पुस्तकें लेकर आती है। यहां असमिया के अलावा बांग्ला,

हिंदी और अंग्रेजी भाषा की पुस्तकों को देखा-खरीदा जा सकता है। एक ही स्थान पर विभिन्न भाषा और विभिन्न विषयों की पुस्तकें उपलब्ध कराना सहज बात नहीं है। असम में आयोजित होने वाले पुस्तक मेलों के प्रति जनता में भारी उत्साह देखा जाता है। गुवाहाटी में आयोजित पुस्तक मेले में अपनी मनचाही पुस्तकें खरीदने के लिए विजयनगर, मिर्जा, छहगांव, रंगिया, पाठशाला, बजाली, नलबाड़ी और बरपेटा तक से पाठक आते हैं। असम के पुस्तक-पाठक अपने प्रिय लेखक और उनकी रचनाओं को लेकर कितने जागरूक हैं, इसकी झलक इन पुस्तक मेलों में भी देखी जा सकती है। पाठक अपने प्रिय लेखकों की पुस्तकों की सूची लेकर खरीददारी करने के लिए आते हैं। एक तरह से यदि देखा जाए तो पुस्तक मेला परिसर कई दिनों के लिए ज्ञान-पटल बन जाता है। पुस्तक मेले में लेखक-बुद्धिजीवियों द्वारा विभिन्न ज्वलंत समस्याओं पर विचार मंथन किया जाता है। इसके अलावा इस दौरान बड़ी संख्या में नवीन-पुरातन पुस्तकों का अनावरण भी किया जाता है। गुवाहाटी में आयोजित पुस्तक मेले में साल दर साल बढ़ती पुस्तकों के स्टाल की संख्या और पाठकों की भीड़ इस बात का इशारा है कि मोबाइल-कंप्यूटर के इस युग में भी पुस्तकों की प्रासंगिकता और आकर्षण बरकरार है। लोगों में पुस्तक पढ़ने और उनका संग्रहण करने का शौक अभी भी खत्म नहीं हुआ है।

ज्ञान-अर्जन करने में पुस्तकों का प्राचीनकाल से ही एक अहम स्थान रहा है। पुस्तकें ज्ञान का प्रकाश बिखेरती हैं, जो किसी भी सभ्यता को ज्ञानवान बनाने का मुख्य जरिया होती है। प्राचीनकाल में ऋषि-मुनिगण सांचीपात में ज्ञान-विज्ञान, धर्म-संस्कार की बातें लिखा करते थे। उससे पहले पत्थर युग में गुफाओं की दीवारों पर ज्ञानवर्धन बातें अथवा चित्रांकन आदि करने के उदाहरण मिलते हैं। ऐसे मामलों में सबसे बड़ी समस्या यह थी कि ज्ञान अर्थात सांचीपात को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाना नामुमकिन था। इस प्रकार देखा गया कि ज्ञान की रोशनी एक दायरे में कैद होकर रह गई थी। आज भी हमारे देश में सांचीपात में लिखे बहुत से ग्रंथ आदि संरक्षित है। असम में भी श्रीमंत शंकरदेव द्वारा रचित करीब 550 साल पुराने गीत-नाटक आदि विभिन्न सत्रों में संरक्षित कर रखे हुए हैं। ज्ञान की दुनिया में सबसे बड़ी क्रांति जर्मनी

के आविष्कारक योहानेस गुटेनबर्ग द्वारा 1439 में की गई प्रिंटिंग प्रेस के आविष्कार से आई। गुटेनबर्ग ने मूवेबल टाइप की भी रचना की थी। इनके द्वारा छापी गई बाइबल गुटेनबर्ग बाइबल के नाम से प्रसिद्ध है।

इसके बाद तो पूरी दुनिया में ज्ञान की क्रांति आ गई। एक से बढ़कर एक पुस्तकों का प्रकाशन होने लगा और दायरे में कैद ज्ञानवर्धक संदेश अथवा जानकारियों को मानो पूरा आकाश मिल गया हो। ये पुस्तकें पहले कुछ लोगों तक ही सीमित थी, बाद में पुस्तकालयों में मिलने लगी और आज तो घर-घर में उपलब्ध है। पुस्तकें न सिर्फ ज्ञान केदायरे को विस्तृत करती है, बल्कि सोचने की क्षमता को भी बढ़ाने के साथ ही परिष्कृत करने का काम करती है। इस बात पर संतोष किया जा सकता है कि असम में पुस्तक मेले की लोकप्रियता और प्रासंगिकता क्रमशः बढ़ती ही जा रही है।

ब्रह्मपुत्र के किनारे बने लाचित की गगनचुंबी मूर्ति

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने विगत 31 सितंबर को देश के प्रथम उप प्रधानमंत्री तथा प्रथम गृहमंत्री सरदार वल्लभभाई पटेल को समर्पित स्मारक 'स्टैच्यू ऑफ यूनिटी' का अनावरण किया। 182 मीटर ऊंची वल्लभभाई पटेल की यह मूर्ति गुजरात के सरदार सरोवर बांध से 3.2 किमी की दूरी पर साधू बेट नामक स्थान पर बनाई गई। इस मूर्ति के निर्माणकाल से ही यहां ब्रह्मपुत्र के किनारे बीच लाचित बरफूकन की एक गगनचुंबी मूर्ति बनाने की मांग होने लगी है। जिस तरह से सरदार वल्लभभाई पटेल को देश भर में नायक का दर्जा प्राप्त है, उस तरह लाचित बरफूकन को भी असम सहित पूर्वोत्तरवासी अपना हीरो मानते हैं। इन दोनों मामलों में एक आमधारणा आम है कि दोनों ही जननायकों को न सिर्फ भारतीय इतिहास में कम जगह मिली, बल्कि इनको सत्ताधारी पार्टियों से वह सम्मान हासिल नहीं हो सका, जिसका कि यह दोनों हकदार थे। अब स्थितियां बदलने लगी है। जिन वीर पुरुषों को बिसरा दिया गया था, उनको फिर से यथायोग्य स्थान, मान-सम्मान देने की कवायद शुरू हो गई है। ऐसे में बेहतर होगा कि हम वीर लाचित बरफूकन किस पार्टी के थे, इस विवाद में उलझने के बजाय ब्रह्मपुत्र

किनारे बीर लाचित की मूर्ति स्थापित करने की दिशा में सभी राजनीतिक-गैर राजनीतिक दल-संगठन एक होकर प्रयास करें।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने विगत 31 अक्टूबर को दुनिया की सबसे ऊंची मूर्ति 'स्टैच्यू ऑफ यूनिटी' का अनावरण किया, यह अपनी ऊंचाई के कारण अब दुनिया की सबसे ऊंची मूर्ति बन गई है। दुनिया में अब दूसरे स्थान पर चीन में स्प्रिंग टेंपल में बुद्ध की मूर्ति है, जिसकी ऊंचाई 153 मीटर है। गुजरात सरकार का मानना है कि इस विशालकाय मूर्ति को देखने के लिए देश ही नहीं, बल्कि विदेशों के पर्यटक भी आएंगे। इस नाते सरकार की ओर से पर्यटकों के ठहरने के लिए भी स्मारकस्थल पर विशेष व्यवस्था की गई है। यह मूर्ति नर्मदा नदी पर सरदार सरोवर बांध से 3.5 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। मूर्ति बनाने वाली कंपनी एल एंड टी के मुख्य कार्यपालक अधिकारी एवं प्रबंध निदेशक एस एन सुब्रमण्यम ने कहा, 'स्टैच्यू ऑफ यूनिटी' जहां राष्ट्रीय गौरव और एकता को प्रतीक है, वहीं यह भारत के इंजीनियरिंग कौशल तथा परियोजना प्रबंधन क्षमताओं का सम्मान भी है। गुजरात के तत्कालीन मुख्यमंत्री नरेन्द्र मोदी ने 31 अक्टूबर 2013 को सरदार पटेल के जन्मदिवस के मौके पर इस विशालकाय मूर्ति के निर्माण का शिलान्यास किया था। श्री मोदी ने मूर्ति के उद्घाटन के मौके पर आयोजित कार्यक्रम को संबोधित करते हुए कहा कि उन्होंने सोचा भी नहीं था कि उनको इस मूर्ति के उद्घाटन करने का मौका मिलेगा। विश्व की सबसे ऊंची मूर्ति के आधार के साथ कुल ऊंचाई 208 मीटर (682 फीट) है। शुरुआत में केंद्र सरकार द्वारा इस परियोजना की कुल लागत लगभग 3,001 करोड़ रुपए रखी गई थी। बाद में लार्सन एंड टूब्रो ने अक्टूबर 2014 में सबसे कम 2,989 करोड़ रुपए की बोली लगाई, जिसमें आकृति, निर्माण तथा रखरखाव शामिल था। 31 अक्टूबर 2013 को इस परियोजना का निर्माण कार्य का प्रारंभ किया गया, जो इस साल के मध्य अक्टूबर में पूरा हो गया।

लौह पुरुष कहे जाने वाले सरदार पटेल की मूर्ति में लगा लोहा पूरे भारत के गांव में रहने वाले किसानों से खेती के काम में आने वाले पुराने और बेकार हो चुके औजारों का संग्रह करके जुटाया गया। सरदार वल्लभभाई पटेल राष्ट्रीय एकता ट्रस्ट ने इस कार्य के लिए देश भर में अपने 36 कार्यालय खोले और लगभग

5 लाख किसानों से लोहा जुटाने का लक्ष्य रखा गया। इस अभियान का नाम 'स्टैच्यू ऑफ यूनिटी अभियान' दिया गया। इस अभियान में लगभग 6 लाख ग्रामीणों ने मूर्ति स्थापना हेतु लोहा दान किया। इस दौरान लगभग 5,000 मीट्रिक टन लोहे का संग्रह किया गया, हालांकि शुरुआत में घोषणा की गई थी कि संग्रहित किए गए लोहे का उपयोग मुख्य प्रतिमा में किया जायेगा, मगर बाद में यह लोहा प्रतिमा में उपयोग नहीं हो सका और इसे परियोजना से जुड़े अन्य निर्माणों में प्रयोग किया गया। मूर्ति निर्माण के अभियान से ही 'सुराज' प्रार्थना-पत्र बना जिसमें जनता बेहतर शासन पर अपनी राय लिख सकती थी। सुराज प्रार्थना पत्र पर 2 करोड़ लोगों ने अपने हस्ताक्षर किए, जो कि विश्व का सबसे बड़ा प्रार्थना-पत्र बन गया जिस पर हस्ताक्षर हुए हों। जन सहभागिता से बने ऐसे स्मारक का नाम 'स्टैच्यू ऑफ यूनिटी' ही रखा जाना चाहिए।

पटरियों पर दौड़ती मौत

दशहरे के दिन पंजाब के अमृतसर के निकट शाम को रावण दहन देखने के लिए रेल की पटरी पर खड़े लोगों के ऊपर ट्रेन चढ़ने से 61 लोगों की मौत हो गई और 150 से अधिक लोग घायल हो गए। यह ट्रेन जालंधर से अमृतसर आ रही थी तभी जोड़ा फाटक पर यह हादसा हुआ। इस हादसे के बीच जारी राजनीतिक घमासान के बीच एक बार फिर रेल पटरी तथा आम लोगों की सुरक्षा को लेकर गंभीर सवाल खड़े किए जा रहे हैं। रेलवे विभाग इस हादसे को अपनी चूक मानने से इंकार कर रहा है, जबकि रेल चालक ने कहा है कि वह यदि आपातकालीन ब्रेक लगा देता तो इससे अधिक जानमाल का नुकसान हो सकता था। कुल मिलाकर रेलवे, केंद्र व राज्य सरकार के आपसी आरोप-प्रत्यारोपों के बीच नागरिक सुरक्षा का सवाल गौण होता नजर आ रहा है।

असम में भी प्रति साल रेल पटरी पार करते वक्त बड़ी संख्या में जंगली हाथियों के अलावा अन्य वन्य जंतुओं की मौत हो जाती है। असम में बहुत

से स्थान, जो कि जंगली हाथियों के गलियारे हैं, से होकर ट्रेन गुजरती है और अक्सर ट्रेन की चपेट में आकर जंगली हाथियों की मौत हो जाती है। मोबाइल की लत के कारण भी महानगर गुवाहाटी में एक-आध राहगीरों के पटरी पार करते वक्त ट्रेन की चपेट में आने की घटनाएं घट चुकी है। इतना कुछ होने के बावजूद लगता है रेल प्रशासन अथवा केंद्र सरकार इस मसले को लेकर गंभीरता बरतने को तैयार नहीं दिखती। देश भर में जहां से भी रेल पटरी गुजरती है, उसके आस-पास का एक बड़ा हिस्सा रेलवे की संपत्ति होता है और इस क्षेत्र में सिवाय रेलवे प्रशासन के किसी की भी नहीं चलती। राज्य सरकार की भी नहीं। ऐसी स्थित में ट्रेन के अंदर अथवा रेल पटरी से बाहर रेलवे की भूमि पर होने वाली हर एक घटना की जिम्मेदारी रेलवे प्रबंधन को अपने सर लेनी ही होगी।

प्रति वर्ष रेल पटरियों के किनारे होने वाली दुर्घटनाएं और इनमें मारे जाने वाले लोगों के आंकड़ें सचमुच में चौंकाने वाले हैं। अब रेलवे प्रशासन को यह बात गंभीरता के साथ सोचनी चाहिए कि रेल पटरियों के आस-पास बसने वाले लोगों की सुरक्षा किस तरह से संभाली जा सकती है। कुछ जानकारों की राय है कि रेल पटरी के दोनों और कंटीली तार की बाड़ लगा देनी चाहिए, ऐसा करने से जोड़ा फाटक जैसी दुर्घटनाओं को रोका जा सकेगा। मुख्यमंत्री कैप्टन अमरिंदर सिंह के मीडिया सलाहकार रवीन ठुकराल ने उक्त दुर्घटना के मृतकों के परिजनों को पांच-पांच लाख रुपए की सहायता देने की भी जानकारी दी। अधिकारियों ने बताया कि रावण के पुतले को आग लगाने और पटाखे फूटने के बाद भीड़ में भगदड़ मच गई। कुछ लोग रेल की पटरियों की ओर भागने लगे जहां पहले से ही बड़ी संख्या में लोग खड़े होकर रावण दहन देख रहे थे। उसी वक्त दो विपरीत दिशाओं से एक साथ दो ट्रेनें आई और लोगों को बचने का बहुत कम समय मिला। एक ट्रेन की चपेट में कई लोग आ गए। हादसे के बाद मौके पर करुण क्रंदन मच गई। सभी लोग अपनों की सुरक्षित तलाशी में जुट गए। हादसा स्थल जोड़ा फाटक अमृतसर के पूर्वी विधानसभा क्षेत्र में पड़ता है। जोड़ा फाटक के पास पार्षद विजय मदान के पुत्र सौरभ मदान द्वारा यह दशहरा कार्यक्रम आयोजित किया जा रहा था। इसमें

मुख्य अतिथि पूर्व मुख्य संसदीय सचिव डॉ. नवजोत कौर सिद्धू थीं। बताया जा रहा है कि हादसे के बाद वह वहां से गायब हो गईं।

आजकल रेल दुर्घटनाएं और इनमें लोगों का मरना आमबात हो गई है। रेल विभाग और सरकारें मृतक अथवा घायल रेल यात्रियों को मुआवजा देकर ही अपनी जिम्मेदारी पूरी समझ लेते हैं। जबकि हकीकत तो यह है कि मानव संपदा का कोई मोल नहीं हो सकता। इन हादसों के बीच पटरियों की सुरक्षा का मामला भी एक बार जोर-शोर से उठाया जा रहा है। जानकारों का सुझाव है कि दोनों ओर कंटीली बाड़ लगाकर क्या रेल पटरियों को और अधिक सुरक्षित नहीं बनाया जा सकता। तेज गति से आ रही ट्रेन की चपेट में आकर 61 लोगों के मारे जाने और 150 यात्रियों के घायल हो जाने की घटना को हल्के से नहीं लिया जाना चाहिए। जोड़ा फाटक के पास यह रेल हादसा कैसे हुआ, इसके लिए कौन जिम्मेदार है, यह सब अलग जांच का विषय हो सकता है, लेकिन आगे भविष्य में ऐसे रेल हादसे नहीं होगा, इस बात की गारंटी कौन लेगा।

दुर्गा पूजा पर हो स्वच्छता की बातें

नवरात्रा प्रारंभ हो गए हैं, दुर्गोत्सव का माहौल है और धरावासी माता दुर्गे और उनके परिवार का स्वागत करने के लिए आतुर हुए जा रहे हैं। दुर्गा मैया के स्वागत के लिए देश-विदेश में बड़े पैमाने पर तैयारियां की जा रही है। लाखों-करोड़ों खर्च कर पूजा पंडाल, देवी प्रतिमा, आलोक सज्जा आदि की तैयारियां की जा रही हैं। पूरा देश देवी दुर्गा और उनके विभिन्न रूपों की आराधना-भक्ति में डूबा हुआ है और यह सिलसिला अगले कई दिनों तक चलेगा। इसके बाद शुरू हो जाएगा लक्ष्मी पूजा, काली पूजा, भाई दूज, छठ पूजा जैसे अन्य त्यौहारों का आना-जाना। कुल मिलाकर त्यौहार की खुशियां लंबी चलने वाली है। लेकिन इन सब के बीच हमें स्वच्छता की भी बात करनी पड़ेगी।

स्वच्छता हमारे घर, मोहल्ले और देश की। इस बात को विस्तार देने की

आवश्यकता नहीं है कि दूषित माहौल में पूजन कार्य नहीं हो सकता। हम भारतवासी उत्सवप्रेमी लोग हैं। इसीलिए दुर्गा पूजा हमारे लिए दुर्गोत्सव है तो होली रंगोत्सव। लेकिन किसी भी उत्सव से पहले और बाद में साफ-सफाई और स्वच्छता जरूरी है। दुर्गा पूजा के पांच दिन हमारे महानगर की गलियों-रास्तों पर कितना कचरा-गंदगी फैली रहती है। इसकी हम सभी को जानकारी है। क्या ही बेहतर हो, यदि हम दुर्गोत्सव के चार दिन इधर-उधर कचरा-गंदगी न फेंकने का संकल्प ले लें। पूजा के चार दिन हम स्वच्छता को अंगीकार कर अपने आप में एक अच्छी आदत विकसित करने की शुरुआत कर सकते हैं। देखा जाए तो दुर्गा पूजा के दौरान महानगर में सबसे अधिक कचरे का सृजन होता है। पिछले कई सालों से देखने में आया है कि विभिन्न क्लब और संगठन के पदाधिकारी-सदस्य पूजा पूर्व अपने-अपने मोहल्ले में सफाई अभियान चलाते हैं। यह एक बहुत अच्छी बात है और इसकी जितनी भी तारीफ की जाए कम है। लेकिन पूजा के बाद भी हम यदि अपने इलाके-मोहल्ले में ऐसा ही सफाई अभियान चलाते हैं तो वह सोने में सुहागा जैसा होगा। अक्सर देखने में आता है कि दुर्गा पूजा के गुजर जाने के बाद हम अपने कामधाम में लग जाते हैं और साफ-सफाई की बातें गौण होकर रह जाती है। हम यदि दुर्गा पूजा से पहले और बाद में भी अपने घर-मोहल्ले की साफ-सफाई का संकल्प लें तो यह एक अच्छी शुरुआत हो सकती है।

इसके अलावा दुर्गा पूजा कमेटियों को भी इस बारे में गंभीरता से सोचना चाहिए। पूजा के चार दिन पूजा पंडाल के आस-पास, सड़कों के किनारे कचरे के ढेर लगे नजर आते हैं। दुर्गा पूजा कमेटियों को साफ-सफाई के लिए भी एक बजट बनाना चाहिए। इसकेअलावा पूजा पंडालों के आस-पास अस्थायी चाट-पकौड़े, खाने-पीने आदि की दुकानें लगाने वालों को अपने आस-पास की साफ-सफाई के लिए आगे आना चाहिए। अपने आस-पास के इलाके की साफ-सफाई की जिम्मेदारी किसी एक व्यक्ति की नहीं, बल्कि मोहल्ले के सभी लोगों की है और इस जिम्मेदारी की कतई अनदेखी नहीं की जानी चाहिए। अंत में गुवाहाटी नगर निगम जैसे संस्थानों को भी इस दिशा में पूरी तत्परता के साथ काम करना होगा। विजयादशमी के बाद महानगर में पसरे

कचरे को उठाने की मुख्य जिम्मेदारी नगर निगम की है। पूजा के कारण अतिरिक्त कचरा निकलने के कारण कचरा उठाने के काम में भी अतिरिक्त लोग लगाए जाने चाहिए। सबसे महत्वपूर्ण बात यह भी है कि पूजा की खुशियों में बावले हम नगरवासी त्यौहार के चार दिन कम से कम कचरे का सृजन और अधिक से अधिक डस्टबिन का उपयोग करें। तभी जाकर हम दुर्गोत्सव की प्रासंगिकता को बनाए रख पाएंगे।

दुर्गा पूजा के मौके पर बढ़ता प्रदूषण भी एक बड़ी समस्या है। इन चार दिन शब्द प्रदूषण से शुरू कर पर्यावरण के हर स्तर में प्रदूषण कई गुणा बढ़ जाता है। दुर्गोत्सव के दौरान अन्य दिनों की अपेक्षा कई गुणा अधिक वाहन सड़कों पर निकलते हैं तो स्वाभाविक है कि इनसे निकलने वाला धुंआ भी वातावरण को प्रदूषित करता है। पूजा के चार दिन सड़क पर वाहनों की लंबी-लंबी कतारें लगाना भी आम बात है। क्या न अच्छा हो यदि हम दुर्गोत्सव के चार दिन कम से वाहन चलाने और अधिक से अधिक पैदल चलने का संकल्प लें। इन सब बातों पर गौर जरूर कीजिएगा, पर सच्चे मन से।

ऑस्कर की दौड़ में विलेज रॉकस्टार्स

'ऑस्कर' किसी भी फिल्म निर्माता के लिए एक ऐसा शब्द है, जिसे चाहकर भी कोई नजरअंदाज नहीं कर सकता। इसके बावजूद अब तक कोई भारतीय फिल्म ऑस्कर पुरस्कार नहीं जीत पाई है। हर साल कई उम्मीदें बंधती हैं और एक ही झटके में टूट भी जाती हैं। लेकिन यह साल कुछ अलग ही संकेत दे रहा है। असम की बेटी रीमा दास की फिल्म 'विलेज रॉकस्टार' को ऑस्कर के लिए नामांकित किया गया है। गरीब बच्चों पर आधारित फिल्म विलेज रॉकस्टार्स ने 65वें राष्ट्रीय फिल्म फेस्टिवल 2018 में सर्वश्रेष्ठ फीचर फिल्म के लिए स्वर्ण कमल का पुरस्कार जीता था। इसके अलावा इस फिल्म ने दुनिया भर में 44 फिल्म फेस्टिवल में अवार्ड जीते हैं। अब 91वें आस्कर अवाड्र्स में 'विलेज रॉकस्टार' हमारे देश का प्रतिनिधित्व करेगी। फिल्म फेडरेशन ऑफ इंडिया ने इस बात की आधिकारिक घोषणा की। मालूम हो कि ऑस्कर्स के नॉमिनेशन की दौड़ में पद्मावत, राजी, हिचकी, ऑक्टोबर, लव सोनिया, पिहू, कड़वी हवा, मैं गायत्री जाधव, बिस्कोपवाला, मंटो, 102

नॉट आउट, पैडमैन, आदि जैसी कई हिंदी फिल्में शामिल थीं। विलेज रॉकस्टार का चयन करने के लिए जूरी का शुक्रिया अदा करते हुए रीमा इसे अपनी मेहनत और जुनून का फल बताती है। मूल रूप से असम की रीमा दास ने पुणे यूनिवर्सिटी से सोशियोलॉजी में मास्टर्स करने के बाद नेट का एग्जाम पास किया और टीचर बन गईं, मगर वह एक्ट्रेस बनना चाहती थीं, इसलिए स्कूल में होने वाले नाटकों में ही एक्टिंग करती रहीं। इसी दौरान साल 2003 में उनका मुंबई जाना हुआ। यहां उसने पृथ्वी थियेटर में प्रेमचंद की कहानी गोदान की रंगमंचीय प्रस्तुति में अहम भूमिका अदा की। मुंबई आने के बाद बॉलीवुड को लेकर रीमा की दिलचस्पी पैदा हुई और उन्होंने एक सिरे से सिनेमा को पढ़ना-समझना शुरू किया। रीमा ने वर्ष 2009 में अपनी पहली शॉर्ट फिल्म 'प्रथा' का निर्माण किया था। इसके बाद उन्हें समझ आया कि उनका असली सपना फिल्म बनाना है। इसके बाद फिल्ममेकिंग सीखने के लिए वो लगातार सिनेमा से जुड़ा साहित्य पढ़ती रहीं और बारीकी से फिल्मों का अध्ययन करती रहीं। देखते ही देखते वह वन वुमन क्रू बन गईं। राइटिंग, डायरेक्शन, प्रोडक्शन, एडिटिंग, शूटिंग से लेकर कॉस्ट्यूम डिजाइनिंग तक सब कुछ उसके ही जिम्मे था।

इसके बाद उनके दिमाग में आया विलेज रॉकस्टार का आइडिया लोकेशन बना उनका अपना गांव। स्टार कास्ट में शामिल हुए उसी गांव के बच्चे। उसने बताया कि विलेज रॉकस्टार्स बनाने में 4 साल और 25 लाख में रुपए लग गए। इसके लिए उसके परिवार वालों ने अपने पैसे दिए, जिसके दम पर यह फिल्म बना सकी।

रीमा ने अपनी फिल्म का बैकग्राउंड असम का छोटा-सा गांव छयगांव रखा है। ये 10 साल की लड़की धुनू की कहानी है। जो अपनी विधवा मां के साथ रहती है। धुनू आस-पास होने वाले आयोजनों में सांप बेचने में अपनी मां की मदद करती है। इसी दौरान वह एक रोज एक बैंड को परफॉर्म करते देखती है और मंत्रमुग्ध हो जाती है। इसके बाद वह एक कॉमिक्स बुक पढ़ती है और तय करती है कि वह अपना एक बैंड बनाएगी, जिसमें ओरिजनल इंस्ट्रूमेंट्स बजाए जाएंगे। धुनू अपनी गिटार खरीदने के लिए पैसे जमा करती

है। इसी दौरान गांव में बाढ़ आ जाती है और धुनू की प्राथमिकताएं बदल जाती है। इसके बाद आशा और खुद पर भरोसे का गहरा सामंजस्य देखने को मिलता है। फिल्म दर्शक को इमोशनल कर देती है।

रीमा ने विलेज रॉकस्टार्स को ऑस्कर तक पहुंचाने में भले ही कामयाबी हासिल कर ली हो, लेकिन फिल्म के खाते में ऑस्कार अवार्ड हासिल करने के लिए अभी भी एक लंबी दूरी तय करनी है। इस फिल्म के प्रमोशन के लिए करीब दो करोड़ रुपए चाहिए। सरकार की ओर से भले ही 50 लाख रुपए की मदद की घोषणा की गई हो, मगर बाकी बचे डेढ़ करोड़ के लिए अभी भी संघर्ष बाकी है। रीमा का यह सपना साकार हो सकता है, असम को ऑस्कर सम्मानित राज्य का दर्जा मिल सकता है। यदि इस फिल्म को ऑस्कर अवार्ड जीताने के लिए अब से सामूहिक रूप से कोशिशें की जाए। इसके लिए कारपोरेट घराने, केंद्र सरकार के सार्वजनिक उपक्रम, वित्तीय संस्थान, अन्य दल-संगठन सभी आगे आएं और अपने-अपने तरीके से सहयोग का हाथ बढ़ाएं। हम सभी एक-एक कदम आगे की ओर बढ़ाएं तो विलेज रॉकस्टार्स से आस्कर अधिक दूर नहीं है।

दुर्गा पूजा, पुख्ता हो सुरक्षा इंतजाम

दुर्गा पूजा को अब महीने भर भी नहीं रह गया है। कहीं-कहीं पूजा पंडाल बनने शुरू हो गए हैं तो कहीं पर तैयारियां जारी है। कुछ ही दिनों में विशाल पंडाल खड़े कर दिए जाएंगे। पिछले कई सालों से दुर्गा पूजा समितियों में अधिक से अधिक ऊंचा पूजा पंडाल बनाने की होड़ लगी हुई है। सार्वजनिक दुर्गा पूजा के लिए कम होती जगह और ऊंचे पूजा पंडाल के कारण उत्पन्न स्थितियों पर चिंतन करना जरूरी हो गया है। जिला प्रशासन को भी अपने सुरक्षा उपायों की समीक्षा करनी होगी। हर साल नई-नई चुनौतियां पेश आती है। ऐसे में उक्त चुनौतियों को ध्यान में रखकर ही सुरक्षा उपाय करने होंगे। पिछली साल लताशील खेल मैदान में गुवाहाटी सार्वजनिन दुर्गा पूजा समिति ने सौ फीट ऊंचे और 90 फीट चौड़े पंडाल में 80 फीट ऊंची भगवान गणेश की प्रतिमा बनाई थी और उसके ऊपर मां दुर्गा की प्रतिमा स्थापित की गई थी। वर्ष 2016 में इसी पूजा पंडाल में ऊंची-ऊंची पहाड़ी बनाकर मां वैष्णव देवी का दरबार सजाया गया था। उस बार तो पूजा पंडाल में दर्शक-श्रद्धालुओं की इतनी भीड़ उमड़ी कि सुरक्षा को ध्यान में रखकर पंडाल का गेट ही बंद करना पड़ा था।

पिछले ही साल विष्णुपुर सार्वजनिक दुर्गा पूजा कमेटी ने भी पूजा-परिसर में बांस द्वारा सौ फीट ऊंची दुर्गा प्रतिमा का निर्माण की योजना बनाई थी। योजना अनुसार प्रतिमा का निर्माण कार्य भी शुरू हुआ, लेकिन एकाएक आए तूफान से सौ फीट ऊंची प्रतिमा धराशाई हो गई। क्लब की योजना अपनी इस प्रतिमा को गिनीज बुक ऑफ वर्ल्ड रिकाई में दर्ज कराना भी था। दुर्गा पूजा कमेटी के मार्केटिंग प्रमुख वीरेन सरकार ने इस प्रतिमा विश्व की सबसे ऊंची बांस-निर्मित

प्रतिमा बताते हुए कहा था कि हमने गिनीज बुक ऑफ वर्ल्ड रिकार्ड के लिए इसका पंजीकरण (रेफरेंस : 1708121524252 बीएस) कराया है। लेकिन तूफान ने सारे किए धरे पर पानी फेर दिया। बाद में कारीगरों ने दिन-रात एक कर उसी जगह नए सिरे से बांस निर्मित प्रतिमा का निर्माण किया। तीन साल पहले भी यहां करीब 65 फीट ऊंचे पंडाल में मेक इन इंडिया के प्रतीक शेर को एक असुर को दबोचते हुए दिखाया था।

कहने का मतलब यह है कि ऊंचे पूजा पंडाल बनाने की होड़ को रोकने की जरूरत है। इसके लिए जिला प्रशासन को गंभीरता के साथ विचार करना पड़ेगा। पिछले साल विष्णुपुर में विशालकाय प्रतिमा के धराशायी होते वक्त गनीमत रही कि किसी को भी खरोंच तक नहीं आई, लेकिन यही हादसा दुर्गोत्सव के चार दिनों में से किसी भी दिन शाम के वक्त होता तो भारी जानमाल का नुकसान उठाना पड़ सकता था। सिर्फ यही दो पूजा समिति ही नहीं अन्य पूजा समितियों में भी ऊंचे पूजा पंडाल बनाने की होड़ नजर आती है। पूजा का पंडाल बड़ा बने, सजावट आकर्षक हो, आलोक-सज्जा लाजवाब हो, इसमें किसी को भी आपत्ति नहीं है, लेकिन इन सब के साथ-साथ लोगों की सुरक्षा का ध्यान रखना भी जरूरी है।

सुरक्षा की दृष्टि से पिछले कई सालों से एक और खामी नजर आती है। पूजा मंडपों में श्रद्धालुओं का प्रवेश और निकासी द्वार इतना संकरा होता है कि दोनों दरवाजे के अंदर-बाहर श्रद्धालुओं की भारी भीड़ जमा हो जाती है। कई पूजा पंडालों तक तो बिल्कुल पतली-सी गली से होकर गुजरना पड़ता है। किसी-किसी पूजा पंडालों में तो श्रद्धालुओं की भीड़ को नियंत्रण करने के नाम पर पंडाल से बाहर ही उन्हें रोक दिया जाता है। ऐसे में पहले से इंतजार कर रहे श्रद्धालुओं को पंडाल में जाने देने के लिए जब रस्सी खोली जाती है तो भीड़ में भगदड़ जैसी स्थिति पैदा हो जाती है। ऐसी स्थिति किसी भी वक्त बड़े हादसे का कारण बन सकती है। जिला प्रशासन को दुर्गा पूजा की सुरक्षा से जुड़ी तैयारियां करते वक्त इन सब बातों का भी ध्यान रखना पड़ेगा। प्रशासन को चाहिए कि इस बार पंडाल की अधिकतम ऊंचाई और पंडाल के प्रवेशद्वार की सुगमता पर सर्वाधिक ध्यान दिया जाए।

हिमा को सम्मान खेल को मिला मान

जकार्ता में संपन्न 18वें एशियाई खेलों में स्वर्ण पदक के साथ पदकों की हैट्रिक जमाने वाली देश की पहली महिला धावक तथा असम की 'उड़नपरी' हिमा दास का सम्मान कर राज्य सरकार ने खेलों का मान बढ़ाने का काम किया है। विगत 7 सितंबर को राज्य सरकार की ओर से हिमा के स्वागत की जिस भव्य पैमाने पर तैयारियां की गई, वह सचमुच में किसी भी उभरते खिलाड़ी के हौसले को उड़ान देने वाली थी। रही-सही असर अखिल असम छात्र संघ ने अपने 10 सितंबर के अभिनंदन समारोह में पूरी कर दी। लताशील खेल मैदान में आसू के इस अभिनंदन समारोह में 150 से भी अधिक संगठनों ने हिमा का अभिनंदन किया। यह दोनों अलग-अलग कार्यक्रम साबित करते हैं कि हमारे राज्य में खेल और खिलाड़ियों को कितना सम्मान मिलता है। अर्जुन पुरस्कार प्राप्त धावक भोगेश्वर बरुवा से लेकर टेबल टेनिस खिलाड़ी मोनालिशा बरुवा मेहता, तीरंदाज जयंत तालुकदार, मुक्केबाज शिव थापा ने खेल जगत में असम का नाम रोशन

करने का काम किया है। हिमा ने इसी कड़ी को आगे बढ़ाते हुए एक बार फिर विश्व पटल पर असम को एक नई पहचान दी है। हिमा की इस उपलब्धि को राज्यवासी अपनी उपलब्धि मानकर चल रहे हैं।

राज्य सरकार ने 7 सितंबर को हिमा की अगवानी में लोकप्रिय गोपीनाथ बरदलै अंतर्राष्ट्रीय हवाईअड्डे पर लाल कालीन बिछा था। मुख्यमंत्री सर्वानंद सोनोवाल और वित्त मंत्री डॉ. हिमंत विश्व शर्मा दोनों ही हिमा का स्वागत करने के लिए समय से पहले ही हवाई अड्डे पर पहुंच गए थे। इसके अलावा अन्य कई मंत्री-विधायकों के अलावा बड़ी संख्या में हिमा प्रशंसक भी अपनी सितारा खिलाड़ी की एक झलक पाने के लिए हवाई अड्डे के अंदर-बाहर जमा थे। हिमा का जुलूस की शक्ल में हवाईअड्डे से सुधाकंठ भूपेन हजारिका की समाधि और बाद में सरुसजाई के इंदिरा गांधी एथलेटिक स्टेडियम के ट्रैक तक आना, उसको नमन करना किसी चलचित्र से कम न था। इसी दिन शाम को खेल और युवा कल्याण विभाग द्वारा श्रीमंत शंकरदेव कलाक्षेत्र में आयोजित सम्मान समारोह में मुख्यमंत्री ने हिमा को राज्य सरकार की ओर से 1.6 करोड़ रुपए की पुरस्कार राशि प्रदान कर खेल को बढ़ावा देने में सरकार की मंशा को और भी अधिक पुख्ता कर दिया। सिर्फ यही नहीं हिमा के लिए खेल विभाग में नौकरी का प्रस्ताव देने के साथ ही उसे आगामी दो सालों के लिए खेल और युवा कल्याण विभाग के ब्रांड एंबेसडर का नियुक्ति पत्र भी प्रदान किया गया। यह बताने की जरूरत नहीं कि किसी भी खिलाड़ी के लिए सम्मान और आर्थिक सहयोग दोनों ही उसकी प्रतिभा को निखारने में भारी मददगार साबित होते हैं। आर्थिक खस्ताहाली के कारण अंतर्राष्ट्रीय स्तर के खिलाड़ी के सड़क किनारे चाय बेचने अथवा अपने मेडल बेचकर पेट भरने जैसी खबरों को अखबारों की सुर्खियां बनते हमने देखा है। यह अच्छी बात है कि सोनोवाल सरकार के सत्ता में आने के बाद से ही एक खेल नीति पर अमल किया जा रहा है। इस नीति के अनुसार राज्य सरकार की ओर से अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर एक स्वर्ण पदक जीतने पर 50 लाख, एक रजत पदक जीतने पर 30 लाख और कांस्य पदक जीतने पर खिलाड़ी को 20 लाख रुपए की आर्थिक मदद दी जाती है। इस सरकार से पहले ऐसा नहीं था। मुझे याद है मुक्केबाज शिव थापा को राज्य सरकार की ओर से घोषित एक लाख रुपए की इनामी राशि मिलने में लंबा वक्त लग गया था, वह भी तब जबकि तत्कालीन

मुख्यमंत्री तरुण गोगोई ने उक्त इनामी राशि की घोषणा की थी। ऐसी पहली बार ही हुआ कि खिलाड़ी ने अंतर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता में पदक जीतने के बाद जैसे ही असम की भूमि पर अपना पांव रखा, राज्य सरकार ने उसको उसकी इनामी राशि थमा दी। सरकार की इस नीयत को बहुत ही सकारात्मक नजरिए से देखा जाना चाहिए। मुख्यमंत्री द्वारा हिमा से की गई यह अपील की ओलंपिक में अपना पदक पक्का करने के लिए वह बिना दबाव के खेले, सरकार उसके हर कदम के साथ है, यह उनके खेल प्रेमी होने की भी चुगली करता है।

आसू का शुमार राज्य के युवाओं के मन-मस्तिक को प्रभावित करने वाले संगठन के रूप में किया जाता है। हिमा आसू की धिंग इकाई की खेल सचिव पद पर भी काबिज है। हिमा के स्वागत में आसू ने लताशील खेल मैदान में स्वागत समारोह का जिस पैमाने पर आयोजन किया, वह न सिर्फ प्रशंसनीय है, बल्कि अन्य उभरते खिलाड़ी के लिए प्रेरणादायक भी है। कुल मिलाकर राज्य सरकार, खेल संगठन और अन्य संगठनों द्वारा चलाया गया यह सिलसिला चलता रहना चाहिए।

भूपेन दा के गीतों की प्रासंगिकता

8 सितंबर, 2018 को हम सभी सुधाकंठ भूपेन हजारिका का 92वां जन्मदिन मनाएंगे। अंधेरी मुंबई की कोकिलाबेन हास्पिटल में 2011 की 5 नवंबर को भूपेन हजारिका ने अंतिम सांस ली। आज के दौर में एक स्वाभाविक सवाल मन में आता है कि इस दौर में उनके गीतों की प्रासंगिकता कितनी है। इस में कोई दो राय नहीं है कि उन्होंने अपने गीतों में गरीबी, मानवता, जाति, पहचान और प्रेम को विशेष तवज्जो दी। उनके बांग्ला गीत 'डोला हो डोला' में पालकी उठकार पहाड़ी चढ़ रहे कहारों की दशा और दिशा का मार्मिक चित्रण किया गया है, तो 'मानूह-मानूहर बाबे' में सीधा सवाल पूछा गया है कि अगर दानव मानव हो गया तो क्या मनुष्य को शर्म नहीं आएगी। 'आमि असमिया न होउं दुखिया' में उन्होंने असमिया स्वाभिमान को जगाने का काम किया है। उनके लिखे और गाए गीत सीधे लोगों के मन की गहराई तक उतर कर उनकी संवेदनाओं को स्पर्श करने का काम करते हैं। अपने हिंदी गीत 'गंगा बहती हो क्यों' जैसा गंभीर सवाल पूछने का साहस सिर्फ भूपेन दा में ही था। दुनिया में ऐसे कम लोग ही होंगे, जिनको भूपेन दा के गीत न भाते हों। भूपेन दा असम में जितने लोकप्रिय हैं, बंगाल और बांग्लादेश में उनकी लोकप्रियता उससे भी कई गुणा अधिक है। कोलकाता अथवा बांग्लादेश की राजधानी ढाका में भूपेन दा का विभिन्न कार्यक्रमों के साथ जन्मदिन मनाने का

समाचार किसी भी असमिया व्यक्ति के मन को आह्लादित कर सकता है।

पिछली साल 26 मई को प्रधानमंत्री पीएम नरेंद्र मोदी ने देश के सबसे बड़े धोला-सदिया पुल का नाम भूपेन हजारिका के नाम पर रखने का ऐलान कर उनको याद किया। श्री मोदी ने अपने संबोधन में कहा था कि स्व. हजारिका पूरी जिंदगी ब्रह्मपुत्र नद का गुणगान करते रहे। इसलिए आने वाली पीढ़ियों को उनके योगदान के बारे में याद दिलाते रहने के लिए केंद्र सरकार ने यह फैसला किया है। सुधाकंठ भूपेन हजारिका सिर्फ बेहतरीन गायक ही नहीं, बल्कि संगीतकार, गीतकार, कवि और फिल्ममेकर भी थे। उनके योगदान के लिए उन्हें दादा साहब फाल्के से लेकर पद्म विभूषण जैसे अवॉर्ड से नवाजा जा चुका है। भूपेन दा को देश-दुनिया के लोग उनके नाम से जानते हैं। असम ही नहीं देश-दुनिया उनकी प्रतिभा को सलाम करती है।

उनके कालजयी गीत अगले सौ साल बाद भी इतने ही ऊर्जादायक और प्रासंगिक रहेंगे। जब भी युवाओं में जोश भरने की बात आती है। भूपन दा का गीत 'आह-आह उलाई आह सजग जनता' जरूर बजाया जाता है। भूपेन दा के गीत आज भी असम के खेत-खलिहान, ब्रह्मपुत्र की धारा, लाल नदी-नीले पहाड़, खानाबदोश, कबीलों में गूंज रहे हैं। उनके गीतों की प्रासंगिकता कल भी थी, आज भी है और आने वाले कल को भी रहेगी। भूपेन के गीतों के बिना न तो असम आंदोलन जैसे किसी अहिंसक आंदोलन की कल्पना की जा सकती है और न ही बिहू की संपूर्णता की। बिहू के मौके पर आयोजित की जाने वाली संगीत संध्या में भूपेन हजारिका के गीत न गाए जाए, यह तो असमवासियों के लिए कल्पना से बाहर की चीज है।

दस भाई-बहनों में सबसे बड़े भूपेन हजारिका का संगीत के प्रति यह लगाव उनकी मां के कारण हुआ था। उनकी मां शांतिप्रिया ने उनको बचपन से ही पारंपरिक असमिया संगीत की ट्रेनिंग देनी शुरू कर दी थी। कोई भी यह जानकर हैरान हो जाएगा कि सुधाकंठ ने अपना पहला गीत बचपन में ही लिखा था और 10 साल की उम्र में उसे गाया था। साल 1939 में उन्होंने महज 12 साल की उम्र में असम की दूसरी फिल्म इंद्रमालती के लिए काम भी किया था। भूपेन दा की स्मृति को संजोकर रखना हम सभी का कर्तव्य है और यह स्मृति किसी समाधि स्थल अथवा किसी उद्यान से नहीं हमारे दिल से जुड़ी होनी चाहिए।

खेल, खिलाड़ी और तनाव

जकार्ता में चल रहे एशियाई खेलों में दो रजत पदक जीतने वाली असम की हिमा दास को 200 मीटर की दौड़ में अयोग्य करार दिए जाने के बाद उसने अपनी व्यथा व्यक्त करते हुए कहा है कि वह दौड़ पूर्व बेहद मानसिक तनाव में थीं। इसी का ही नतीजा था कि हिमा दास मंगलवार को 200 मीटर दौड़ के सेमीफाइनल से बाहर हो गईं। वह भी तब जबकि हिमा को इस दौड़ में सबसे प्रबल दावेदार माना जा रहा था। हिमा को इसलिए 200 मीटर की दौड़ से बाहर होना पड़ा, क्योंकि वह स्टार्ट का संकेत देने वाली गन की आवाज से पहले ही दौड़ पड़ीं। रेस के नियमों के मुताबिक अगर कोई धावक गन की आवाज से पहले दौड़ पड़ता है, तो नए सिरे से शुरू होने वाली उस रेस का वह हिस्सा नहीं बन सकता।

बाद में सोशल मीडिया फेसबुक लाइव कर हिमा ने बताया कि असम के दो व्यक्तियों द्वारा उसको लेकर की गई टिप्पणी की वजह से वह मानसिक

तनाव के दौर से गुजर रही थी। उसने अपने संदेश में कहा कि जब वह वह ट्रैक पर दौड़ने के लिए खड़ी थी उस समय उसके दिमाग में कथित दो व्यक्तियों द्वारा की गई टिप्पणी गूंज रही थी, जिसके कारण उसका ध्यान भटक गया। इससे यह बात साबित होती है कि लोगों द्वारा की गई टिप्पणी खिलाड़ियों के प्रदर्शन पर असर करती है। इतना कुछ होने के बाद भी हिमा ने प्रयास करना नहीं छोड़ा और अगली ही बार गुणा 400 मीटर मिश्रित रिले में आज यहां रजत पदक जीत कर उसने साबित कर दिया कि वह असम की जुझारू और हर हालात से मुकाबला करने वाली बेटी है। मालूम हो कि भारत ने एशियाई खेलों में पहली बार हो रही चार गुणा 400 मीटर मिश्रित रिले में यह रजत पदक जीता है। इस पूरे घटनाक्रम से दो बात सामने आई है। पहली लोगों द्वारा की गई टिप्पणियां खिलाड़ियों के प्रदर्शन पर असर करती है, जैसा कि हिमा के साथ पहली बार हुआ और दूसरी बात विपरीत परिस्थितियों में भी बुलंद हौसलों के दम पर शानदार प्रदर्शन किया जा सकता है, जैसा कि हिमा ने 400 मीटर मिश्रित रिले में रजत पदक हासिल कर दिखाया। लेकिन सबसे अच्छी बात तो यही है कि असमवासी बतौर आदर्श दर्शक के असम की उड़नपरी का हौसला बढ़ाएं और कोई ऐसी बात न कहें, जिससे कि उस मात्र 18 साल की युवती के प्रदर्शन पर किसी भी प्रकार का असर पड़ता हो। हिमा को अंतर्राष्ट्रीय मैदान में उतरे अधिक दिन नहीं हुए हैं। अंतर्राष्ट्रीय मंच पर खिलाड़ियों का हौसला बढ़ाना और हूटिंग करना आमबात है। हिमा अपने अनुभवों के दम पर आहिस्ता-आहिस्ता ऐसी स्थितियों पर भी पार पाना सीख जाएगी। वैसे प्रतिभावान और मेधावी लोगों का हौसला बढ़ाना, असम की सदियों पुरानी परंपरा रही है। मैट्रिक-हायर सेकेंड्री की परीक्षा में अव्वल स्थान हासिल करने वाले बच्चों का किस प्रकार जुलूस-शोभायात्रा कर स्वागत किया जाता है, वह हमारे सामने हैं। ऐसे में किसी एक-आध व्यक्ति द्वारा की गई नकारात्मक टिप्पणी को इतनी गंभीरता से नहीं लिया जाना चाहिए कि आपका प्रदर्शन ही प्रभावित होने लगे। असमवासियों ने हर एक प्रतिभा को अपने सर-आंखों पर बैठाया है और हिमा दास 'असमिया आई' के मुकुट का सबसे चमकता हुआ बहुमूल्य नगीना है।

खिलाड़ियों को वैसे भी हर पल मानसिक तनाव से गुजरना पड़ता है, हिमा की कम उम्र इस तनाव को झेल पाने में सक्षम नहीं है, लेकिन बढ़ती उम्र और अनुभव से उसको प्रचंड तनाव को भी पराजित करना आ जाएगा। भारत-पाकिस्तान के बीच जब भी क्रिकेट अथवा अन्य कोई खेल होता है तो दोनों ही ओर के खिलाड़ियों पर ऐसा ही मानसिक दबाव अथवा तनाव होता है। दर्शकों का समर्थन और हूटिंग साथ-साथ चलती है, ऐसी स्थिति से गुजरते हुए खिलाड़ियों को जीत हासिल करनी होती है। हिमा भी ऐसी किसी भी तनावपूर्ण स्थिति का मुकाबला करने में सक्षम हो, यह सिर्फ असम नहीं पूरे देशवासियों की प्रार्थना है। हिमा तुम आगे बढ़ो, देश तुम्हारे साथ है।

राष्ट्रीय सुरक्षा और लोगों की पहचान से जुड़ा है एनआरसी

राष्ट्रीय नागरिक पंजी (एनआरसी) का मुद्दा न सिर्फ राष्ट्रीय सुरक्षा, बल्कि एक सच्चे भारतीय की पहचान से भी जुड़ा है। देश की सुरक्षा के साथ 30 जुलाई, 2018 को जारी एनआरसी के अंतिम मसौदे में कुल 3,29,91,384 लोगों में से 2,89,83,677 लोगों के नाम शामिल किए गए हैं और 40,07,707 लोगों को बाहर रखा गया है। इसके बाद से उन लोगों में भारी घबराहट का माहौल है, जिनके नाम भारतीय नागरिक होने के बावजूद इस अंतिम मसौदा सूची में शामिल नहीं हो पाए हैं। इस बारे में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी से लेकर गृह मंत्री राजनाथ सिंह और मुख्यमंत्री सर्वानंद सोनोवाल तक राज्य की जनता को आश्वस्त करा चुके हैं कि भारतीय नागरिकों को घबराने की जरूरत नहीं है, ऐसे सभी भारतीय लोगों के नाम हर हाल में एनआरसी में शामिल किए जाएंगे। इसके बावजूद लोगों के मन का भय दूर होने का नाम नहीं ले रहा है। अब तक सामने आई जानकारियों के आधार पर यह तो तय है कि बहुत से भारतीय नागरिकों के नाम एनआरसी के अंतिम मसौदा सूची में शामिल होने से रह गए हैं। ऐसे लोगों के नाम एनआरसी में कैसे शामिल होंगे, इसको लेकर अनिश्चितता की स्थिति बनी हुई है। हिंदीभाषी विकास परिषद के उपाध्यक्ष गौरव सोमानी का सुझाव है कि एक और मसौदा सूची जारी की जानी चाहिए ताकि ऐसे भारतीय नागरिकों के नामों को उसमें समाहित किया जा सके।

एनआरसी के अंतिम मसौदा सूची में उभरकर सामने आई विसंगतियों के कारण लोगों में संशय की माहौल बनना स्वाभाविक भी है। पहली मसौदा सूची में जिन लोगों के नाम थे, उनमें से बहुतों के नाम अंतिम मसौदा सूची में से हटा दिए गए हैं। किसी परिवार के पति-पत्नी और उनके दो बच्चों के नाम मसौदा

सूची में है तो तीसरे बच्चे का नाम छूट गया है। किसी परिवार के बच्चों के नाम हैं तो माता-पिता के नाम सूची से गायब है। ठीक इसी प्रकार एक संयुक्त परिवार के तीन भाइयों के परिवार के सभी सदस्यों के नाम अंतिम मसौदे में शामिल है तो चौथे भाई के परिवार के एक भी सदस्य का नाम शामिल नहीं किया गया है। यह स्थिति तब है, जब सभी के पहचान के दस्तावेज और वंशवृक्ष एक ही है। इससे भी अधिक रोचक बात है कि सूची में बच्चों के नाम तो है, लेकिन माता अथवा पिता का नाम गायब है। लोग बताते हैं कि अन्य राज्यों में सत्यापन के लिए भेजे गए बहुत से दस्तावेज सत्यापित होकर आए नहीं। दस्तावेज सत्यापित होकर आए भी तो वे हिंदी और उर्दू में लिखे होने के कारण एनआरसी सेवा केंद्र के अधिकारी उन दस्तावेज को भाषा की जानकारी न होने के कारण उन दस्तावेजों को पढ़ नहीं पाए। ऐसी स्थिति में संबंधित आवेदक के नाम एनआरसी के अंतिम मसौदे में शामिल होने से रह गए। यह बात यदि सही है तो ऐसे सभी लोगों में से सही भारतीय लोगों के नाम एनआरसी में शामिल हो, यह सुनिश्चित करना सरकार की जिम्मेदारी ही नहीं कर्तव्य भी है। सरकार को इस बिंदु पर भी विचार करना चाहिए कि भारतीय उपनाम वाले, जैसे अग्रवाल, गुप्ता, महतो, साहू, सिंह, शर्मा आदि के नामधारी लोगों के नाम को बिना किसी परेशानी के एनआरसी में शामिल किया जा सकता है क्या। यह बात तो तय मानी जा सकती है कि भारतीय उपनामधारी लोग न तो बांग्लादेशी हैं और न ही वह लोग कंटीली बाड़ के नीचे से अवैध रूप से असम में घुसे होंगे। किसी के पास संबंधित दस्तावेज न होने के बहुत से जायज कारण हो सकते हैं, मगर दस्तावेज नहीं है सिर्फ इसी बिना पर किसी की नागरिकता पर सवाल नहीं खड़े किए जाने चाहिए। क्योंकि नागरिकता न सिर्फ व्यक्ति की पहचान है, बल्कि उसका मौलिक अधिकार और स्वाभिमान भी है। दस्तावेज न होने के नाम पर किसी भी व्यक्ति की नागरिकता को कैसे रद्द किया जा सकता है। वहीं दूसरी ओर एनआरसी में एक भी बांग्लादेशी अथवा विदेशी का नाम शामिल न हो, यह भी सुनिश्चित किया जाना बहुत जरूरी है। यह बात सभी को समझनी पड़ेगी कि एनआरसी का मुद्दा राष्ट्रीय सुरक्षा के साथ-साथ भारतीयों की पहचान और स्वाभिमान से भी जुड़ा मसला है।

दरकते रिश्ते, मिटती संवेदनाएं

एक-दूसरे से आगे निकल जाने की होड़ और सफलता के शीर्ष पर पहुंचने की आपाधापी में जहां एक ओर रिश्ते दरकने लगे हैं, वहीं दूसरी ओर संवेदनाएं भी मिटने लगी है। आज का इंसान एक मशीन बनकर रह गया है और किसी भी कीमत पर अपने लक्ष्य को हासिल कर लेना चाहता है। सफलता और लक्ष्य को हासिल करने की कोशिश ने न सिर्फ व्यक्ति के निजी संबंधों को नुकसान पहुंचाया है, बल्कि सामाजिक ताने-बाने को भी तार-तार करने का काम किया है। आज के दौर में आपसी संबंधों की आत्मीयता और घनिष्ठता को तौलने-परखने का एक मात्र तरीका धन-दौलत ही रह गए हैं। रिश्तों की बुनियाद ही जब पैसों पर टिकी हो तो उस रिश्ते का बिखर जाना तय है। अन्य रिश्तों की बात तो छोड़ ही दें धन-संपत्ति की लालसा ने माता-पिता और बेटे-बेटियों के बीच भी खाई खोदने का काम किया है। राज्य में बढ़ते वृद्धाश्रम इस बात को साबित करते हैं कि पिता-पुत्र, मां-बेटी के संबंधों में अब पहले जैसी ग्र्माहट नहीं रह गई है। भारतीय समाज में पिता-पुत्र के संबंधों की ऊंचाइयों को पूरे विश्व में सम्मान की नजर से देखा जाता रहा है। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम से लेकर श्रवण कुमार तक की कथाएं आज भी बच्चों को सुनाई-दिखाई जाती है। इन कथाओं का सार यही है कि माता-पिता के रिश्तों को किस प्रकार सर्वोपरि रखा जाता था।

ऐसी स्थिति में भाई-भाई, चाचा-ताऊ, बहन-भुआ के बीच के रिश्ते तो बस नाम के ही रह गए हैं। अदालतों में ऐसे मामलों के ढेर लगे मिल जाएंगे, जिनमें भाई-भाई ही एक-दूसरे के खिलाफ है। सफलता की चाहत ने इंसान को इस हद तक आत्मकेंद्रित बना दिया है कि अब उसे सिवाय स्वयं के और कुछ नजर नहीं आता। व्यस्त दिनचर्या के कारण उसके पास अपने ही परिवार के साथ दो घड़ी बैठने तक की फुर्सत नहीं है। ऐसी स्थिति में तनिक दूर के रिश्तेदारों के साथ रिश्तेदारी निभाने की बात तो भूल ही जाइए। मामा-मौसी, चचेरे-फुफेरे भाई-बहन अब बस हाय-हैलो तक की ही रिश्तेदारी में ही सिमटकर रह गए हैं। बिखरते रिश्तों का सीधा प्रभाव समाज व्यवस्था पर भी देखने को मिल रहा है। वृद्ध बजाय अपने घर के वृद्धाश्रम में पल रहे हैं। बच्चे हॉस्टल में रहकर पढ़ रहे हैं, छोटे दूधमुंहे बच्चे शिशुगृह में पल रहे हैं और पति-पत्नी सुबह से शाम तक अलग-अलग कार्यालय में काम कर रहे हैं। जब परिवार की हालत ऐसी होगी तो ऐसे परिवारों द्वारा बनने वाले समाज का स्वरूप कैसा होगा, यह सोचते ही बदन में झुरझुरी सी फैल जाती है। हम यदि कहें बिहार के मुजफ्फरपुर शेल्टर होम रेप कांड अथवा उत्तर प्रदेश के देवरिया बालिका गृह के मामले इन्हीं मिटती संवेदनाओं के नतीजे हैं। दरकते रिश्तों ने सबसे अधिक सामाजिक ताने-बाने को प्रभावित किया है। आज जब परिवार की छोटी-छोटी इकाइयों में बंटे हो तो पास-पड़ोसी, दूर के रिश्तेदारों की बात करना ही बेमानी है। ऐसी स्थिति में भला संवेदनाएं, मानवता और रिश्तेदारी कैसे, किस बूते जिंदा रह सकती है। दिन-ब-दिन बढ़ते सामाजिक अपराधों को दरकते रिश्ते और मिटती संवेदनाओं के साथ जोड़कर देखे जाने की जरूरत है। आज के दौर में पिता की हत्या करते वक्त बेटे के हाथ नहीं कांपते और न ही नवजात को सड़क किनारे फेंक आने से पूर्व किसी मां का कलेजा बाहर निकलकर आता है। कुछ दिन पहले नगांव में एक महिला द्वारा अपने नवजात को पोखरे में फेंक देने और तेजपुर में बेटे द्वारा अपनी मां की निर्मम हत्या करने जैसी घटनाएं सामने आई थी। इस बात पर हम सभी को मिल-बैठकर सोचना होगा कि हम कैसा समाज बनाने जा रहे हैं, जहां हर किसी को एक-दूसरे से डर लगता है और कोई भी सुरक्षित नहीं है। एक छह साल की बच्ची भी।

अविश्वास प्रस्ताव के गिरने के मायने

एनडीए की सहयोगी रही तेलगु देशम पार्टी (टीडीपी) द्वारा 20 जुलाई को मोदी सरकार के खिलाफ संसद में लाया गया अविश्वास प्रस्ताव गिर गया। प्रस्ताव के लिए कुल 451 वोट डाले गए। जिसमें से इस प्रस्ताव के पक्ष में सिर्फ 126 वोट पड़े, जबकि विरोध में 325 वोट इस अविश्वास प्रस्ताव का कांग्रेस सहित अन्य कई विपक्षी पार्टियों ने समर्थन किया था, जबकि अविश्वास प्रस्ताव पर छिड़ी बहस और अंत में हुए मतदान से शिवसेना और बीजू जनता दल पहले ही खुद को अलग कर लिया था। आंकड़ों के हिसाब से यदि देखा जाए तो इस अविश्वास प्रस्ताव का गिरना पहले से ही तय माना जा रहा था। इसको लेकर सरकार को किसी भी प्रकार का खतरा नहीं था। ऐसी बस विपक्षी पार्टियों की एकजुटता और वर्ष 2019 में होने वाले लोकसभा चुनाव की पूर्व तैयारियों के रूप में देखा जा रहा था। इस अविश्वास प्रस्ताव के गिरने से नि:संदेह विपक्षी एकता को करारा झटका लगा है और सत्तासीन भाजपा को मजबूती मिली है। वैसे भी अविश्वास प्रस्ताव लाने का उद्देश्य केवल सत्तासीन सरकार को गिराना ही नहीं होता है। भारतीय लोकतंत्र के इतिहास को यदि देखें तो मोदी सरकार को लेकर अब तक विभिन्न मौकों पर कुल 27 अविश्वास प्रस्ताव लोकसभा में आ चुके हैं, जबकि इस कारण सिर्फ तीन बार ही सरकारें गिरी। वर्ष 1990 में वीपी सिंह की सरकार को, 1997 में एचडी देवगौड़ा की सरकार और 1999 में अटल बिहारी वाजपेयी सरकार को अपने खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव पास होने के कारण सत्ता से हाथ धोना पड़ा। समाजवादी नेता आचार्य कृपलानी ने 1963 में जवाहर लाल नेहरू सरकार के खिलाफ भारतीय लोकतंत्र के इतिहास

में पहला अविश्वास प्रस्ताव पेश किया था। भले ही यह अविश्वास प्रस्ताव 347 मतों से गिर गया था और सरकार पर कोई असर नहीं हुआ, लेकिन इसके साथ ही देश में अविश्वास प्रस्ताव का इतिहास शुरू होता है।

लोकसभा में तीन मौके ऐसे भी आए हैं जब प्रधानमंत्री ने अविश्वास प्रस्ताव पर वोटिंग या उसको लोकसभा में पेश करने से पहले ही इस्तीफा दे दिया। वर्ष 1979 की जुलाई में तत्कालीन प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव पेश किया था। इसकी वोटिंग से पहले ही मोरारजी भाई ने इस्तीफा दे दिया था। तब देसाई सरकार में अटल बिहारी वाजपेयी और एलके आडवाणी मंत्री थे। इसी तरह 20 अगस्त 1979 में भी जब कांग्रेस ने समर्थन वापस ले लिया था तो चौधरी चरण सिंह ने प्रस्ताव पेश किए जाने से पहले ही इस्तीफा दे दिया था। तीसरा मौका 1996 में आया, जब 28 मई, 1996 को अटल बिहारी वाजपेयी ने अविश्वास प्रस्ताव पर मतदान होने से पहले इस्तीफा दे दिया था, क्योंकि बीजेपी के पास पर्याप्त संख्याबल नहीं था। यह जानकारी भी पाठकों के लिए रोचक हो सकती है कि अब तक सबसे अधिक अविश्वास प्रस्ताव का रिकार्ड इंदिरा गांधी सरकार के नाम है। इंदिरा गांधी के कार्यकाल में 15 बार अविश्वास प्रस्ताव पेश किए गए। उनके खिलाफ वर्ष 1966 से 1975 के बीच 12 बार और 1981 एवं 1982 में तीन बार प्रस्ताव पेश किया गया। कहने का मतलब विपक्ष द्वारा अविश्वास प्रस्ताव लाने का मकसद सरकार को उन मुद्दों पर संसद में बहस करने पर मजबूर करना भी होता है, जिन मुद्दों पर सरकार चर्चा करने से बचना चाहती है। अविश्वास प्रस्ताव लाने के बाद बहस के दौरान सत्ता पक्ष और विपक्ष द्वारा सदन पटल पर की गई बहस का एक-एक शब्द रिकार्ड हो जाता है और वह सारी बातें भी जनता के सामने आ जाती है, जो बातें सरकार सार्वजनिक करने से कतराती है। इस बार भी 20 जुलाई को बहस के दौरान वहीं हुआ। विपक्षी पार्टियों ने सरकार को फ्रांस के साथ हुए राफेल लड़ाकू विमान समझौते से लेकर विभिन्न मुद्दों पर न सिर्फ घेरा, बल्कि जवाब देने पर मजबूर भी किया। राजनीतिज्ञों में मोदी सरकार के खिलाफ लाए गए अविश्वास प्रस्ताव के टिकने अथवा गिरने को लेकर कोई चर्चा नहीं हो रही है। चर्चा इस बात को लेकर है कि सत्ता पक्ष और विपक्ष वर्ष 2019 के लोकसभा चुनावों में इस अविश्वास प्रस्ताव को किस तरह अपने पक्ष में करता है।

असम के खेतों की उड़नपरी : हिमा दास

फिनलैंड के टैम्पेयर शहर में आईएएएफ विश्व अंडर-20 एथलेटिक्स चैंपियनशिप की 400 मीटर दौड़ स्पर्द्धा में 18 वर्षीय एथलीट हिमा दास ने 51.46 सेकेंड में दौड़ पूरी कर गोल्ड मेडल जीतकर न सिर्फ असम का बल्कि नगांव जिले के गांव धिंग को भी सुर्खियों में ला दिया। यह पहली बार है कि भारत को आईएएएफ की ट्रैक स्पर्द्धा में गोल्ड मेडल हासिल हुआ है। हिमा से पहले भारत की कोई महिला खिलाड़ी जूनियर या सीनियर किसी भी स्तर पर विश्व चैंपियनशिप में गोल्ड नहीं जीत सकी थी। स्पर्द्धा के बाद जब हिमा ने गोल्ड मेडल लिया और सामने राष्ट्रगान बजा तो उनकी आंखों से आंसू छलक पड़े। इसी साल अप्रैल में गोल्ड कोस्ट में खेले गए कॉमनवेल्थ खेलों की 400 मीटर की स्पर्द्धा में हिमा दास छठे स्थान पर रही थीं। इस टूर्नामेंट में उन्होंने 51.32 सेकेंड में दौड़ पूरी की थी। इसी राष्ट्रमंडल खेलों की 4×400 मीटर स्पर्द्धा में उन्होंने सातवां स्थान हासिल किया था। इसके अलावा हाल ही में गुवाहाटी में हुई अंतरराज्यीय चैंपियनशिप में उसने गोल्ड मेडल अपने नाम किया था। कल तक पूरी दुनिया से अनजान-गुमनाम हिमा आज देश की हीरो है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी से लेकर अमिताभ बच्चन, सचिन तेंदुलकर सभी हिमा के प्रशंसक हैं। प्रधानमंत्री को उम्मीद है कि अगले ओलंपिक में हिमा देश के लिए जरूर स्वर्ण पदक जीतकर लाएगी। हिमा की इस उपलब्धि ने न सिर्फ असम बल्कि पूरे देश के एथलेटिक जगत की छवि को बदलकर रख दिया है। जो कारनामा उड़न परी पीटी ऊषा नहीं कर सकी, वह 'धिंग एक्सप्रेस' ने कर दिखाया है। हिमा दास का यह कारनामा देखकर फ्लाईंग सिख मिल्खा सिंह ने बहादुर बेटी को सैल्यूट करते हुए कहा कि भारतीय महिलाएं किसी से कम नही हैं। मिल्खा सिंह ने बताया कि जैसे ही वो जीती, मैं खुशी के मारे उछल पड़ा। इसके बाद मैंने हिमा दास के कोच और उनके परिवार वालों को बधाई दी। हिमा को पहले से ही पता था कि टैम्पेयर

शहर में वह कुछ खास प्रदर्शन करने वाली है। इसलिए वह असमिया गोमछा भी अपने साथ ले गई थी। पूरे विश्व के लोगों ने टीवी स्क्रीन पर देखा, जीत हासिल करने के बाद तिरंगे में लिपटी हिमा जब स्टेडियम का चक्कर लगा रही थी तो उसके गले में असमिया गोमछा भी लहरा रहा था।

मुख्यमंत्री सर्वानंद सोनोवाल ने कहा कि राज्य सरकार देश की इस नई स्टार को उनकी असम वापसी पर एक भव्य कार्यक्रम में सम्मानित करेगी। उन्होंने यह भी कहा कि हिमा को असम का स्पोर्ट्स एम्बेसेडर बनाया जाएगा। अब न सिर्फ असम, बल्कि पूरे देश के लोग चाहते हैं कि हिमा को सरकार की ओर से वह सारी सुविधाएं और मौके उपलब्ध कराए जाएं ताकि वह अपनी सफलता के सिलसिले को कायम रख सके। हिमा के प्रशिक्षक निपोन का भी मानना है कि हिमा के लिए यह सफलता की शुरुआत है । वह अभी आसमान की ऊंचाइयों को छुएगी और एशियाई खेलों में पदक हासिल करेंगी। निपोन के कहे अनुसार 'हिमा में हमेशा से अपने सपनों को पाने की भूख और ललक थी और ऐसा हुआ भी।

हिमा की सफलता के बाद यह बात साफ हो गई है कि पिछले कई सालों में असम में खेल का माहौल बेहतर हुआ है। राज्य सरकार की इच्छा शक्ति और बेहतर प्रतिभाओं को उचित मंच मिलने के बाद कई बार ऐसे मौकेआए जब विश्व खेल पटल पर असम का 'गोमछा' लहराता नजर आया। इस कड़ी में हम मुक्केबाज शिव थापा, तीरंदाज जयंत तालुकदार और क्रिकेटर रियान पराग के नाम का जिक्र कर सकते हैं। खेल को बढ़ावा देने के प्रति सरकार की कोशिशें अब रंग लाने लगी है। पिछले दो-तीन सालों में गुवाहाटी में फीफा विश्व फुटबॉल टूर्नामेंट सहित अंतर्राष्ट्रीय स्तर की एकाधिक् खेल प्रतियोगिताओं के आयोजन और ग्रामीण क्षेत्र में खेलों को बढ़ावा देने के बाद से राज्य में खेल, खिलाड़ी और खेल जगत की स्थिति में सुधार आया है। लेकिन अभी भी बहुत कुछ करना बाकी है। ग्रामीण असम के अंदरूनी इलाकों में न जाने आज भी हिमा जैसी कितनी ही लड़कियां धान के खेतों में काम कर रही है अथवा लड़कों के साथ फुटबॉल खेल रही है। ऐसी सभी बेजोड़ प्रतिभाओं को तलाश कर उनको विश्वपटल तक पहुंचाना है। यह जिम्मेदारी सिर्फ सरकार की ही नहीं है। हम सभी को मिलकर उठानी है, ताकि असम को उग्रवाद-आतंकवाद-अलगाववाद जैसे शब्दों केभंवर से निकालकर देश की खेल राजधानी के तौर स्थापित किया जा सके।

थाईलैंड जैसे हादसे से निपटना कितना आसान-कितना मुश्किल

उत्तरी थाईलैंड की थाम लुआंग गुफा में दो हफ्ते से ज्यादा समय से फंसे 12 किशोर फुटबॉल खिलाड़ियों और उनके प्रशिक्षक को अंतत: सुरक्षित निकाल लिया गया। इसी के साथ पिछले एक पखवाड़े से अधिक समय तक तमाम विपरीत परिस्थितियों के बीच जो बचाव अभियान चल रहा था, वह सफलतापूर्वक संपन्न हो गया। इस बचाव अभियान के सफलतापूर्वक पूरा हो जाने पर दुनिया भर के लोगों ने राहत की सांस ली है। एक ओर जहां मास्को में फीफा विश्वकप खेला जा रहा था, वहीं दूसरी ओर उत्तरी थाईलैंड की बाढ़ के पानी से भरी एक जटिल गुफा में 12 किशोर फुटबॉल खिलाड़ी एवं उनका प्रशिक्षक जिंदगी और मौत की लड़ाई लड़ रहा था। हमारा देश ऐसे हादसे से निपटने में कितना सक्षम है, इस बात पर चर्चा होनी चाहिए।

याद कीजिए हमारे देश में भी कुरूक्षेत्र का प्रिंस नामक एक 5 वर्षीय बच्चा वर्ष 2006 की 23 जुलाई को अपने ही घर के पास खुले एक 60 फीट गहरे बोरवेल में गिर गया था। इस घटना ने पूरे देशवासियों को गहरी चिंता में डाल दिया था। देश भर में दुआ-प्रार्थनाओं का दौर चला और फिर 40 घंटे की कड़ी मशक्कत के बाद उसे निकाला जा सका। देश भर में मांगी गईं दुआएं प्रिंस को लगीं और वो जिंदा बच गया। लेकिन इसकेबाद बोरवेल में एक के बाद एक गिरे 11 बच्चे प्रिंस की तरह सौभाग्यशाली साबित नहीं हुए। वर्ष 2007 की 4 फरवरी को मध्यप्रदेश के कटनी जिले का 2 वर्षीय 56 फीट गहरे बोरवेल में गिरा। उसको बचाने के लिए 48 घंटे से अधिक समय तक बचाव अभियान चलाया गया, लेकिन उसे बचाया नहीं जा सका। गुजरात के करमाडिया में 3 साल की आरती वर्ष 2007 की 9 मार्च को बोरवेल में गिरी और उसकी मौत हो गई। इसी तरह कर्नाटक केरायचुर में संदीप 60 फीट गहरे बोरवेल में गिरा, कई घंटों की मशक्कत के बाद भी उसे बचाया नहीं जा सका। इसी साल 7 अप्रैल को गुजरात के महसाना जिले में 5 वर्षीय सानू बोरवेल में गिरा। उसे बचाने के लिए सेना तक की मदद ली गई, लेकिन सारे प्रयास नाकामयाब रहे और सानू की मौत बोरवेल में ही हो गई। इसी कड़ी में पुणे के श्रीरूर इलाके की पांच वर्षीय गीता, जयपुर के निमादा गांव में 180 फुट गहरे बोरवेल में गिरा छह वर्षीय सूरज का नाम भी शामिल है, जिसे 62 घंटों के अथक प्रयासों के बाद भी उसे नहीं बचाया जा सका। यह घटना 4 जुलाई 2007 की है। आंध्र प्रदेश के गुडुर जिले केबोटाला गांव में 6 साल का कार्तिक 200 फीट गहरे बोरवेल में गिरा। उसकी बोरवेल में मौत हो गई। आंध्र प्रदेश के गुडुर जिले के बोटाला गांव में 6 साल का कार्तिक (4 अगस्त 2007) को 200 फीट गहरे बोरवेल में गिरा। उसकी बोरवेल में मौत हो गई। इसी तरह दो साल की सारिका (7 अप्रैल 2007) की राजस्थान के बीकानेर जिले के अदसर गांव में 155 फीट गहरे बोरवेल में गिरने से मौत हो गई। सारिका को 19 घंटे के ऑपरेशन के बाद ही निकाला जा सका। उस समय वो बेहोशी की हालत में थी। लेकिन अस्पताल में उसने दम तोड़ दिया। इसी दिन गुजरात के मदेली में 2 साल का किंजल मान सिंह बोरवेल में गिरकर मर गया। आगरा के टेहरा गांव में (25 मार्च 2008) को तीन वर्षीय वंदना 160 फीट गहरे बोरवेल

में गिरी। इसके बाद 20 जून 2012 को गुड़गांव में 4 साल की बच्ची माही 68 फुट गहरे बोरवेल में गिर गई है। उसे 86 घंटे बाद बाहर तो निकाल लिया गया, लेकिन बचाया नहीं जा सका। यहां उक्त सभी घटनाओं का सिलसिलेवार ढंग से जिक्र करना इसलिए जरूरी है ताकि हम समझ सकें कि हमारी सरकार ऐसे हादसों को रोक पाने में कितनी नाकामयाब है।

उत्तरी थाईलैंड की थाम लुआंग गुफा में वाइल्ड बोर्स नाम की यह फुटबॉल टीम 23 जून से फंस गई थी। ये लोग अभ्यास के बाद वहां गए थे और भारी मानसूनी बारिश की वजह से गुफा में काफी पानी भर जाने के बाद वहां फंस गए। एक दर्जन किशोर फुटबॉल खिलाड़ी और उनके प्रशिक्षक गुफा में फंसे तो पूरे विश्व में हंगामा मच गया। थाईलैंड सरकार ने गुफा में फंसे सभी लोगों के बचाव के लिए अपनी पूरी ताकत झोंक दी। थाई नैवी सील एवं विदेशी गोताखोरों ने कई दिनों की कड़ी मेहनत करने के बाद सभी को गुफा से निकालने में कामयाबी हासिल की। कुल मिलाकर हमारे देश में हुए करीब दर्जन भर हादसे और थाईलैंड का एक हादसा इसके बचाव की संभावना, सरकार की इच्छा शक्ति और बचाव कार्य के लिए जरूरी तकनीक व संसाधनों की कमी की ओर इशारा करता ही है। आज के तकनीक और अत्याधुनिक संसाधनों के दौर में ऐसे हादसों से निपटने के लिए हमें भी तैयारियां करनी चाहिए।

मरती संवेदनाएं, बिखरते रिश्ते

जिंदगी की आपाधापी में न सिर्फ पारिवारिक रिश्तों में बिखराव आ रहा है, बल्कि संवेदनाएं भी मरती जा रही है। हम कह सकते हैं कि व्यक्ति, परिवार और समाज सभी संकट के दौर से गुजर रहे हैं। भारतीय संयुक्त परिवार टूटकर जब एकल परिवार में तब्दील होते गए तो इसे समय की मांग कहा गया। अब क्या हम माइक्रो फैमेली की अवधारणा की ओर बढ़ रहे हैं। जहां पति-पत्नी के अलावा और कुछ भी शेष नहीं है, बच्चे भी नहीं। पिछले दिनों शिवसागर के एक वृद्ध कलाकार दंपत्ति के आत्महत्या की घटना ने समाज और समाजशास्त्रियों के समक्ष अनेकों सवाल खड़े कर दिए हैं। कहा जाता है अपने बेटे-बहू से लगातार अपमानित और तिरस्कृत होने के कारण दोनों पति-पत्नी ने मौत को गले लगाना ही बेहतर समझा। इस घटना के बाद क्या यह मान लिया जाए कि परिवार का दायरा सिर्फ पति-पत्नी तक ही सिमटकर रह गया है। अब क्या इस बिंदु पर भी विचार करने का वक्त आ गया है कि बच्चों को कितने साल तक माता-पिता के साथ रहना चाहिए। आजकल आमतौर पर दसवीं की परीक्षा पास करने के बाद अर्थात 16 साल की उम्र में ही बच्चे माता-पिता को छोड़ आगे की पढ़ाई के लिए दूसरे शहरों में पढ़ने चले जाते हैं। पढ़ाई पूरी करने के बाद बच्चों को नौकरी अथवा रोजगार मिल जाता है, उनकी शादी हो जाती है और अंतत: वह लोग अपना जन्मस्थान छोड़ दूसरे शहर में ही बस जाते हैं। इस तरह से यदि देखा जाए तो माता-पिता के साथ बच्चों का संग 16 साल की उम्र तक ही रहता है। कई समाजशास्त्रियों की दलील है कि किशोर अवस्था में ही बच्चों को पढ़ने के लिए दूसरी जगह भेज देने के कारण बच्चों में माता-पिता के प्रति वह लगाव पैदा नहीं हो पाता। माता-पिता और बच्चों के बीच अलगाव होने के कारणों का अध्ययन करने पर यह बात भी उभरकर सामने आ सकती है कि यह लोग किसी एकल परिवार के सदस्य रहे होंगे।

अब तो लोग अपने बच्चों को उसकी स्कूली पढ़ाई भी छात्रावास में भेजकर करवाने लगे हैं। उस दिन किसी परिचित के घर गया तो परिवार की एक महिला ने मुझे इस बारे में बताया कि बच्चों को स्कूली दिनों में ही पढ़ाई के लिए बाहर भेज दिया जाए तो बच्चे का 'कैरियर' अच्छा हो जाता है। इस बात में सच्चाई भी हो सकती है, लेकिन ऐसे माहौल में पले-बड़े होने वाले बच्चे बड़े होने पर रिश्तों को कितनी अहमियत दे पाते होंगे, इस पर भी विचार किए जाने की आवश्यकता है। पत्नी-पति अपनी कामयाबी के लिए अपनी नौकरी की खातिर अथवा अन्य किसी कारणवश अपने बच्चों को पढ़ाई के लिए बाहर भेजते हैं तो भविष्य में उत्पन्न होने वाली किसी भी प्रकार की अप्रिय स्थिति के लिए सिर्फ माता-पिता अथवा बच्चों को ही जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता। कभी-कभी स्थितियां भी कम जिम्मेदार नहीं होती है। देश की समाज व्यवस्था पर यदि नजर डालें तो बाप-बेटे के ही नहीं सभी प्रकार के रिश्तों की गर्माहट कम हुई है। देश में बढ़ते तलाक, सड़कों पर भटकते बचपन और तेजी से खुलते जा रहे वृद्धाश्रम यह बताते हैं कि हमारे देश में आपसी रिश्ते कितनी आसानी से दरकने लगे हैं। अदालतों में दायर मामलों में ऐसे मामलों की संख्या भी लाखों में होगी, जिनमें भाई-भाई ही आमने-सामने खड़े हैं। किसी भी रिश्ते में वह जज्बा, वह संवेदनाएं नहीं रह गई है।

इन सब बातों का जिक्र करने का उद्देश्य शिवसागर के आत्महत्याकांड से उत्पन्न सवाल और चिंता को कमतर आंकना नहीं है। दंपत्ति द्वारा लिखे गए पांच सुसाइड नोट में अपने बेटे-बेटियों, पुलिस, समाज और पत्रकार जगत से ऐसे अप्रिय सामाजिक माहौल को खत्म करने और वृद्ध मां-पिता को उनका अधिकार व सम्मान दिलाने के लिए चिंतन करने का आग्रह करना, इस बात का संकेत है कि अब पानी सर के ऊपर से बहने लगा है। वक्त आ गया है जब इस बात को लेकर गहन चिंतन-मनन किया जाए कि रिश्तों को बिखरने से कैसे रोका जाए, परिवारों को एकजुट कर कैसे रखा जाए। हमें यह भी सुनिश्चित करना होगा कि किसी भी माता-पिता को इस गम में आत्महत्या न करनी पड़े कि उसके बेटे-बहू उनकी इज्जत नहीं करते। भगवान करें शिवसागर जैसी घटना की पुनरावृत्ति कभी न हो।

मोरल पुलिस : कानून से ऊपर कोई नहीं

किसी भी देश अथवा समाज को अनुशासित तरीके से चलाने के लिए कानून व्यवस्था का होना बहुत जरूरी है। देश में कानून व्यवस्था को बनाए रखने के लिए पुलिस विभाग है, लेकिन कोई व्यक्ति कानून का उल्लंघन न करें, सभी विधि-व्यवस्था को मानकर चलें इस पर ध्यान रखने का काम हर एक जागरूक नागरिक का है। बिना नागरिक सहयोग के पुलिस अपने काम को काम को सफलतापूर्वक अंजाम कैसे दे सकती है। इसीलिए नागरिक-पुलिस के बीच संबंध और अधिक मधुर कैसे हो, इसको लेकर अक्सर चर्चा होती रहती है। समाज की कानून व्यवस्था बनी रहे, इसके लिए पुलिस प्रशासन का सहयोग करने की जिम्मेदारी हर एक नागरिक की है, लेकिन स्वयं को पुलिस और कानून से ऊपर मानकर किसी को सजा सुनाने अथवा देने का अधिकार किसी को भी नहीं है। खुद ही न्यायाधीश बनकर सरेआम सजा देने वाले लोगों के लिए एक शब्द बना

है 'मोरल पुलिस' ऐसे लोग बिल्कुल तालिबानी अंदाज में, लेकिन गैर कानूनी तरीके से फैसला सुनाते हैं और सजा भी दे डालते हैं। किसी भी सभ्य समाज में ऐसी हरकत नाकाबिले बर्दास्त है। कोई यदि अपराध करता है तो उसे पकड़कर पुलिस के हवाले कर देना तो सही है और नागरिक कर्तव्य भी, लेकिन किसी को भी अपराधी करार देकर उसके साथ मारपीट करना अथवा सार्वजनिक तौर पर अपमानित-प्रताड़ित करना तो पूरी तरह से अमानवीय और गैर कानूनी है।

देश के कई राज्यों के साथ-साथ असम भी इन दिनों मोरल पुलिस के अत्याचारों से त्रस्त है। विगत 8 जून को कार्बी आंग्लोंग जिले के डकमाक नामक स्थान पर लोगों की भीड़ द्वारा बच्चा चोर समझकर गुवाहाटी के दो युवक अभिजीत नाथ और नीलोत्पल दास की पीट-पीटकर हत्या कर दिए जाने की घटना को मोरल पुलिसिंग के साथ जोड़कर देखा जा सकता है। सोशल मीडिया पर बच्चा चोर की अफवाह उड़ी और कुछ लोगों ने खुद को मोरल पुलिस समझ दोनों युवकों को पीटना शुरू कर दिया और देखते ही देखते पूरी भीड़ ही दोनों की पिटाई करने में लग गई। इस घटना के बाद पूरे असम में अंधविश्वास, कुरीति, मोरल पुलिस आदि के नाम पर विरोध-प्रदर्शन हुए और सभी ने अपने-अपने अंदाज से इस घटना के प्रति अपनी संवेदना और गुस्से का इजहार किया। पुलिस ने भी त्वरित कार्रवाही करते हुए बड़ी संख्या में घटना में शामिल अपराधियों को पकड़कर सलाखों के पीछे पहुंचाया। अभिजीत और नीलोत्पल के माता-पिता ने अपने बेटों को सदा-सदा के लिए खो देने के भीषण दुख की घड़ी में भी असम की जनता से यही अपील की कि ऐसी घटना फिर कभी किसी के साथ न हो और न ही कोई मोरल पुलिस के अत्याचार का शिकार हो। लेकिन हकीकत में क्या हुआ। पुलिस और सरकार द्वारा की गई विज्ञापनबाजी के बावजूद ऐसी घटनाएं रुकी नहीं। धुबड़ी जिले के गौरीपुर के एक युवक को ऐसे ही दो मोरल पुलिस के अत्याचार का शिकार होना पड़ा। बाद में मीडिया-संगठनों के दबाव में आकर हजारिका उपाधिधारी एक दोषी को पुलिस ने गिरफ्तार भी किया था। इसके कई दिन बाद ही ग्वालपाड़ा जिले के अंदरूनी गांव के एक स्कूल में बैठी पंचायत में दो युवक एक युवती की बेंत से पिटाई करते नजर आए।

लोगों की यह तानाशाही मानसिकता बताती है कि समाज का कानून

व्यवस्था पर से विश्वास और डर दोनों ही समाप्त होने लगा है। न्याय मिलने में होने वाली वर्षों की देरी ने भी लोगों को अधीर कर दिया है। मौजूदा समय में यही तस्वीर उभरकर समाने आती है कि समाज का युवा वर्ग किसी भी दोषी को जल्द से जल्द सजा पाते हुए देखना चाहता, लेकिन इसके लिए कानून को अपने हाथों में ले लेना अथवा खुद ही पुलिस बन जाना, इस कृत्य को किसी भी कीमत पर स्वीकार नहीं किया जा सकता। कानून को अपने हाथों में लेने की उक्त घटनाओं को देखते हुए समाजशास्त्रियों का मनना है कि समाज में व्याप्त अंधविश्वास और कुरीतियों को दूर करने के लिए अभी भी अंदरूनी गांवों के लोगों के बीच जाकर उनमें जागरूकता अभियान चलाए जाने की जरूरत है। लोगों को जागरूक करके ही इस समस्या से छुटकारा पाया जा सकता है। जनता को यह समझना-समझाना होगा कि सिर्फ अफवाह के आधार पर किसी को भी सजा नहीं दी जा सकती। माना की लोकतंत्र में प्रजा ही राजा होती है, मगर राजा रूपी प्रजा यदि कानून ही अपने हाथों में लेने लगे तो सभ्य समाज में यह कृत्य स्वीकार्य नहीं है।

बच्चों के कंधों पर बस्ते का बोझ

देश की शिक्षा व्यवस्था भले ही आधुनिक हो गई हो, लेकिन स्कूली बच्चों को अब भी पुस्तक-कापी के बस्ते के बोझ से छुटकारा नहीं मिल पाया है। महानगर की कुछ स्कूलों में भले ही पढ़ाने के तौर-तरीके पूरी तरह से बदल गए हों, लेकिन पूरे असम के परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो शिक्षा जगत की छवि पहले जैसी ही नजर आती है। सरकारी स्कूलों का हाल तो और भी अधिक बेहाल है। प्राथमिक कक्षाओं पर पढ़ने वाले बच्चों के कंधों पर लटकता भारी-भरकम का बस्ता किसी भी संवेदनशील व्यक्ति को विचलित कर सकता है। बच्चे के सुनहरे भविष्य के सपनों में खोए अभिभावकगण भी बच्चों की दुखते कंधों की पीड़ा को अनदेखा कर देते हैं। पहली कक्षा में पढ़ने वाले छह साल के बच्चे पर पढ़ाई के नाम पर भारी-भरकम का बस्ता लटका देना उस बच्चे के बचपन और उनके विद्यार्थी होने के साथ घोर अन्याय है। प्राथमिक कक्षाओं में पढ़ने वाले बच्चों की इस पीड़ा को समझे जाने की जरूरत है। अभिभावक और स्कूल प्रबंधक को यह बात समझनी होगी कि किताब-कापी से भरा भारी-भरकम का बस्ता किसी को भी ज्ञानी अथवा विद्वान नहीं बना सकता। इन सबके बीच हमारे

यहां कई ऐसे स्कूल भी हैं, जहां बच्चों को बिल्कुल वैज्ञानिक तरीकेसे पढ़ाया जाता है। उन पर किसी भी प्रकार के बस्ते अथवा पढ़ने-लिखने का बोझ नहीं होता। ऐसे स्कूल में बच्चे खेलते-खेलते पढ़ते हैं और पढ़ते-पढ़ते खेलने भी लग जाते हैं। इन स्कूलों में बच्चों के ज्ञान-बाल मनोरंजन और खेलकूद के इतने इंतजाम होते हैं कि कोई बच्चा बिना कोई कारण शायद ही अपनी कक्षा में अनुपस्थित रहता होगा। हमारे राज्य में ऐसे स्कूलों की संख्या अंगुलियों पर गिनी जा सकती है।

पढ़ाई के नाम पर बच्चों का बचपन किताबों के बोझ तले दबता जा रहा है। स्कूल और घर में पढ़ाने आने वाले शिक्षक की पढ़ाई के अलावा कक्षा-कार्य, गृह-कार्य में बच्चा इस कदर उलझा रहता है कि उसे खेलने-कूदने की तो दूर ठीक से खाने-सोने तक की फुर्सत नहीं मिलती। ऐसे बच्चों के पास मनोरंजन के नाम पर सिर्फ टीवी, कंप्यूटर और मोबाइल पर आने वाले गेम्स ही रह गए हैं। अभिभावक भी यह सोचकर खुश है कि उनका बच्चा पढ़ाई-लिखाई में लगा है। बच्चे का रिजल्ट अच्छा आता है। अपनी कक्षा में वह टाप-10 में है, लेकिन उसका बचपन? इसको लेकर सोचने की फुर्सत किसी को भी नहीं है। बच्चे के माता-पिता का भी ध्यान बच्चे के बचपने से अधिक पढ़ाई-लिखाई के अलावा उसकी अतिरिक्त गतिविधियों पर रहता है। रविवार को साप्ताहिक छुट्टी का दिन है तो उस दिन बच्चों को गाने-बजाने, तैराकी, जूडो-कराटे जैसे क्लासेज में डाल दिया जाता है। गर्मियों की छुट्टियों में बच्चों को समर कैंप में भेजा जाता है। यानी बच्चों के लिए कोई छुट्टी, कोई राहत नहीं।

बच्चों की इस पीड़ा को महसूस करते हुए हाल ही में मद्रास उच्च न्यायालय ने प्रथम और द्वितीय कक्षा में पढ़ने वाले विद्यार्थियों के गृह कार्य (होम वर्क) पर पाबंदी लगा दी है। न्यायाधीश किरुवाकरण ने एक आदेश जारी कर कहा है कि देश के सभी राज्य एवं केंद्रशासित राज्यों के विद्यालयों को राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (एनसीईआरटी) के दिशा-निर्देशों का पालन करना ही होगा। इनमें वह सभी विद्यालय भी शामिल हैं, जिनको सरकारी अनुमोदन नहीं मिला है। न्यायाधीश ने अपने इस आदेश में यह भी कहा है कि कोई भी विद्यालय पहली और दूसरी कक्षा के बच्चों को गणित और भाषा

(विषय) को छोड़ अन्य कोई विषय पढ़ने पर मजबूर नहीं कर सकेगा, जबकि तीसरी से पांचवीं कक्षा तक के बच्चों को विज्ञान भी पढ़ाया जाएगा। न्यायाधीश महोदय ने अपने आदेश में यह बात स्पष्ट रूप से कही है कि न तो बच्चे भारोत्तोलक है और न ही उनके स्कूल बैग पीठ पर बोझ ढोने के साधन। उन्होंने कहा कि देश के सभी राज्यों के स्कूलों ने बच्चों को गैर जरूरी पुस्तकों का बोझ ढोने के लिए मजबूर कर रखा है। बच्चे यदि खेल-कूद के बीच पढ़ाई-लिखाई करें तभी उनका शारीरिक व मानसिक विकास हो सकता है। एक सर्वेक्षण में यह बात उभरकर सामने आई है कि पढ़ाई संबंधित अधिक गृह कार्य बच्चे के शारीरिक व मानसिक विकास के लिए सहायक नहीं है। बेहतर होगा बच्चों को उनकी क्षमता के अनुसार ही पढ़ने-लिखने और आगे बढ़ने के अवसर प्रदान किए जाए, बिना किसी भी प्रकार के दबाव अथवा पुस्तकों से भरे बस्ते के बोझ के।

कटघरे में सोशल मीडिया

हाल के दिनों में मेघालय के शिलोंग और कार्बी आंग्लोंग जिले के डोकमोका में हुई जघन्य घटनाओं के लिए सोशल मीडिया कटघरे में है। शिलोंग की एक मामूली सी घटना को सोशल मीडिया में बिना वजह तुल दिए जाने केकारण वहां जो सांप्रदायिक तनाव फैला, उसके लिए कई दिनों तक शिलोंग में कर्फ्यू लगाना पड़ा था। अभी तक शिलोंग के दंगों की आग मंद भी नहीं पड़ी थी कि कार्बी आंग्लोंग के डोकमोका में 8 जून की शाम गुवाहाटी के दो युवकों को बच्चा चोरी करने वाले समझकर उत्तेजित लोगों की भीड़ ने पीट-पीट कर मार डाला, वह भी पुलिस की मौजूदगी में। इस घटना के लिए भी काफी हद तक सोशल मीडिया को ही जिम्मेदार ठहराया जा रहा है। डोकमोका में मारे गए दोनों युवकों की पहचान नीलोत्पल दास और अभिजीत दास के रूप में की गई। नीलोत्पल अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान बना रहा साउंड इंजीनियर था और और अभिजीत ने इंजीनियरिंग की पढ़ाई पूरी कर सफल व्यवसायी के रूप में अपने कैरियर को आगे बढ़ा रहा था।

घटना वाली रात करीब आठ बजे पंजारी कछारी गांव के पास बड़ी संख्या में लोगों ने बच्चा चोर, बच्चा चोर कहते हुए इन दोनों युवकों पर पीछे से हमला कर दिया और भीड़ उन दोनों को तब तक मारती रही, जब तक उन्होंने दम नहीं तोड़ दिया। शर्म की बात यह भी थी कि लोग दोनों युवकों को हमलावरों से बचाने के बजाए हमले की वीडियो बना रहे थे। बाद में उस वीडियो क्लिपिंग को सोशल मीडिया में भी वायरल कर दिया गया। इस घटना के बाद 9 जून को मौके पर गए अतिरिक्त पुलिस महानिदेशक (कानून और व्यवस्था) मुकेश अग्रवाल ने कहा कि पिछले कुछ दिनों से सोशल मीडिया व वाट्सएप में बच्चा चोर को लेकर बड़े पैमाने पर अफवाहें फैलाई जा रही हैं। उन्होंने कहा कि शोणितपुर, पश्चिम कार्बी आंग्लोंग और नगांव में कई घटनाओं में स्थानीय लोगों ने संदेह के आधार पर संदिग्ध लोगों पर हमले किए हैं। यह घटना भी इसी तरीके की है।

इन दोनों घटनाओं ने यह साबित कर दिया है कि सोशल मीडिया का दुरूपयोग कितना भयावह हो सकता है। इसमें कोई दो राय नहीं की कि विज्ञान के दम पर इंसान ने भारी सफलताएं हासिल की है, मगर यह बात भी सच है कि विज्ञान के गलत उपयोग किए जाने की वजह से मानव सभ्यता को इसकी भारी कीमत भी चुकानी पड़ी है। इन दिनों सोशल मीडिया सरकार और समाज के सामने आतंक का पर्याय बना हुआ है। फेसबुक, ह्वाट्सएप, ट्वीटर आदि पर सक्रिय रहने वाले अधिकांश लोग मैसेज की सच्चाई और उसके गंभीर नतीजे को बिना जाने-समझे फारवर्ड कर देते हैं और मैंने देखा है कई लोग तो फेसबुक पर लोगों के मारे जाने अथवा बीमार होने के मैसेज को भी 'लाइक' कर देते हैं। युवाओं को न सिर्फ ऐसी स्थिति से बचने की जरूरत है, बल्कि सोशल मीडिया का उपयोग किस तरह से किया जाए, इसका प्रशिक्षण लेने की भी जरूरत है। विभिन्न समाजसेवी संगठन सोशल मीडिया प्रशिक्षण शिविर लगाकर युवाओं को सही रास्ता दिखा सकते हैं। यह बात किसी से भी छिपी नहीं है कि सोशल मीडिया पर भेजी जाने वाली सारी सामग्री सच नहीं होती। इनमें से बहुत जानकारी अथवा समाचार झूठे भी होते हैं।

शिलोंग अथवा डोकमोका जैसी घटनाओं की पुनरावृत्ति न हो, इसके लिए

सभी को अपनी जिम्मेदारी समझनी होगी। ऐसी घटनाओं के लिए सिर्फ पुलिस प्रशासन को जिम्मेदार ठहराना ही एकतरफा फैसला होगा। इसके लिए समाज भी कम जिम्मेदार नहीं है। फेसबुक, ट्वीटर और ह्वाट्सएप के दौर में बच्चा चोर समझकर दो युवकों की पीट-पीटकर हत्या कर दिए जाने की घटना अपने आप में विज्ञान और अंधविश्वास का कैसा विरोधाभास लिए हुए है यह सभी के सामने है। असम में आज भी कहीं डायन के नाम पर तो कहीं बच्चा चोर के नाम पर हत्याएं हो रही है। समाज और सरकार के लिए यह बड़ी शर्मनाक बात है। कुसंस्कार और अंधविश्वासों में जकड़े समाज को बिना मुक्त कराए विकास के मार्ग पर आगे नहीं ले जाया जा सकता। शिलॉंग और डोकमोका जैसी घटना की पुनरावृत्ति न हो, इसके लिए हम सभी को अपनी-अपनी जिम्मेदारी का निर्वाह करना होगा। सोशल मीडिया का सही उपयोग हो, यह सुनिश्चित करना समाज का काम है और सोशल मीडिया का गलत उपयोग करने वाले के खिलाफ कड़ी से कड़ी कार्रवाई हो, यह देखना पुलिस का काम है। कुल मिलाकर पुलिस, समाज, व्यक्ति, परिवार सभी को मिलकर इस दिशा में काम करना होगा, बिना एक-दूसरे पर दोषारोपण किए।

निर्दोष मजाक नहीं है रैगिंग

महाविद्यालय में पहली बार दाखिला लेने वाले विद्यार्थियों के लिए अपने से बड़े और वरिष्ठ सहपाठियों की डांट-डपट खाना एक साधारण सी बात है। रैगिंग का शब्दिक अर्थ ही डांटना या सताना होता है। इस प्रथा को महाविद्यालय अथवा विश्वविद्यालयों के छात्रों ने नवागतों या कनिष्ठ छात्रों से आत्मीयता बढ़ाने के संदर्भ में शुरू किया था। अब धीरे-धीरे रैगिंग का अर्थ बदलने लगा है और एक-दूसरे से परिचित होने के लिए शुरू की गई इस प्रथा ने आज एक आतंक का रूप धारण कर लिया है । रैगिंग, शब्द पढ़ने में भले ही सामान्य लगता है। इसके पीछे छिपी भयावहता को वे ही छात्र समझ सकते हैं जो इसके शिकार हुए हैं। विद्यार्थी किसी संस्थान में प्रवेश पाने को लेकर इतने चिंतित नहीं होते, जितने कि प्रवेश मिलने पर रैगिंग का सामना करने को लेकर। यह ठीक है कि सभी शिक्षण संस्थानों में रैगिंग के नाम पर नवागतों के साथ शारीरिक अथवा मानसिक अत्याचार नहीं किए जाते। महाविद्यालय के वरिष्ठ छात्रों द्वारा नवांगुत विद्यार्थियों को बेहद अपनापन और घर जैसा अहसास दिलाने की कोशिश की जाती है और फ्रैशर्स को किसी भी प्रकार की शर्मिंदगी नहीं झेलनी पड़ती है। वहीं दूसरी ओर रैगिंग कभी-कभी तो उनके लिए इतनी भयानक घटना बन जाती है कि वे अपनी जान से हाथ धो बैठते हैं। रैगिंग के नाम पर महाविद्यालय में नवागतों पर मानसिक अत्याचार किए जाते हैं तो कहीं शारीरिक जुर्म ढहाए जाते हैं। बाहर से आकर महाविद्यालय के हॉस्टल आदि में रहने वाले नवागतों को सबसे अधिक रैगिंग का दंश झेलना पड़ता है। कितनी बार ऐसी घटनाएं भी सामने आई है कि रैगिंग से तंग आकर या तो नवागत पढ़ाई छोड़कर अपने गांव चला जाता है अथवा कभी-कभी आत्महत्या तक कर लेता है। जब पहचान-पर्व अत्याचारों का सिलसिला बन जाए तो उसे निर्दोष मजाक तो नहीं कहा जा सकता।

आधुनिकता के साथ रैगिंग के तरीके भी बदलते जा रहे हैं। रैगिंग आमतौर पर सीनियर विद्यार्थी द्वारा कॉलेज में आए नए विद्यार्थी से परिचय लेने की प्रक्रिया है। लेकिन अगर किसी छात्र को रैगिंग के नाम पर अपनी जान गंवाना पड़े तो उसे क्या कहेंगे। उच्च शिक्षण संस्थान की एक परंपरा बताकर किसी को भी ऐसी अमानवीय हरकतें करने की इजाजत नहीं दी जा सकती। इस प्रकार रैगिंग सबसे अधिक भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश और श्रीलंका में प्रयोग किया जाता है। हमारे देश में रैगिंग केनाम पर कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में बढ़ती अमानवीय घटनाओं को देखते हुए वर्ष 2001 में उच्चतम न्यायालय ने इसकी रोकथाम के लिए केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो के पूर्व निदेशक ए. राघवन की अध्यक्षता में एक समिति बनाई। सुप्रीम कोर्ट ने रैगिंग के संबंध में समय पर महत्वपूर्ण कानून बनाकर सख्त फैसले किए। 11 फरवरी 2009 को सुप्रीम कोर्ट की बैंच ने स्पष्ट कहा कि रैगिंग में संलिप्त पाए गए छात्र के विरुद्ध क्रिमिनल केस दर्ज होना चाहिए। क्योंकि रैगिंग मानवाधिकार को गाली है। मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने भी अपने अधीन आने वाले शिक्षा संस्थानों में रैगिंग के विरुद्ध कड़े निर्देश जारी किए।

जो हंसी-मजाक किसी के जान लेने का सबब बन जाए उसे मात्र एक निर्दोष मजाक बताकर नहीं टाला जा सकता। अब तक न जाने कितने विद्यार्थी रैगिंग के कारण बीच में ही अपनी पढ़ाई छोड़ चुकेहैं। सिर्फ यही नहीं बहुत से विद्यार्थी तो आत्महत्या तक कर चुकेहैं। शैक्षिक सत्र 2009-10 में रैगिंग से हुई सर्वाधिक मृत्यु दर्ज की गईं। इनमें महाराष्ट्र शीर्ष दो राज्यों में से एक था, जिनमें रैगिंग से सर्वाधिक मौतें हुईं। गवर्नमेंट मेडिकल कॉलेज औरंगाबाद, महाराष्ट्र में वर्ष 2011 में एक रैगिंग मामले में फाइनल इयर के 13 छात्रों को 25 हजार रुपए प्रत्येक का जुर्माना लगाया गया। यह महाराष्ट्र में अपनी तरह का पहला मामला था।

इतना कुछ होने के बावजूद रैगिंग पर अंकुश नहीं लग पा रहा है। रैगिंग को जड़ से तभी समाप्त किया जा सकता है, जब शैक्षिक संस्थान, सरकारी प्राधिकरण, मीडिया और सिविल सोसायटी मिलकर काम करें। जिला, राज्य और केंद्रीय स्तर पर रैगिंग-विरोधी दस्तों और समितियों की स्थापना करते हुए इस बुराई पर निरंतर दृष्टि रखी जा सकती है। इस संबध में न्यायालय के दिशा-निर्देश सराहनीय हैं। इसने दोषियों के लिए समुचित दंड के प्रावधान का सुझाव दिया है।

प्लास्टिक प्रदूषण को हराएं

दावानल की आग से भी अधिक रफ्तार से फैल रहा प्रदूषण पूरे विश्व के लिए एक गंभीर चिंता का विषय बना हुआ है। वर्ष 1974 से हर साल 5 जून को दुनिया भर में विश्व पर्यावरण दिवस का आयोजन किया जाता है। इस दिन दुनिया भर में इस गंभीर समस्या पर विशेष रूप से गहन विचार-विमर्श करने के साथ ही इस बारे में जनता को जागरूक बनाने पर चिंतन-मनन किया जाता है। वैसे तो धुंए से उत्पन्न होने वाले प्रदूषण से लेकर ध्वनि प्रदूषण, जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण जैसे सभी प्रदूषण हमारे लिए बेहद चिंता का विषय है, लेकिन प्लास्टिक प्रदूषण ने पूरे विश्व के समक्ष एक गंभीर परिस्थिति पैदा की हुई है। इस साल की 5 जून को मनाए जाने वाले विश्व पर्यावरण दिवस का भारत वैश्विक मेजबान है और इस साल नारा दिया गया है 'प्लास्टिक प्रदूषण को हराएं।' वैसे यदि देखा जाए तो 1974 से भले ही विश्व मंच पर पर्यावरण दिवस मनाया जाता हो, लेकिन इससे कुछ खास हासिल नहीं हो पाया है। दुनिया में बढ़ते प्रदूषण पर नजर रखने वाले तो यहां तक कहते हैं कि जितनी देर में हार्दिक पांड्या एक ओवर गेंद फेंकते हैं, उतनी देर में चार ट्रक के बराबर प्लास्टिक का कचरा महासागर में बहा दिया जाता है।

प्लास्टिक प्रदूषण से जुड़े आंकड़ें बताते हैं कि हर साल पूरी दुनिया में 500 अरब प्लास्टिक बैगों का उपयोग किया जाता है। सिर्फ यही नहीं हर वर्ष कम से कम 8 मिलियन टन प्लास्टिक महासागरों में पहुंचता है, जो प्रति मिनट एक कूड़े से भरे ट्रक के बराबर होता है। पिछले एक दशक में जितनी मात्रा में प्लास्टिक का उत्पादन किया गया वह पिछली एक शताब्दी के दौरान उत्पादित प्लास्टिक की मात्रा से अधिक था। आंकड़े यह भी बताते हैं कि हमारे द्वारा प्रयोग किए जाने वाले प्लास्टिक में से 50 प्रतिशत प्लास्टिक का सिर्फ एक बार उपयोग होता है। यही नहीं पानी अथवा अन्य तरल पदार्थ पीने के नाम पर विश्व भर में हर मिनट 10 लाख प्लास्टिक की बोतलें खरीदी जाती हैं। हमारे द्वारा विश्व भर में जितना कचरा उत्पन्न किया जाता है, उसमें 10 प्रतिशत योगदान प्लास्टिक का होता है। प्लास्टिक कचरा दुनिया भर के लिए न सिर्फ एक संकटपूर्ण स्थिति है, बल्कि जीवन के हर पहलू को प्रभावित कर रहा है। यह हमारे पीने के पानी में, हमारे भोजन में मौजूद है और यह हमारे समुद्र तटों और महासागरों को भी नष्ट कर रहा है।

मानव-सृजित इस प्लास्टिक प्रदूषण का हल सिर्फ और सिर्फ हमारे पास है। हमें प्लास्टिक प्रदूषण की भयावहता को समझना होगा। प्लास्टिक प्रदूषण की वजह से हमारी उपजाऊ भूमि किस कदर प्रभावित हो रही है, यह बात किसी से भी छिपी नहीं है। यह सभी जानते हैं कि जमीन के अंदर दबा पड़ा प्लास्टिक सैकड़ों साल बाद भी ज्यों का त्यों रहता है। जमीन के जिस हिस्से में प्लास्टिक दबा पड़ा होता है, उस हिस्से की उपजाऊ क्षमता पर भी इसका कुप्रभाव पड़ता है। प्लास्टिक के बैग अथवा बोतल में रखा खाद्य पदार्थ हमारे शरीर के लिए बेहद हानिकारक है, यह बात भी चिकित्सा विज्ञान साबित कर चुका है। इसके बावजूद हम प्लास्टिक व्यवहार की लत को छोड़ नहीं पा रहे हैं। जबकि सच्चाई यह भी है कि बिना प्लास्टिक का उपयोग किए भी हम खुश और स्वस्थ रह सकते हैं। हमें उन दिनों का स्मरण करना चाहिए जब हम बाजार में खरीददारी करने के लिए घर से निकलते थे तो कपड़े अथवा पटसन का थैला और कांच की बोतल हमारे साथ होती थी। दुकानदार भी समान तौलकर उसे कागज के पैकेट में ही डालकर देते थे। अब वह पहले वाली बात नहीं रही। प्लास्टिक के बढ़ते चलन

ने हमारे कुटीर उद्योग को भी प्रभावित किया है। पहले महिलाएं अपने घरों में कपड़े के थैले अथवा कागज के पैकेट आदि बनाकर भी चार पैसे कमा लिया करती थी, मगर प्लास्टिक की वजह से यह धंधा पूरी तरह से चौपट होकर रह गया है।

वैसे भी यदि देखा जाए प्रदूषण को कम कर दुनिया में हरियाली फैलाना हमारी एक सामाजिक जिम्मेदारी भी है। हम सभी प्रतिदिन हरियाली के विस्तार से जुड़ा कम से कम एक अच्छा कार्य करें तो हमारे देश में प्रतिदिन सवा अरब काम हो सकते हैं। अब समय आ गया है हम सभी को मिलकर प्लास्टिक के प्रचलन को पूरी तरह से बंद करने की दिशा में कदम उठाने ही होंगे, क्योंकि यह हमारे महासागरों को प्रदूषित कर रहा है, समुद्री जीवन को नष्ट कर रहा है और मानव स्वास्थ्य के लिए खतरा बन गया है। आइए, हम सभी मिलकर इस दिशा में सक्रिय भूमिका अदा करने की शपथ लें।

बढ़ते वृद्धाश्रम, घटती संवेदनाएं

हमारे देश के अन्य हिस्सों केसाथ-साथ असम में बड़ी तेजी से वृद्धाश्रम का चलन बढ़ने लगा है। किसी भी समाज में वृद्धाश्रम, अनाथालय और महिलागृह का होना उस समाज के लिए कलंक की बात है। ऐसे संस्थानों की संख्या का बढ़ना यह दर्शाता है कि समाज में संवेदनाएं घटने लगी है। इसे एक गंभीर सामाजिक समस्या के रूप में देखा जाना चाहिए। समाजशास्त्रियों को इस बात पर खुली चर्चा करनी चाहिए कि बूढ़े मां-बाप को वृद्धाश्रम में भेजने के समाज पर पड़ने वाले अच्छे और बुरे असर क्या-क्या हो सकते हैं। पिता के चरणों में चार धाम और मां के पांव तले स्वर्ग की कल्पना करने वाले हम में से ही कोई जब अपने माता-पिता को वृद्धाश्रम में रहने के लिए भेजता है तो इसमें उसके बच्चों के लिए एक स्पष्ट संदेश छिपा होता है। वह संदेश यह होता है- आज दादा-दादी की तो कल हमारी बारी है। पूरी जिंदगी अपने परिवार-पारिवारिक सदस्यों के साथ गुजारने वाले किसी वृद्ध को अपनी जिंदगी की सांझ जब एक वृद्धाश्रम में गुजारनी पड़ती है तो इसकी पीड़ा का अहसास एक मात्र भुक्तभोगी ही कर सकता है। जिन बच्चों को सफल बनाने में माता-पिता अपनी पूरी जिंदगी

खपा देते हैं, जिनको पांवों पर खड़ा करने में वे अपनी जमा पूंजी खत्म कर देते हैं, उन्हीं को जब उनके बच्चे किसी वृद्धाश्रम के लिए लिए घर से रवाना करते हैं तो वे खुद को कैसा ठगा महसूस करते होंगे।

घर में बूढ़े माता-पिता के नहीं रहने का अर्थ किसी तपते रेगिस्तान में एक विशाल बरगद के पेड़ का न होने सरीखा है। परिवार के संस्कार-परंपरा, रीति-रिवाज और सबसे बड़ी बात अनुशासन को बनाए रखने में इन बुजुर्गों की सबसे अहम भूमिका होती है। बूढ़े माता-पिता का प्रौढ़ बेटा तथा घर का मुखिया जब शाम ढलने के बाद भी घर नहीं लौटता तो उसकी सर्वाधिक चिंता करने वाले मां-बाप ही होते हैं। मैं यह नहीं कहता कि घर के अन्य सदस्य उसके समय पर घर न लौटने पर चिंतित नहीं होते। इससे भी बड़ी बात घर में बच्चों की देखभाल करने में बूढ़े मां-बाप जिस तरह से स्वयं को समर्पित करते हैं, वैसे कोई भी नहीं कर सकता। आज के इस महंगाई के दौर में पति-पत्नी दोनों के लिए रोजगार करना वक्त की जरूरत और उनकी मजबूरी है। ऐसी स्थिति में उनके पीछे घर में बच्चों की देखभाल कौन करे, यह एक बड़ा सवाल उभरकर सामने आता है। नौकर-आया के भरोसे पलने वाले बच्चों का भविष्य और हालत हम देख ही रहे हैं। बच्चे को पिलाने के लिए रखा दूध आया (नौकरानी) द्वारा चट कर जाना और नौकर द्वारा छोटी बच्ची के साथ बदसलूकी करने जैसी खबरें आए दिन अखबारों में छपती रहती है। क्या न अच्छा हो घर और बच्चों को बजाए नौकर-आया के बड़े-बुजुर्ग बूढ़े माता-पिता के भरोसे छोड़ा जाए। इससे न सिर्फ घर की संपूर्ण सुरक्षा होगी, बल्कि बच्चों की भी देखभाल हो सकेगी।

बूढ़े माता-पिता के बजाए वृद्धाश्रम के घर में रहने केऔर भी बहुत से फायदे निकाले जा सकते हैं। बच्चों में बढ़ती आपराधिक प्रवृत्ति, क्रूर व्यवहार, मानसिक तनाव, अवसाद, पढ़ाई का अत्याधिक दबाव आदि समस्याओं को घर में माता-पिता और दादा-दादी की अनुपस्थिति के साथ जोड़कर भी देखा जा सकता है। स्कूल से लौटने के बाद घर में बच्चों के सिर पर कोई हाथ फेरने वाला भी नहीं होता। नौकर-आया द्वारा बनाई मैगी अथवा अन्य कोई जंकफूड खाकर अपनी भूख को शांत करना ऐसे बच्चों की मजबूरी है। माता-पिता के प्यार से दूर, दादा-दादी की ममतामयी छांव से महरूम बच्चों की ऐसी दशा के लिए हम किसी

दूसरे को तो जिम्मेदार नहीं ठहरा सकते। यह कैसी विडंबना है कि जिनको पूरी जिंदगी जीने का अनुभव है, उन माता-पिता को हम अपने घर-परिवार-बच्चों से दूर कर ऐसी पूरी जिम्मेदारी नौकर-आया और घर के ट्यूशन टीचर के भरोसे छोड़ देते हैं।

श्रवण कुमार के देश में वृद्धाश्रम का होना हमारी प्राचीन परंपरा और सामाजिक मूल्यों के गाल पर एक झन्नाटेदार तमाचे से कम नहीं। समाज में बढ़ते बाल अपराध और बच्चियों के साथ होने वाली उत्पीड़न की घटनाओं के पीछे घर में दादा-दादी की अनुपस्थिति भी एक महत्वपूर्ण कारण हो सकता है। हमने टूटते-बिखरते संयुक्त परिवार से देश-समाज और परिवारों को हो रहे भारी नुकसान को देखा है। एक ही शहर, एक ही गली, एक ही मकान में भाई-भाई अलग-अलग फ्लैट में रहते हैं, लेकिन त्यौहार-पर्व या किसी पारिवारिक कार्यक्रम में ही एक-दूसरे से मिलजुल पाते हैं। परिवार के सभी सदस्यों को आपस में बांधकर रखने वाली डोर है माता-पिता। यह डोर जब भी कमजोर होगी, माला के मनके एकजुट-एकसाथ नहीं रह पाएंगे। टूटकर बिखर जाएंगे। यह बात कड़वी जरूर है, लेकिन सच भी है।

अगले जनम मोहे बिटिया ही दीजो

हमारे देश में आज भी एक ओर जहां मंदिरों में देवी की पूजा की जाती है, वहीं दूसरी ओर समाज में बेटियों की उपेक्षा की जाती है। महिला उत्पीड़न और बढ़ती बलात्कार की घटनाओं ने न सिर्फ हम देशवासियों को, बल्कि विदेशों में हमारे देश को शर्मसार करने का काम किया है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी द्वारा दिए गए 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' के नारे के बाद भले ही स्कूलों में पढ़ाई करने वाली बेटियों की संख्या बढ़ी है, मगर युवती-महिलाएं शाम के बाद सड़कों पर अथवा सुनसान जगहों पर निकलने से पहले सौ बार सोचती है। यह कैसी विरोधाभाषी स्थिति है, जिस देश में नारियों की पूजा होती है, इस देश के कई आज भी लड़के का जन्म हो, इसके लिए भगवान से मन्नतें मांगी जाती है। लोग यह बात भूल गए हैं कि 'बेटी नहीं होगी तो बहू कहां से लाओगे।' देश में यह स्थिति तब है, जबकि लड़कियों ने बार-बार इस बात को साबित किया है कि वह किसी भी मामले में लड़कों से कम नहीं हैं। आकाश से लेकर जमीन और

समुद्र तक पर लड़कियां लड़कों के साथ बराबर कंधे से कंधा मिलाकर खड़ी दिखती हैं। इस बार राष्ट्रमंडल के खेलों में भारत की बेटियों ने एक दर्जन से पदक अपने नाम पर पूरी दुनिया के समक्ष अपनी श्रेष्ठता को साबित किया है। पूर्व प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी से लेकर वर्तमान विदेश मंत्री सुषमा स्वराज, रक्षा मंत्री निर्मला सीतारमण जैसी महिलाओं का लोहा पूरा विश्व मानता है। ममता बनर्जी, मायावती, वसुंधरा राजे सिंधिया, उमा भारती, मैरी कॉम, सानिया नेहवाल उन भारतीय महिलाओं के नाम हैं, जिनको लेकर हम भारतवासी गर्व महसूस करते हैं। देश-समाज और परिवार को इतना कुछ देने-करने के बाद भी जब महिलाओं को उनका सम्मान और हक नहीं मिलने की घटना सामने आती है तो मेरा मन शर्म के मारे झुक जाता है।

आज के दौर में महिलाएं किसी से भी पीछे नहीं हैं। महिलाएं न सिर्फ राष्ट्रीय विकास में अपनी महत्वपूर्ण साझेदारी निभा रही हैं, बल्कि धार्मिक क्षेत्र में महिलाओं पर लगाई गई बंदिशों को भी तोड़ने का काम कर रही हैं। वैसे भी हमारे देश में महिलाओं को पुरुषों के समान बराबरी का अधिकार वैदिक काल से प्राप्त है। तभी तो वैदिक रीति में महिलाओं को भी उपनयन संस्कार की इजाजत दी गई है। मातृ शक्ति वैदिक काल से सर्वोपरि और पूजित रही है। आज जब पूरे देश में महिलाओं को बराबरी का दर्जा दिए जाने की लहर चल रही है तो फिर महिलाओं को उपनयन संस्कार सहित अन्य धार्मिक कर्मकांडों में भी पूरे आदर और सम्मान के साथ शामिल किया जा रहा है। श्रीश्री रवि शंकर और उनके शिष्य इस परंपरा को आगे बढ़ाते हुए महिलाओं का उपनयन संस्कार करा रहे हैं। आर्ट ऑफ लिविंग के जरिए श्रीश्री रविशंकर पूरे देश में महिलाओं को जगा रहे हैं कि पुरुषों की तरह उन्हें भी वैदिक काल से उपनयन संस्कार कराने का अधिकार प्राप्त है। इसके अलावा गायत्री परिवार सहित अन्य संगठन भी महिलाओं को पुरुषों की बराबरी में खड़ा करने की कोशिशों में लगे हैं। पिछले दिनों बेटियों द्वारा अपने शहीद पिता की अर्थी को कंधा और मुखाग्नि देने की घटनाएं महिलाओं की इसी आजादी की ओर इंगित करती है।

भारतीय परिवारों में भी लड़कियों को लेकर भ्रांतियां बड़ी तेजी से मिट रही है। सामाजिक और सरकारी दबाव हो या बढ़ती जागरूकता लड़कियों के

लिए नए-नए रास्ते खुलने लगे हैं। अब यह अवधारणा भी बड़ी तेजी से बदलने लगी है कि बूढ़े मां-बाप के देखभाल की जिम्मेदारी सिर्फ लड़कों पर ही होती है अथवा लड़के-बहूएं ही इस जिम्मेदारी को अच्छी तरह से निभा सकती है। कई बार तो अपने माता-पिता की देखभाल के मामले में लड़कियां लड़कों से भी आगे निकल जाती है। वैसे भी एकल परिवार में बदलते इस समाज में बढ़ रही वृद्धाश्रम की संख्या इस बात की चुगली करते हैं कि बेटे अपने माता-पिता की कैसी देखभाल कर रहे हैं। ऐसे माहौल में देरगांव पुलिस प्रशिक्षण केंद्र में कार्यरत पुलिस अधिकारी देवजीत दास की दो बेटियों ने जो काम किया है, उसकी जितनी भी तारीफ की जाए कम है। दोनों बेटियां गंभीर रूप से बीमार अपने पिता को जिंदा तो नहीं रख पाई, लेकिन पिता की जिंदगी के लिए अपने दो महत्वपूर्ण अंग का दान कर यह साबित जरूर कर दिया कि बेटियां किसी भी मायने में बेटों से कम नहीं हैं। इस हालत में भगवान के सामने खड़े होने पर मेरे मुंह से यही बात निकलती है-भगवान, अगले जनम मोहे बिटिया ही दीजो।

मंत्री नहीं जनता के हृदय का सम्राट बने जनप्रतिनिधिगण

लोकतंत्र में जनप्रतिनिधि की भूमिका बेहद महत्वपूर्ण है। एक तरह से यदि देखा जाए तो पूरे लोकतंत्र का ताना-बाना ही जनप्रतिनिधियों पर निर्भरशील है। आमजनता की समस्याएं, भावनाएं और विचार को राष्ट्रीय, प्रांतीय व स्थानीय मंचों पर उठाने का काम इन जनप्रतिनिधियों का ही है। इस लिहाज से यदि देखा जाए तो संसद से लेकर पंचायत, गांवसभा तक की सफलता की संपूर्ण जिम्मेदारी इन जनप्रतिनिधियों के कंधों पर ही टिकी है। हमारे देश के राजनीतिक इतिहास में ऐसे बहुत से जनप्रतिनिधियों का नाम बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है, जिन्होंने विपक्ष में रहते हुए हमेशा जोरदार आवाज में जनता की आवाज को संसद-विधानसभा में न सिर्फ उठाया, बल्कि सत्ताधारी के दल को भी उस पर कार्रवाही करने को मजबूर किया। अटल बिहारी वाजपेयी से लेकर स्व. प्रमोद महाजन, स्व. इंदिरा गांधी, सोमनाथ चटर्जी आदि नेताओं को हमेशा ही आदर्श जनप्रतिनिधि होने का सम्मान मिला, चाहे यह लोग सत्ता में रहे या विपक्ष में। अब स्थितियां बदलने लगी है। आज के दिन लोकतंत्र एक जटिल क्षणों से होकर गुजर रहा है। विपक्ष सरकार पर राज्यसभा चलने नहीं देने का आरोप लगा रहा है, जबकि सरकार विपक्ष पर चर्चा से भागने का आरोप मढ़ रही है। कहीं सत्ताधारी दल की सहयोगी पार्टियां ही सरकार के काम में रोड़े अटका रही है। बिहार के कई सांसद अपनी ही सरकार के खिलाफ मोर्चा खोले हुए हैं। इन सारी कवायदों के बीच आमजनता की चिंता और समस्याएं कहीं नहीं दिखती। विपक्ष खुले मंच से प्रधानमंत्री को झूठा और जुमलेबाज बताता है, जबकि सत्ताधारी दल के वरिष्ठ नेतागण सौ साल से अधिक पुरानी पार्टी कांग्रेस के राष्ट्रीय अध्यक्ष राहुल गांधी को अपरिपक्व बताते हैं। इसे भारतीय लोकतंत्र की खुबसूरती नहीं कहा जा सकता।

पिछले दिनों असम के मोरीगांव में एक अजब सा नजारा देखने को मिला। मोरीगांव के विधायक रमाकांत देउरी को सर्वानंद सोनोवाल के मंत्रिमंडल में जगह नहीं मिलने के विरोध में श्री देउरी के समर्थकों ने जमकर हंगामा किया। मोरीगांव के विधायक को मंत्री पद नहीं दिए जाने के विरोध में उनके समर्थकों ने बंद बुलाया, सड़कों पर टायर जलाए और पूरे इलाके के लोगों को अपने-अपने घरों में कैद होकर रहने पर मजबूर कर दिया। यह कितनी शर्म की बात है जब एक जनप्रतिनिधि के समर्थक इस बात के लिए अपने इलाके को बंद करा देते हैं, क्योंकि उनके माननीय विधायक को मंत्री पद नहीं मिला। ऐसी घटनाओं से जनता की नजरों में विधायक व उनके समर्थक दोनों की ही छवि खराब होती है। क्या अच्छा हो, जब इलाके की वर्षों पुरानी समस्या का समाधान न होने के विरोध विधायक समर्थक और आमजनता मिलकर लोकतांत्रिक तरीके से आंदोलन छेड़े। जनप्रतिनिधि चाहे वह सत्ता पक्ष का हो या विरोधी पक्ष का, जब जनता की चिंता छोड़ अपना हित साधने में लग जाता है तो समझ लेना चाहिए, उसके अच्छे दिन जाने वाले हैं। एक मंत्री बनकर आप किसी एक ही विभाग का काम कर सकते हैं, लेकिन एक जनप्रतिनिधि के रूप में आप सरकार के हर एक विभाग को जनता के हित में काम करने पर मजबूर कर सकते हैं। मंत्री पद किसी भी विधायक की सफलता का पैमाना नहीं हो सकता। असम विधानसभा में सत्ता पक्ष-विपक्ष के कई विधायक दिग्गज मंत्रियों के भी नाक में दम किए रहते हैं। जिस दिन ये विधायक विधानसभा में नहीं आते, अंदर का माहौल सूना-सूना लगता है। जनप्रतिनिधियों का काम सरकार पर दबाव डालकर जनता की समस्याओं का समाधान करना है, सरकारी योजनाओं का लाभ लाभार्थियों तक पहुंचाना एवं शासन में व्याप्त भ्रष्टाचार-घोटाले आदि को रोकना है और इन सब काम केलिए किसी विधायक का मंत्री होना जरूरी नहीं है। अन्ना हजारे न तो मंत्री हैं और न ही विधायक। वे तो किसी गांव पंचायत के अध्यक्ष तक नहीं हैं। फिर भी उनकी एक आवाज पर दिल्ली में बैठी सरकार तक हिल जाती है। उनके बुलावे मात्र पर दिल्ली के रामलीला मैदान में जनसैलाब उमड़ पड़ता है। यह होती है जनप्रतिनिधि की ताकत। बिना ताज के जनता का सम्राट होते हैं जनप्रतिनिधि। बेहतर होगा जनप्रतिनिधि मंत्री बनने की होड़ में शामिल के बजाए अपने काम के दम पर जनता के दिलों पर राज करें।

बलात्कार की बढ़ती घटनाएं -एक गंभीर सामाजिक संकट

देश भर में बढ़ती बलात्कार की घटनाओं ने एक बार फिर जनता में आक्रोश, सरकार में चिंता और विपक्षी पार्टियों में आंदोलन करने की वजह पैदा कर दी है। हाल ही में उत्तर प्रदेश के उन्नाव और जम्मू-कश्मीर के कठुआ में हुई बलात्कार की घटनाओं को लेकर जनता की नाराजगी और नेताओं की बयानबाजी चरम है। वैसे यदि देखा जाए तो बलात्कार की घटनाओं को हम कानून व्यवस्था से जुड़ा पहलू मानकर इसकी जिम्मेदारी सरकार के मत्थे मढ़ सकते हैं। लेकिन हकीकत में देखें तो बलात्कार, महिला उत्पीड़न आदि के मामले हमारे लिए गंभीर सामाजिक संकट भी है। ऐसे संकट की अब और अधिक दिनों तक नजरअंदाजी नहीं की जा सकती। एक युवती, महिला या बच्ची को सुरक्षा देने की जिम्मेदारी जितनी सरकार की है, उतनी समाज की भी है। बलात्कार जैसी घटनाओं के नए-नए बहाने ढूंढ़ने के बजाए बेलगाम होते अपने ही भाई-बेटों पर अंकुश लगाने के उपाय करने होंगे। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने ब्रिटेन के ऐतिहासिक सेंट्रल हॉल वेस्टमिंस्टर में बुधवार की रात

'भारत की बात, सबके साथ' कार्यक्रम के दौरान कहा कि हम हमेशा अपनी बेटियों से पूछते हैं कि वो क्या कर रही हैं, कहां जा रही हैं। हमें अपने बेटों से भी ऐसे सवाल पूछने चाहिए। क्योंकि जो व्यक्ति बलात्कार जैसे जघन्य अपराध को अंजाम देता है, वह भी किसी का बेटा है।

जहां एक ओर आस्ट्रेलिया के मध्य गोल्ड कोस्ट, क्वींसलैंड में 4 से अप्रैल तक हुए 2018 के कॉमनवेल्थ गेम्स में भारत की बेटियों ने करीब एक दर्जन स्वर्ण सहित कुल 28 मेडल हासिल कर देश का सिर ऊंचा किया तो उत्तर प्रदेश के उन्नाव और जम्मू-कश्मीर के कठुआ में हुई बलात्कार की घटनाओं ने देश को शर्मसार करने का भी काम किया है। आधुनिक और सभ्य समाज में इस प्रकार का विरोधाभाष स्वीकार्य नहीं हो सकता और न ही बलात्कार जैसे संवेदनशील मामले में किसी भी प्रकार की राजनीति को ही जगह दी जानी चाहिए। आधी रात को देश की राजधानी पर कैंडल मार्च निकलने या उन्नाव की घटना के आरोपी विधायक को उत्तर प्रदेश के शीर्ष पुलिस अधिकारी द्वारा 'माननीय' और 'जी' जैसे सम्मान सूचक शब्दों से संबोधित किए जाने, वह भी राष्ट्रीय मीडिया, पत्रकार सम्मेलन में, यह साबित करता है कि हम कितने संवेदनहीन हो चुके हैं। कई मीडिया घरानों द्वारा ब्रेकिंग न्यूज देने की हड़बड़ी में कठुआ कांड की नाबालिग बच्ची की फोटो-नाम आदि प्रकाशित-प्रसारित करने की घटनाओं को भी हमारी संवेदनहीनता के साथ जोड़कर देखा जा सकता है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की भाषा में कहें तो बलात्कार तो बलात्कार होता है, उसका राजनीतिकरण नहीं किया जाना चाहिए। ब्रिटेन के ऐतिहासिक सेंट्रल हॉल वेस्टमिंस्टर में 'भारत की बात, सबके साथ' कार्यक्रम के दौरान उन्होंने यह भी कहा कि बलात्कार के मामलों को लेकर ऐसे सवाल नहीं उठने चाहिए कि इस सरकार के दिनों में इतनी और उस सरकार में दिनों में उतनी बलात्कार की घटनाएं हुई। बलात्कार, बलात्कार है, चाहे वह अब हुआ या पहले हुआ हो। यह बेहद दुखद है और ऐसी घटनाएं देश को शर्मसार करती हैं।

महिला उत्पीड़न की बढ़ती घटनाओं के बीच ऐसे मामलों के आरोपियों को कड़ी से कड़ी सजा देने यहां तक की मौत तक की सजा दिए जाने की

मांग उठ रही है। कई राज्यों में ऐसे मामलों से निपटने के लिए कड़े कानून बनाए भी जा चुके हैं। असम की जनता और सरकार भी देश भर में घट रही बलात्कार जैसी घटनाओं से खासी चिंतित है। पिछले बजट सत्र में असम में बढ़ रही बलात्कार और महिला उत्पीड़न की घटनाओं को लेकर 'महिलाओं के यौन उत्पीड़न को रोकने के लिए कड़े कानून की जरूरत' शीर्षक से चर्चा भी की गई थी। इस चर्चा में भाग लेते हुए मुख्यमंत्री सर्वानंद सोनोवाल ने सदन को साफ शब्दों में बताया था कि सरकार अगले विधानसभा सत्र में बलात्कारियों के खिलाफ एक कठोर विधेयक लेकर आएगी और इसके लिए कानूनविदों से चर्चा करने के साथ विधायकों के साथ भी सलाह-मशविरा किया जाएगा। श्री सोनोवाल की इस घोषणा से इस मामले में सरकार की सोच और गंभीरता का पता तो चलता है। इसके बावजूद यह सवाल अनुत्तरित रह जाता है कि ऐसे कड़े कानून की मदद से क्या बलात्कार और महिला उत्पीड़न की घटनाओं से निपटा जा सकता है। इस समस्या के हल के लिए सामाजिक तौर पर क्या कुछ किया जा सकता है। यह सवाल समाज के हर एक व्यक्ति के, आपके और मेरे सामने भी है।

दोनों सदनों के ठप होने का जिम्मेदार कौन

केंद्रीय वित्त मंत्री अरुण जेटली ने साल 2018-19 के लिए जब संसद में 24 लाख करोड़ रुपए का ऐतिहासिक बजट पेश किया तो देशवासियों को उम्मीद थी कि अब तक के इस सबसे बड़े बजट पर दोनों सदनों में जमकर बहस होगी। यदि देखा जाए तो बहस होनी भी चाहिए थी। श्री जेटली के बजट प्रस्तुति के बाद देशवासियों के जो सवाल थे, उनके जवाब ढूंढ़ने के लिए विभिन्न दलों के सांसदों को इस पर बहस करनी भी चाहिए थी। क्योंकि उनका काम ही यही है और इसी काम के लिए देशवासी उन्हें अपने प्रतिनिधि के रूप में चुनकर संसद में भेजती है। लेकिन दुख और शर्म की बात है कि विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र का मंदिर कहे जाने वाले संसद में ऐसी बहस हो न सकती। एक रिपोर्ट के मुताबिक 29 जनवरी से 9 फरवरी और 5 मार्च से 6 अप्रैल तक दो चरणों में चले बजट सत्र में कुल मिलाकर करीब 2 सौ करोड़ रुपए खर्च हुए, लेकिन जनता के सेवकों ने इतने बड़े बजट पर करीब 25 घंटे ही बहस की। बाकी का पूरा वक्त शोर-शराबे और एक-दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप लगाने में

ही बर्बाद हो गया। इसके लिए जहां एक ओर विपक्षी पार्टियों ने सरकार पर संसद नहीं चलने देने का आरोप लगाया, वहीं सरकार ने हर मसले पर चर्चा करने को तैयार रहने का दम भरते हुए कहा कि सरकार तो चर्चा चाहती है, विपक्ष ही इससे दूर भाग रहा है। बजट सत्र का दूसरा चरण 6 अप्रैल को खत्म हो गया, लेकिन राजनीतिक दलों की राजनीति इसको लेकर खत्म नहीं हुई। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी, भाजपा के राष्ट्रीय अध्यक्ष अमित शाह के अलावा भाजपा के तमाम नेता-मंत्रियों ने 12 अप्रैल को उपवास रखकर देशवासियों को यह संदेश देने की कोशिश की कि संसद के नहीं चलने देने के लिए एक मात्र कांग्रेस सहित अन्य विपक्षी दल ही जिम्मेदार है। काम के हिसाब से यदि देखें तो दो चरणों में चले कुल 45 दिन के सत्र में सिर्फ 25 घंटे काम हुआ, दो बिल पास हुए और इस पर खर्च आया पूरे 200 करोड़। यह कितनी चिंता की बात है कि सांसदों ने जिस 200 करोड़ रुपए की बर्बादी की, यह पूरा खर्च हमारे-आप जैसे करदाताओं की जेब से आता है। 45 दिनों तक चले संसद में सिर्फ हंगामे के अलावा कुछ हो ही नहीं रहा है। 6 अप्रैल को संसद के बजट सत्र का दूसरा चरण भी खत्म हो गया। यह जानकारी बेहद चिंताजनक है कि लोकसभा में 14.1 घंटे और राज्यसभा में मात्र 11.2 घंटे ही बजट पर चर्चा हुई। पीआरएस लेजिस्लेटिव नामक एक संस्था द्वारा जारी एक डाटा के अनुसार यह जानकारी सामने आई है। काम के घंटों के लिहाज से साल 2000 से अब तक यह सबसे खराब बजट सत्र रहा। इस बार के बजट सत्र के दोनों चरणों में लोकसभा में मंत्रियों ने 26 प्रश्नों के उत्तर दिए, जबकि राज्यसभा में मंत्रियों से मात्र 6 प्रश्नों के उत्तर ही मिले। पूरे बजट सत्र में लोकसभा की कार्यवाही में 3.1 घंटे प्रश्नकाल चला, जबकि राज्यसभा में 2 घंटे प्रश्नकाल को समर्पित रहे।

बजट सत्र के दोनों चरणों के दौरान लोकसभा और राज्यसभा में बजाए कामकाज होने के हंगामा होने घटना को पूरी गंभीरता से लिए जाने की जरूरत है। यह गंभीरता सत्ता-पक्ष दोनों को ही दिखानी होगी। किसी भी समस्या का हल सिर्फ संवाद से ही संभव है और लोकसभा-राज्यसभा हमारे सांसदों को ऐसे ही संवाद के लिए मंच उपलब्ध कराता है। इन दोनों स्थानों पर देश की नीतियां बनती, परियोजनाएं बनती है, देश संचालन के दिशा-निर्देश तय होते हैं। इन दोनों

सदनों में आर्थिक नीति, विदेश नीति, प्रतिरक्षा नीतियों की समीक्षा होती है। ऐसे में यदि दोनों सदनों को ठप कर दिया जाता है तो पूरे देश की संचालन व्यवस्था को ही ठप करने जैसा है। ऐसा नहीं है कि यह स्थिति पहली बार पैदा हुई है। इससे भी खराब सत्र गुजर चुके हैं और पीआरएस लेजिस्लेटिव के आंकड़ों के मुताबिक यह चौथा सबसे खराब सत्र था। आंकड़ों के मुताबिक 2010 का शीतकालीन सत्र प्रोडक्टिविटी के लिहाज से सबसे खराब सत्र रहा था। इसके बाद 2013 और 2016 के संसद सत्रों का नंबर आता है। संसदीय कार्यमंत्री अनंत कुमार के हवाले से मीडिया में आया था कि बजट सत्र के पहले चरण में लोकसभा में 134 फीसद और राज्यसभा में 96 फीसद प्रोडक्टिविटी रही। वहीं दूसरे चरण में लोकसभा की प्रोडक्टिविटी घटकर सिर्फ 4 फीसद और राज्यसभा की 8 फीसद पर आ गई। दोनों सदनों को इस स्थिति से उबारना होगा, सदन में संवाद और बहस चलती रहनी चाहिए। इसी में देश का भला है, राजनीतिक पार्टियों का भला है।

स्वच्छ भारत अभियान

स्वच्छ भारत अभियान हो या महानगर की सौंदर्यीकरण योजना, जब तक सरकारी विभाग और आमजनता पूरे समन्वय के साथ आगे नहीं आती, ऐसी योजनाओं के सौ प्रतिशत सफल होने का दावा नहीं किया जा सकता। सरकार का काम जहां योजनाओं को बनाना है, वहीं सरकारी विभागों को काम उन योजनाओं को धरातल पर उतारना और जनता-जनार्दन तक पहुंचाना है। सरकार, सरकारी विभाग और आमजनता की इच्छा शक्ति, कार्यान्वयन क्षमता और जन-जागरूकता को ऐसी योजनाओं की संजीवनी कहा जा सकता है। सरकारी विभाग की उदासीनता अथवा लापरवाही के कारण सरकार की किसी भी जनकल्याणमूलक योजना का सत्यानाश हो सकता है। वहीं बिन जनभागीदारी के वैसी योजनाएं परवान चढ़ने से पहले ही दम तोड़ सकती है। नरेंद्र मोदी के प्रधानमंत्री पद संभालते ही स्वच्छ भारत योजना की बड़े धूमधाम से शुरुआत की गई। इस योजना में देश के गणमान्य व्यक्ति, कलाकार, बुद्धिजीवियों को भी जोड़ा गया। शुरुआती दिनों में इस योजना का असर भी दिखा। साप्ताहिक छुट्टी अथवा सरकारी अवकाश के दिन लोग झाड़ू लेकर सार्वजनिक स्थानों की सफाई करने पहुंचने लगे। इस योजना में देशी-विदेशी कंपनियों के अलावा कारपोरेट घराने, गैर सरकारी समाजसेवी संगठनों ने भी बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। देखते ही देखते स्वच्छ भारत योजना की चर्चा विदेशों में भी होने लगी। मगर, आज के दिन महानगर में यह योजना किस रफ्तार से चल रही है अथवा योजना का हाल क्या है, इस पर नजर डालने की भी जरूरत है। इसमें कोई दो राय नहीं है कि इस योजना से युवा पीढ़ी में साफ-सफाई के प्रति जागरूकता बढ़ी है, लेकिन सरकारी विभागों में लगता है इस योजना को लेकर पहले जैसी तत्परता नहीं रही।

पुलिस थानों के सामने-पीछे दुर्घटनाग्रस्त अथवा जब्त किए गए वाहनों के

अंबार, सड़कों पर जहां-तहां बिखरा पड़ा कचरा अन्य सरकारी विभागों के धूल फांकते गलियारे, कमरे आदि को देखकर लगता है कि सरकारी बाबुओं का स्वच्छ भारत अभियान को लेकर जो जुनून था, वह सिर से उतर चुका है। पुलिस थानों के बाहर-अंदर लगे वाहनों के अंबारों को देखकर कोई भी आश्चर्य में पड़ सकता है। लाखों-करोड़ों रुपए के वाहन खुले में पड़े सड़ रहे हैं, लेकिन किसी को भी इस बात की चिंता नहीं है। उससे भी बड़ी बात यह है कि वाहनों के इन ढेर की वजह से पुलिस थानों की साफ-सफाई और सौंदर्यीकरण भी प्रभावित होता है। क्यों न बेहतर हो, इन वाहनों को एक ऐसे स्थान पर रखा जाए, जिससे धूप-ठंड-बरसात से वाहन खराब भी न हो और ये सुरक्षित भी रहे। महानगर के मुख्य सड़कों के किनारे लगे कचरे के ढेर जहां एक ओर गुवाहाटी नगर निगम की कार्यशैली पर सवाल खड़े करते हैं तो सड़क किनारे रखे डस्टबिन के बाहर पड़ा कचरा जनता की लापरवाही को भी दर्शाता है। कितनी अजीब बात है कि डस्टबिन के निकट तक आने के बाद भी लोग अपने घर को कचरे को बजाए डस्टबिन में डालें, इसके आस-पास ही डाल कर चले जाते हैं, वह भी तब जब डस्टबिन पूरी तरह से खाली होता है। गली-मोहल्लों के छोटे-छोटे रास्तों की चर्चा न करें तो बेहतर है। एक तो जल आपूर्ति के लिए पाइप बैठाने के नाम पर उन गलियों को वैसे ही खोद दिया गया है। जिन रास्तों की मरम्मत कर दी गई और जिनकी मरम्मत नहीं हुई, दोनों प्रकार के रास्तों की एक जैसी ही हालत है। मरम्मत के नाम पर की गई धांधली की वजह से वैसे रास्तों पर कीचड़ फैला हुआ है और जिनकी मरम्मत नहीं हुई, वैसे रास्तों की हालत तो पूछिए ही मत। महानगर के सार्वजनिक स्थलों के आस-पास भी अब पहले जैसी सफाई नहीं दिखती। महानगर के किसी भी व्यस्त इलाके या बाजार में चले जाएं, स्वच्छ भारत अभियान की पोल खोलती तस्वीरें आपको जरूर मिल जाएंगी। मेरा मकसद किसी को आरोपों के कटघरे में खड़ा करना नहीं है। स्वच्छ भारत अभियान की सफलता इस बात में निहित है कि हममें से हर एक व्यक्ति, संगठन अपनी-अपनी जिम्मेदारी समझें और उनका निर्वाह करें। कोई यह बात कतई न समझे कि मेरा काम दूसरा कोई कर देगा अथवा मैंने नहीं किया तो क्या फर्क पड़ता है। हमारी ऐसी सोच किसी भी जनकल्याणमूलक योजना को पटरी पर से उतार सकती है।

बोहाग बिहू पर नृत्यांगनाओं की व्यस्तता

बोहाग बिहू अर्थात बैशाख बिहू के आगमन का संदेश आते ही राज्यवासी उसके स्वागत में व्यस्त हो जाते हैं। ऐसे लोगों की भीड़ में बिहू नृत्य प्रतियोगिता अथवा मंच पर आयोजित कार्यक्रम में भाग लेने वाली युवतियों की भी व्यस्तता बढ़ जाती है। आधुनिकता के इस दौर में आज भी बिहू नृत्य अपनी परंपरागत पोशाक, अलंकार, वाद्य यंत्र और शृंगार सामग्री के दायरे में बंधा नजर आता है। यह एक स्वागतयोग्य बात हो सकती है। गांव-कस्बों की बात छोड़ ही दें, शहर-महानगर में भी बिहू नर्तक-नृत्यांगनाएं अपनी परंपरागत ताल-लय और गान पर ही थिरकती नजर आती है। बिहू के प्रति युवा पीढ़ी के इस आकर्षण को हमारी सांस्कृतिक डोर की मजबूती से भी जोड़ा जा सकता है। बिहू नृत्य के प्रति कॉरपोरेट संस्कृति में सरोबार युवा पीढ़ी का यह लगाव हमारे कला-संस्कृति के लिए सुखद भविष्य का संकेत कहा जा सकता है। फैशन के इस दौर में भले ही महानगर में परंपरागत पहनावा प्रभावित हुआ हो, मगर बोहाग बिहू से पूर्व ही महानगर की युवतियां मूगा चादर-मेखला की तलाश में जुट जाती है। यही वह वक्त होता है, जब घर में मां-दादी की अलमारियों को खंगाला जाता है। मेखला-चादर पर इस्त्री आदि कर पहनने के लिए चमकाया जाता है। इस अवधि में परंपरागत परिधानों की दुकानों में मेखला चादर, धोती-कुर्ते आदि की बिक्री भी काफी बढ़ जाती है। युवकों में भी परंपरागत परिधान पहनने की होड़ सी लग जाती है।

पहले ऐसा नहीं था। मेखला-चादर के लिए इतनी मेहनत नहीं करनी पड़ती

थी। घर में एक खोजो तो कई मिल जाया करते थे। महिलाएं बैशाख बिहू से पहले ही मेखला चादर की बुनाई के काम में लग जाया करती थीं। गांवों में तो एक प्रतियोगिता सी शुरू हो जाती थी कि कौन कितना चटक रंगदार-शानदार मेखला बनाती है। पहले की इस प्रतियोगिता का भी अपना एक मिजाज हुआ करता था। पहले मेखला चादर बनाकर पहनने की प्रतियोगिता हुआ करती थी, आज इस बात का दिखावा होता है कि कौन कितनी महंगी मेखला पहन सकती है। पहले महिला के स्वाभिमान से जुड़ी प्रतियोगिता हुआ करती थी, आज महिलाओं की संपन्नता के प्रदर्शन के लिए प्रतियोगिता चल निकली है।

असम में शायद ही कोई भी ऐसा व्यक्ति होगा, जिसे यह पता न हो कि कपौ फूल (आर्किड) के बिना किसी भी बिहू नृत्यांगना का शृंगार संपूर्ण नहीं होता। जुड़े में लटकता कपौ फूल न सिर्फ असमिया युवती को संपूर्ण सौंदर्य प्रदान करता है, बल्कि असम के लोक पर्वों के साथ प्रकृति के सदियों पुराने संबंधों की भी चुगली करता है। बड़ी तेजी से कंक्रीट के जंगल में तब्दील होते हमारे महानगर में अब पेड़ों पर लटकते कपौ फूल बड़ी मुश्किल से नजर आते हैं। कपौ फूल की इस किल्लत के कारण इसकी जगह प्लास्टिक से बने कपौ फूल ने ले ली है। उससे भी अधिक दुख की बात यह भी है कि प्लास्टिक के बने ऐसे अधिकांश कपौ फूल चीन से आते हैं।

इन सबके बीच बिहू नृत्य के प्रतियोगिता में बदल जाने की घटना समाज शास्त्रियों के लिए बहस का मुद्दा हो सकती है। कोई कह सकता है कि बिहू नृत्य हुँचरी, बिहू कुंवरी, बिहू सम्राज्ञी आदि प्रतियोगिता में सिमट गया है तो किसी की यह भी दलील हो सकती है कि इन प्रतियोगिताओं के माध्यम से बिहू को विश्व पटल तक पहुंचने का एक मार्ग मिल गया है। यह बिहू नृत्य ही तो है, जिसमें हमें असम के परंपरागत गहने देखने को मिल जाते हैं।

बिहू और बिहू नृत्य के प्रति युवाओं का यह आकर्षण हमें उम्मीद बंधाता है। कोई बिहू नृत्य-नर्तकों से जुड़े नकारात्मक पहलुओं को नजरअंदाज कर देने का भी मेरे पर आरोप लगा सकता है, लेकिन बिहू सकारात्मक सोच पर आधारित पर्व है तो फिर हम नकारात्मक बातें क्यों करें। क्यों न बैशाख बिहू और बिहू गान की तान पर थिरकने वाले युवक-युवतियों की टोलियों का इंतजार करें।

अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस की सार्थकता

'आधी दुनिया नारी है, अब नहीं यह बेचारी है' हर साल आठ मार्च को विश्व भर में मनाए जाने वाले अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस के मौके पर कुछ इसी तरह के नारे लगाए जाते हैं। विश्व भर के लोगों ने कल ही अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस मनाया है। इस दिन को विशेष रूप से मनाने का तात्पर्य महिलाओं को सशक्तिकरण करने के साथ ही विश्व के विकास में उनके योगदान को रेखांकित करना है। इसके अलावा महिलाओं के विकास से जुड़े पहलुओं की पहचान कर, उन पर गहन विचार-विमर्श कर उनको कार्यान्वयन करना भी अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस के उदेश्यों में शामिल समझा जा सकता है। विश्व के अन्य देशों की बात छोड़ भी दें तो हमारे ही देश में महिलाओं की अलग-अलग स्थिति नजर आती है। मेघालय जैसे प्रदेश की पूरी सामाजिक व्यवस्था जहां महिला प्रधान है, वहीं हरियाणा-राजस्थान में महिलाओं को आज भी बराबरी का दर्जा हासिल नहीं है। इन प्रदेशों में असंतुलित लिंग अनुपात सामाजिक चिंता का कारण बना हुआ है। महिलाओं को पुरुषों के बराबरी का अधिकार मिले, विभिन्न मंचों पर यह बात

पिछले कई दशकों से उठती रही है। भारत भले ही कितना भी विकास कर ले, विश्व पटल पर भारत की छवि में चाहे कितना ही निखार आया हो, लेकिन महिलाओं की स्थिति आज भी पूरी तरह से सुधरी नहीं है। एक तरफ देश की रक्षा मंत्री, विदेश मंत्री जैसे महत्वपूर्ण पदों को महिलाएं सुशोभित कर रही है। वहीं दूसरी ओर युवतियों पर एसिड हमला और राह चलती युवती-महिलाओं के साथ छेड़छाड़ की बढ़ती घटना पूरे समाज और देश की कानून व्यवस्था के समक्ष गंभीर सवाल खड़े करती है। इसके अलावा महिला भ्रूण हत्या जैसी समस्या ने तो पूरे भारतीय समाज के ही संतुलन को बिगाड़कर रख दिया है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी द्वारा शुरू की गई 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' योजना ही इस पूरी समस्या को संक्षेप में रेखांकित करने के लिए काफी है। जब देश के प्रधानमंत्री ही देशवासियों से बेटियों को बचाने की अपील कर रहे हैं तो यह मान लेना चाहिए कि कुछ राज्यों में भयावह रूप धारण कर चुकी महिला भ्रूण हत्या जैसी समस्या अब राष्ट्रीय चिंता का कारण बन चुकी है।

मेरे कहने का मतलब यह कतई नहीं है कि हमारी देश की बेटियां बेचारी है और उन्होंने खुद विकास नहीं किया है। पढ़ी-लिखी भारतीय युवतियों को आज हर क्षेत्र में महत्वपूर्ण पदों पर देखा जा सकता है। भारतीय सेना के तीनों अंगों के अलावा अर्द्धसैनिक बलों में महिलाएं अपनी सफलता के परचम फहराने में लगी है। शिक्षा जगत हो अथवा वित्त, स्वास्थ्य, कारोबार अथवा सेवा जगत। देश में कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं है जहां महिलाओं का बोलबाला न हो। लेकिन सिक्के का दूसरा पहलू इससे विपरीत है। ग्रामीण भारत या कम साक्षरता दर वाले राज्यों में महिलाओं को आज भी उनके मूलभूत अधिकार हासिल नहीं है। शौच करने के लिए जंगल में जाने को मजबूर महिलाओं की स्थिति को हम कैसे नजरअंदाज कर सकते हैं। बुनियादी संसाधनों की कमी की वजह से ग्रामीण भारत की युवतियां आज भी अपनी पढ़ाई पूरी नहीं कर पाती। कुछ युवतियों को गांव में स्कूल न होने के कारण पढ़ाई छोड़नी पड़ती है तो कुछ युवतियों की बालपन में शादी कर दिए जाने के कारण अपनी आगे की पढ़ाई नहीं कर पातीं। शहरी महिला और ग्रामीण महिला के बीच बढ़ती खाई को पाटे बिना हम अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस की सार्थकता को प्राप्त नहीं कर सकते।

इस पर गंभीरता से चिंतन किए जाने की जरूरत है कि देश स्वाधीन होने के इतने साल बाद भी हमारे यहां दहेज प्रथा, बाल विवाह प्रथा जैसी कुरीतियां पूरी तरह से खत्म नहीं हो पाई है। देश का दिल कहे जाने वाले दिल्ली में बढ़ते महिला अपराध पूरी कानून व्यवस्था को ही कटघरे में खड़ा करते हैं। जब दिल्ली में ही महिलाएं सुरक्षित नहीं है तो देश के अन्य हिस्सों में महिलाओं की स्थिति कैसी होगी, इसका आसानी से अनुमान लगाया जा सकता है। हम चाहे तो अपने घर से ही इस महिला आंदोलन की शुरुआत कर सकते हैं। हमें सिर्फ इतना सा भर करना है कि हम अपने घर के बेटे-बेटियों में भेद करना छोड़ दें। बेटों की तरह बेटियों को भी खुला आकाश दे, पूरी आजादी दें। बेटों के बराबर आगे बढ़ने का मौका दें तो हमारे देश में महिलाओं को विकास की धारा में शामिल होने का मौका मिल सकता है। ऐसा कर हम सिर्फ अपने परिवार का भी भला नहीं करेंगे, समाज और देश का भी भला करेंगे। अब फैसला आप को ही करना है, क्योंकि आपके फैसले पर ही टिकी है अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस की सार्थकता।

त्यौहारों का देश है भारत

भारत त्यौहारों का देश है। कहा जाता है, यहां 12 महीनों में 13 त्यौहार आते हैं। विभिन्न जाति-धर्म-संप्रदाय के अलग-अलग त्यौहार, अलग-अलग रीति-रिवाज है। सभी लोग आपस में मिलजुल कर त्यौहार मनाते हैं। हिंदू ईद पर मुसलमान भाइयों के गले लगते हैं, तो इस्लामधर्मी दीपावली पर अपने हिंदू मित्रों को शुभकामनाएं देते हैं। दो धर्म के लोगों के बीच ऐसे आपसी प्रेम और भाईचारे की मिशाल दुनिया के अन्य किसी देश में देखने को नहीं मिलती। कहते हैं, बिना राम के रमजान और बिना अली के दिवाली शब्द ही अधूरा है। 'विविधता में एकता' की यही डोर है जो पूरे भारत को आज भी पूरी मजबूती के साथ बांधे हुए हैं। बीच-बीच में अमन के दुश्मनों द्वारा इस भाईचारे-सद्भावना को तोड़ने की कोशिशें भी होती है, मगर 'कुछ बात है कि हस्ती मिटनी नहीं हमारी, सदियों रहा है दुश्मन, दौर-ए-जमां हमारा' हमारे देश में सदियों से त्यौहार मनाने-पालन करने का प्रचलन रहा है।

त्यौहारों की महक कहें या आकर्षण, पूरे देशवासियों को एक-दूसरे के करीब लाने का काम करती है। यह भी कहा जाता है कि इंसान के मन की शांति

और तन को प्रफुल्लित रखने में इन त्यौहारों का खासा महत्व है। पवित्र रमजान हमें तन की शुद्धि के साथ-साथ विचारों की पवित्रता का भी पैगाम देता है। रमजान के महीने में रोजा रखने के चलन के पीछे तंदरूस्ती का भी संदेश छिपा है। इसके अलावा सामाजिक सद्भावना और अनुशासन को बनाए रखने में भी इन त्यौहारों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। हमारे देश में पूजा-उपासना, प्रार्थना-इबादत करने के तरीकेजिस तरह से अलग-अलग है, उसी तरह त्यौहारों के मौके पर खुशियों को प्रकट करने के तरीके भी भिन्न है। हमारे कुछ त्यौहार सामाजिक तौर पर सार्वजनिक रूप से मनाए जाते हैं, तो कई त्यौहार का पालन पारिवारिक रूप से किया जाता है। इन अलग-अलग व्यवस्थाओं की भी अलग-अलग व्याख्या हो सकती है। दुर्गा पूजा, ईद, क्रिसमस का त्यौहार जिस तरह से सामाजिक रूप से मनाया जाता है, ठीक उसी तरह करवा चौथ, रक्षाबंधन आदि पर्व पारिवारिक रूप से मनाए जाते हैं। पारिवारिक रूप से मनाए जाने वाले पर्वों के पीछे तर्क है कि इससे न सिर्फ पारिवारिक संबंधों को मजबूती मिलती है, बल्कि परिवार की बुनियाद भी सुदृढ़ होती है। लेकिन बदलते दौर और युवाओं की आधुनिक सोच ने हमारे देश के त्यौहारों को भी कम प्रभावित नहीं किया है। आज की पीढ़ी के लिए त्यौहार-पर्व का मतबल पूरे दिन की छुट्टी और मौज-मस्ती भर रह गया है। रही-सही कसर उन्मुक्त बाजार और बहुराष्ट्रीय कंपनियों के उत्पादों ने पूरी कर दी है।

भारतीय त्यौहार के बदलते स्वरूप और युवाओं की कम होती भागीदारी पर समाजशास्त्रियों के सोचने का वक्त आ गया है। संयुक्त परिवार रहे नहीं। फ्लैट संस्कृति के चक्कर में घर-चौपाल, चौबारे-आंगन न जाने पीछे कहां छूट गए। आपा-धापी के इस दौर में त्यौहारों का दायरा वैसे ही काफी सिकुड़ गया है। इसके बाद भी हम यदि त्यौहार को त्यौहारों की तरह नहीं मना पाते हैं तो एक दिन हमारे त्यौहार किताबों में कैद होकर रह जाएंगे। वैसे भी महानगर के युवा असम के बहुत से प्राचीन, लोकप्रिय त्यौहारों के बारे में नहीं जानते। चरख पूजा, अशोकाष्टमी जैसे पर्व-त्यौहार आज विलीन होने के कगार पर है।

अब अगले महीने आने वाली होली को ही ले लें। होली के साथ भगवान श्रीकृष्ण का नाम भी जुड़ा है। वृंदावन में श्रीकृष्ण अपनी गोपियों के साथ होली

खेला करते थे, लेकिन यह बात आज के कितने युवाओं को पता है। आज के युवाओं के लिए होली का मतलब चीन से आयातित रंग-गुलाल और रेन-डांस तक सीमित होकर रह गया है। पहले वसंतोत्सव का आरंभ माघ महीने के शुक्ल पक्ष की पंचमी (वसंत पंचमी) से हो जाता था। इस दिन को नवीन ऋतु के आगमन का सूचक माना गया है। इसी दिन पहली बार गुलाल उड़ाया जाता था और होली और धमाल का गाना प्रारंभ हो जाता था। हमारे बहुत से कम युवाओं को ही पता होगा कि वसंत पंचमी का उत्सव मदनोत्सव के रूप में भी मनाया जाता है। त्यौहार के बदलते स्वरूप का असर हमारे समाज, पर्यावरण पर भी पड़ता दिख रहा है। इस बार पहली बार देखने को मिला, जब सर्वोच्च न्यायालय ने दीपावली के मौके पर पटाखों-आतिशबाजी पर रोक लगाने के आदेश दिए। जब त्यौहार के कारण सामाजिक शांति और समरसता पर संकट के बादल मंडराने लगे तो इस पर फिर से विचार किए जाने की आवश्यकता है।

महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव

जब देश में हुमायूँ और शेरशाह का शासन चल रहा था, उस समय देश के अलग-अलग प्रांतों में हिंदू और सूफी धर्म के विभिन्न संप्रदायों का जन्म हो रहा था। जिस दौर में सूरदास, कबीरदास, तुलसीदास, गुरु नानक, चैतन्य, रामानंद आदि महापुरुष अपने-अपने धार्मिक विचारों का प्रचार-प्रसार करने में लगे थे, उस काल खंड में असम की पावन धरा पर श्रीमंत शंकरदेव ने अवतार लिया। श्रीमंत शंकरदेव का जन्म वर्ष 1449 में नगांव जिले के आलिपुखरी नामक एक छोटे से गांव में हुआ था। भगवान शिव से पुत्र प्राप्ति के वरदान बाद घर में बालक के पैदा होने पर उसके पिता कुसुंबर शिरोमणि भुइयां और मां सत्यसंध्या ने अपने बेटे का नाम शंकर रखा। जन्म के कुछ समय बाद ही शंकर के माता-पिता का देहांत हो गया, जिसके कारण शंकर का पालन-पोषण दादी खेरसुती ने किया। बड़ी तेज बुद्धि के होने के कारण अपने गुरु महेंद्र कांदली की संस्कृतिक टोल में शंकर ने बचपन से ही व्याकरण, रामायण, महाभारत, पुराण-वेद, ज्योतिष आदि विद्याओं का अध्ययन पूरा कर लिया। 32 वर्ष की अल्पायु में ही शंकर देशाटन के लिए निकल पड़े। करीब 12 साल के गंगाघाट, गया, वृंदावन, गोकुल,

मथुरा, सीताकुंड, बद्रिकाश्रम आदि भ्रमण के दौरान उनका देश के कई अन्य महापुरुषों से भी मिलना हुआ। दूसरी बार उन्होंने दक्षिण भारत के संतों से भेंट की और धर्म के सच्चे स्वरूप का अध्ययन किया। बाद में असम लौटकर उन्होंने एकशरण नाम धर्म की स्थापना की। इसे केवलीया या महापुरुषीया धर्म भी कहते हैं। उन्होंने मूर्ति पूजा के बदले भगवान के नाम को अधिक महत्व दिया। इसलिए नामघरों में मूर्तिपूजा नहीं होती। उन्होंने भाओना अर्थात पौराणिक नाटकों के अभिनय तथा नृत्य-संगीत के द्वारा धर्म प्रचार किया और अनेक पुस्तकों की रचना की।

श्रीमंत शंकरदेव ने असम के लोगों को अशिक्षा और अंधविश्वास से दूर रहने की शिक्षा दी और ज्ञान का सच्चा स्वरूप दिखाया। आज भी यहां के नामघरों में मणिकूट (गुरु आसन) पर उनके लिखे कीर्तन-घोषा- श्रीमद्भागवत की प्रति रखी जाती है। श्रीमंत शंकरदेव को आज भी असम के अब तक का सर्वश्रेष्ठ पुरुष कहा जाता है। साहित्य के क्षेत्र में उनका कोई मुकाबला नहीं कर पाया है। उनकी रचनाओं पर आधारित कई एकांकी नाटक और बाद में पूर्णांग नाटक आज भी राज्य भर में मंचित किए जाते हैं। उन्होंने न सिर्फ असमिया संस्कृति को समृद्धि किया, बल्कि वैष्ण धर्म का प्रचार-प्रसार कर राज्यवासियों को एक दिशा प्रदान की। उनके लिए सभी धर्म, संप्रदाय, वर्ग-वर्ण के लोग एक बराबर थे। यही कारण है कि असम के सभी जाति-धर्म के लोग श्रीमंत शंकरदेव की पूजा करते हैं। उन्होंने विभिन्न संप्रदाय के लोगों के बीच आपसी प्रेम-भाईचारे की डोर को मजबूत कर एक समृद्धि-सबल असमिया समाज का गठन किया। विभिन्न जाति-जनजाति, धर्म-संप्रदाय के लोगों के बीच समन्वय की स्थापना करने वाले श्रीमंत शंकरदेव की धार्मिक दृष्टिभंगी के साथ-साथ आर्थिक नजरिया भी औरों से भिन्न था। उन्होंने राज्य में स्थित नामघर (मंदिर) के आसपास तलाब खोदने के साथ-साथ खेती करने का भी उपदेश दिया था। इसके अलावा सब्जियां उगाने के लिए उन्होंने लोगों से बाग-बगीचे लगाने को भी कहा। घर में ही खाने-पीने की पर्याप्त सुविधा रहने के कारण ही संभवत: उनके भक्तगण आर्थिक रूप से सबल थे। श्रीमंत शंकरदेव को इस बात का अच्छी तरह से ज्ञान था कि दिन

भर कड़ी मेहनत करने वाला इंसान शारीरिक एवं मानसिक रूप से भी स्वस्थ रहता है। सिर्फ यही नहीं, एक इंसान तभी समाज गठन प्रक्रिया में सक्रिय रूप से शामिल हो सकता है, जब वह आर्थिक रूप से मजबूत हो। शानदार-रोगमुक्त और सुखमय जीवन जीने के लिए जीवन में अनुशासन का होना बहुत जरूरी है। बिना अनुशासन के स्वस्थ जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। श्रीमंत शंकरदेव ने यही बात अपने भक्तों को समझाई और उनको एक अनुशासित जीवन जीने को प्रेरित किया। मनुष्य का मन और तन स्वस्थ हो, तभी भगवान की भक्ति में उसका मन लगेगा। यह बात नाम-प्रसंग के मामले में भी देखने को मिलती है। नामघरों में गाए जाने वाली कीर्तन सभी के लिए लय-ताल, मान-छंद आदि तय है। उनको पता था कि ताली बजाने से शरीर का रक्त संचार स्वाभाविक होता है और इस वजह से कई बीमारियां भी दूर रहती है। यही सब कारण है कि आज भी असमवासी श्रीमंत शंकरदेव को भगवान का अवतार मानते हैं। इसीलिए कहा गया है-

'श्रीमंत शंकर होरी भोकोटोरो
जाना जेनो कल्पोतरु
ताहांतो बिनाई नाई नाई नाई
आमारो पोरोमो गुरु'।

अर्थात श्रीमंत शंकर गुरु अपने भक्तों के लिए कल्पतरु वृक्ष की तरह सब कुछ प्रदान कर सकते हैं। इसीलिए भक्तों का मानना है कि उनके अलावा और कोई दूजा गुरु नहीं हो सकता है।

वैश्विक निवेशक सम्मेलन के मायने

असम की पहचान कल तक हत्या-हिंसा, उग्रवाद और असम बंद के पर्याय के रूप में हुआ करती थी। वह भी दौर था, जब व्यापारी-उद्योगपति असम छोड़ कर अन्य राज्यों का रुख कर रहे थे। राज्य का औद्योगिक विकास ठप पड़ गया था, लेकिन अब हालात बदलने लगे हैं। असम को देश के विकास का इंजन और असम सहित पूर्वोत्तर को देश की अष्टलक्ष्मी कहा जाने लगा है। बिना गुवाहाटी के आसियान देशों के साथ व्यापारिक-सामाजिक और सांस्कृतिक संबंधों को मजबूत बनाने की कल्पना तक नहीं की जा सकती। देश के सभी कॉरपोरेट घरानों के अलावा विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियों की नजर में असम प्रचुर संभावनाओं से भरपूर और निवेश के अनुकूल स्थान है। पतंजलि, महेंद्रा एंड महेंद्रा और इमामी जैसी कंपनियां पहले से ही असम में हजारों करोड़ों रुपए का निवेश कर चुकी है। सरुसजाई स्टेडियम में विगत 3-4 फरवरी 2018 को आयोजित 'वैश्विक निवेशक सम्मेलन-एडवांटेज असम' में उमड़ी देश-विदेश के नामी उद्योगपति और कॉरपोरेट घरानों की उपस्थिति बदलते असम की छवि को

प्रस्फुटित करने के लिए काफी है। एडवांटेज असम में पहली बार राज्य में आयोजित दो दिवसीय एडवांटेज असम-वैश्विक निवेशक सम्मेलन में करीब एक लाख करोड़ रुपए के निवेश के लिए करीब 200 समझौते हुए। यह सम्मलेन कई मायने में महत्वपूर्ण रहा। राज्य के उद्योग व वाणिज्य मंत्री चंद्रमोहन पटवारी के कहे अनुसार इस सम्मेलन में देश-विदेश के निवेशकों के आने से राज्य में निवेश करने लायक एक नया माहौल बना है।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने एडवांटेज असम का उद्घाटन किया और पड़ोसी देश भूटान के प्रधानमंत्री ने इसमें बड़ी ही सक्रियता के साथ भाग लिया। भारत और भूटान के प्रधानमंत्रियों के एक ही मंच साझा करने से जहां एक ओर निवेश की नई संभावनाएं बनी है, वहीं दूसरी ओर असम-भूटान संबंध को नई दिशा मिली है। इस सम्मेलन में भारतीय उद्यमियों के अलावा ऑस्ट्रेलिया, बांग्लादेश, भूटान, कनाडा, कंबोडिया, जर्मनी, हांगकांग, इजरायल, इटली, इंडोनेशिया, जापान, दक्षिण कोरिया, लाओस, म्यांमार, नीदरलैंड, नेपाल, सिंगापुर, थाइलैंड, यूएई, यूके, यूएसए, वियतनाम आदि के प्रतिनिधियों ने न सिर्फ भाग लिया, बल्कि राज्य सरकार के अधिकारियों के साथ विनिवेश संबंधी विभिन्न मुद्दों पर गंभीरता के साथ विचार-विमर्श भी किया। केंद्रीय मंत्री सुरेश प्रभु, रविशंकर प्रसाद, धर्मेंद्र प्रधान, अश्विनी चौबे सहित अरुणाचल के मुख्यमंत्री पेमा खांडू और मणिपुर के मुख्यमंत्री बीरेन सिंह की भागीदारी इस दो दिवसीय सम्मेलन के महत्व को रेखांकित करने के लिए काफी है।

'वैश्विक निवेशक सम्मेलन-एडवांटेज असम' को आने वाले असम के भविष्य का रोडमैप अथवा ब्लूप्रिंट भी कहा जा सकता है। नमामी ब्रह्मपुत्र और नमामी बराक के बाद राज्य सरकार का यह तीसरा आयोजन है, जिसमें सरकार की दूरदर्शिता और गंभीरता दोनों की ही झलक मिलती है। नमामी ब्रह्मपुत्र उत्सव से जहां ब्रह्मपुत्र की खुदाई, खुदाई के दौरान निकलने वाली गाद से ब्रह्मपुत्र के किनारे एक्सप्रेस हाई बनाने, ब्रह्मपुत्र को राष्ट्रीय जल परिवहन मार्ग घोषित करने और ब्रह्मपुत्र पर रो-रो सेवा शुरू किए जाने संबंधी मसलों पर विचार-विमर्श होने के साथ ही इसके क्रियान्वयन को लेकर चर्चाएं की गई। वहीं 'वैश्विक निवेशक सम्मेलन-एडवांटेज असम' में आने वाले असम की संभावनाएं,

समस्याएं और चुनौतियों को रेखांकित किया गया। इस बात को दोहराने की आवश्यकता नहीं है कि जब राज्य में एक लाख रुपए का निवेश आएगा तो अपने साथ ढेर सारे रोजगार और नौकरियां भी लेकर आएगा। यहां के युवाओं को उनकी योग्यता अनुसार नौकरियां मिलेगी और इसके साथ ही इस जगह पर उद्योग-कल-कारखाने लगेंगे, इस क्षेत्र का भी विकास होगा। वहां रोजगार-व्यापार के मौके बढ़ेंगे। संचार और सड़क व्यवस्था में भी सुधार होगा। राज्य के बेरोजगार युवाओं के लिए 'वैश्विक निवेशक सम्मेलन-एडवांटेज असम' की सफलता कई मायने में महत्वपूर्ण है। इससे पहले राज्य के पढ़े-लिखे युवाओं को रोजगार-नौकरियों के लिए बाहरी राज्यों का रूख करना पड़ता था, क्योंकि उनकी योग्यता अथवा कौशलता के अनुसार राज्य में नौकरियां-अवसर नहीं थे। अब यह स्थिति बदलेगी, राज्य में बड़े-बड़े उद्योग, कल-कारखाने आदि लगने से सभी प्रकार की नौकरियों के अवसर पैदा होंगे। राज्य में ऐसा माहौल बने, युवाओं को रोजगार-नौकरियां मिले, इसके लिए सभी को एकजुट होकर काम करना होगा। राज्य को बंद संस्कृति से पूरी तरह से मुक्त करना होगा और बाहरी निवेशकों को यह विश्वास दिलाना होगा कि असम में किया गया निवेश न सिर्फ सुरक्षित है बल्कि फायदेमंद भी है।

एक साथ हो केंद्र-राज्य के चुनाव

भारतीय लोकतंत्र व्यवस्था में चुनाव का बहुत महत्व है। केंद्र सरकार से लेकर गांव पंचायत तक के गठन में चुनाव की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। भारत जैसे विशाल देश की 125 करोड़ की आबादी को एक सूत्र में और अनुशासन में बांधकर रखने में चुनावों ने उल्लेखनीय भूमिका निभाई है। ये चुनाव प्रजा को राजा होने के अधिकार प्रदान करता है। चुनाव के ही दम पर देश के मतदाता मजबूत से मजबूत सत्ताधारी दल को चुटकियों में उखाड़ फेंकने में कामयाब हो जाते हैं। विश्व के सबसे बड़े लोकतांत्रिक देश की चुनाव प्रक्रिया को बड़े ही सम्मान व विश्वास के साथ देखा जाता है। एक तरह से यदि देखा जाए तो पूरे साल भर देश के किसी न किसी हिस्से में चुनावी प्रक्रिया चलती रहती है। सभी राज्यों में, विशेष परिस्थितियों को छोड़कर, पांच साल के अंतराल पर अलग-अलग समय पर चुनाव होते हैं। इसके अलावा एक ही समय में देश भर में कई चरणों में लोकसभा के चुनाव संपन्न कराए जाते हैं। भारतीय चुनाव आयोग और प्रदेश चुनाव आयोग पूरे साल भर इन चुनावों की तैयारियों में लगे रहते हैं। चुनाव पूर्व मतदाता सूची को तैयार करना

भी कम बड़ी चुनौती नहीं है। इस सूची में नए मतदाताओं के नाम जोड़ने होते हैं, मृत मतदाताओं के नाम हटाने होते हैं। इसके अलावा जो मतदाता अपना निवास छोड़कर देश के किसी अन्य हिस्से में रहने अथवा नौकरी करने के लिए चले गए हैं, उनके नाम का एक स्थान से दूसरी जगह स्थानांतरण करना कोई कम बड़ी व जटिल कवायद नहीं है। इस पूरी प्रक्रिया में न सिर्फ बड़ी संख्या में मानव संपदा को काम में लगना पड़ता है, बल्कि हजारों करोड़ों रुपए खर्च भी होते हैं। चुनाव के दौरान कानून व्यवस्था दुरूस्त रखना और शांति व्यवस्था को बनाए रखना भी एक बड़ा मुद्दा होता है, लिहाजा देश के हजारों-लाखों अर्द्धसैनिकों को पूरे साल भर में इसी काम के लिए देश के एक हिस्से से दूसरे हिस्से की यात्रा करनी पड़ती है। ऐसी स्थिति में देश के विकास की गति प्रभावित होती है और हजारों करोड़ों रुपए की अनावश्यक धनराशि भी खर्च होती है।

देश को इस स्थिति से निजात दिलाने के लिए प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने देश में लोकसभा व राज्यों के विधानसभा के चुनाव एक साथ कराए जाने का विचार देश की सभी राजनीतिक पार्टी व जनता के बीच रखा है। प्रधानमंत्री ने कहा है कि सभी राजनीतिक दलों की सहमति के बाद ही इस दिशा में आगे बढ़ा जा सकता है। उन्होंने कहा कि देश में राज्य व केंद्र सरकार के एक साथ चुनाव होने से न सिर्फ विकास को गति मिलेगी, बल्कि हजारों करोड़ रुपए भी बचाए जा सकेंगे। उनकी दलील है कि चुनाव के नाम पर सरकार, राजनीतिक पार्टियां और चुनाव आयोग पूरे साल भर व्यस्त रहता है। इससे सरकार का एक अच्छा खासा समय चुनावी गतिविधियों में ही खत्म हो जाता है। अन्य राजनीतिक दल भी साल भर चुनावी कार्य में ही उलझे रहते हैं। इसके कारण विपक्षी दल अपनी भूमिका का पूरी मजबूती व सार्थकता के साथ पालन नहीं कर पाते हैं, जबकि लोकतंत्र में विपक्ष की भूमिका को सबसे महत्वपूर्ण माना गया है। चुनाव के कारण देश के किसी न किसी हिस्से में चुनावी आचार संहिता लागू होने के कारण उस क्षेत्र का विकास कुछ समय के लिए रुक जाता है और उतने समय के लिए वहां की सरकार की कठपुतली सरकार बनकर रह जाती है। प्रधानमंत्री ने सुझाया है कि देश भर में एक समय में चुनाव कराकर

इस पूरी कवायद को काफी हद तक कम किया जा सकता है। इसको लेकर कुछ शंकाए भी प्रकट की जा रही है। मसलन किसी राज्य में पांच साल से पहले ही वहां की सरकार गिर गई तो फिर क्या होगा और इस नई चुनाव व्यवस्था का गठबंधन की राजनीति पर क्या असर पड़ेगा। देश में ऐसे अनेको उदहारण हैं कि राष्ट्रीय राजनीतिक पटल पर एक-दूसरे के साथ गठबंधन करने वाली पार्टियां अपने-अपने राज्यों में एक-दूसरे के खिलाफ चुनाव लड़ती है। ऐसे में केंद्र व राज्य के चुनाव एक ही वक्त पर होने लगे तो ऐसी पार्टियों के सामने अपने आदर्श व सम्मान बचाने का संकट पैदा हो सकता है। समय के अंतराल पर ऐसे गठबंधन जितनी आसानी से हो सकते हैं, एक ही वक्त पर उतनी आसानी से यह संभव नहीं है। मान लीजिए लोकसभा का चुनाव कांग्रेस, वामपंथी दल और तृणमूल कांग्रेस एक साथ मिलकर लड़ते हैं तो ठीक उसी समय तीनों दल पश्चिम बंगाल में एक-दूसरे के खिलाफ विधानसभा का चुनाव कैसे लड़ सकते हैं। ऐसी स्थिति में प्रधानमंत्री के इस विचार पर मंथन तो कम से कम किया ही जा सकता है।

गणतंत्र दिवस के मायने

देश 69वां गणतंत्र दिवस मन रहा है। दस आसियान देशों के प्रमुखों को इस साल गणतंत्र दिवस समारोह में विशेष अतिथि के रूप में आमंत्रित किया गया है। पूरे देश में गणतंत्र दिवस का हर्षोल्लास छाया हुआ है। ऐसे क्षण में यह पूछना तो हक बनता ही है कि पूर्वोत्तर के युवाओं के लिए गणतंत्र दिवस के क्या मायने हैं। पूर्वोत्तर के अलगाववादी संगठनों द्वारा गणतंत्र दिवस-स्वाधीनता दिवस जैसे राष्ट्रीय दिवसों के बहिस्कार की घोषणाओं को सुनते-सुनते एक पीढ़ी जवानी की दहलीज को कब पार कर गई पता ही नहीं चला। असम के लोगों के लिए गणतंत्र दिवस-स्वाधीनता दिवस का मतलब ही है असम बंद का आह्वान। एक समय ऐसा भी था, जब ऐसे राष्ट्रीय दिवस के मौके पर पूरे राज्य में कर्फ्यू जैसे हालात पैदा कर दिए जाते थे। रेल सेवा बंद और राष्ट्रीय राजमार्ग बिल्कुल सूने नजर आते थे। 26 जनवरी और 15 अगस्त पूरे पूर्वोत्तर के उग्रवादी संगठन एक साथ मिलकर बंद की अपील करते थे। कहने को तो यह एक अपील होती थी, मगर हकीकत में आतंकवादियों के किसी आदेश से कम नहीं होता था।

आतंकवादी संगठन अल्फा द्वारा वर्ष 2004 में धेमाजी में चल रहे स्वतंत्रता दिवस के कार्यक्रम के दौरान किए गए बम विस्फोट में 18 लोग मारे गए और कई घायल हो गए थे। मारे गए लोगों में ज्यादातर स्कूली बच्चे एवं उनकी मां थीं। अल्फा लगातार कई वर्षों तक इस घटना में उसका हाथ होने की बात से इंकार करता रहा। आखिरकार करीब 11 साल बाद 26 दिसंबर, 2015 को अल्फा के महासचिव अनूप चेतिया ने इस घटना को अल्फा की सबसे बड़ी गलती मानते हुए माफी मांगी। ऐसी स्थिति में यह कल्पना करना भी बेमानी होगी कि असम में राष्ट्रीय दिवस समारोह पूर्वक मनाए जाए। आम जनता ने भी मारे डर के अपने घरों में तिरंगा फहराना बंद कर दिया था। सरकारी इमारत-संस्थानों में भी बंदूक की संगीनों के साये के बीच तिरंगा फहराया जाता था। इस तरह एक पूरी की पूरी पीढ़ी जान ही नहीं पाई कि स्वतंत्रता दिवस-गणतंत्र दिवस समारोह पूर्वक मनाए जाने चाहिए। इस पीढ़ी ने तो सिर्फ बंद, बम, आतंक और विस्फोट ही देखा। स्वाधीनता-गणतंत्र दिवस के दिन पूरी सड़कों पर सिर्फ पुलिस-सीआरपीएफ के जवान ही नजर आते थे। इस मौके पर एक ओर जहां आतंकवादी अपनी उपस्थिति और ताकत का अहसास कराने के लिए जगह-जगह बम विस्फोट करने की फिराक में रहते थे, वहीं पुलिस-सुरक्षा बल के जवान आतंकियों के नापाक इरादों को नाकाम बनाने के लिए अपनी जान लगा देते थे। पूर्वोत्तर का मुख्यद्वार कहे जाने वाले गुवाहाटी को अभेद्य किले में तब्दील कर दिया जाता था। हर गली-चौराहे पर पुलिस-सीआरपीएफ का पहरा होता था और महानगर तक आने-जाने वाली हर सड़क पर सुरक्षा बलों का नाका। कई दशकों तक यही स्थिति बनी रही। युवा पीढ़ी तो तिरंगा फहराना ही भूल गई।

असम सहित पूर्वोत्तर को ऐसी देश विरोधी स्थिति से निकालने के लिए हर एक सरकार ने अपनी ओर से हर संभव कोशिश की। कई सरकारें इसमें सफल रही तो कई सरकारें आरोपों के घेरे में। इतना कुछ होने के बावजूद असम के युवाओं ने कभी भी खुद को राष्ट्र प्रेम की धारा से अलग नहीं किया, खुद को हमेशा भारतीय ही कहा। इस दौर में असम को जो नुकसान उठाना पड़ा, उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। ऐसी विषम परिस्थितियों में जो युवक एक बार असम छोड़कर बाहरी राज्यों में गया, वहीं का होकर रह गया।

वापस अपने घर लौट कर नहीं आया। अब स्थितियां बदलने लगी हैं। आतंकी गतिविधियां सिर्फ तिनसुकिया जिले में ही सिमट कर रह गई है। अल्फा का एक धड़ा वार्ता की मेज पर है। युवाओं में जोश हिलौरे मार रहा है। उग्रवादी संगठन आज भी स्वाधीनता दिवस–गणतंत्र दिवस पर असम बंद का आह्वान करते हैं, मगर आज उनकी सुनने वाला कोई नहीं है। ऐसे राष्ट्रीय पर्व पर गुवाहाटी सहित पूरे असम में जश्न का माहौल रहता है। तिरंगा लिए युवाओं की टोलियां सड़कों पर दौड़ती–भागती नजर आती है। लोग बेखौफ होकर अपने घरों में तिरंगा फहराते हैं और सार्वजनिक स्थलों पर भी तिरंगा लहर–लहर लहराता है, बिना संगीन के सायों के। अब असम के युवाओं को भी समझ में आने लगा है, क्या होते हैं गणतंत्र दिवस के मायने।

स्वच्छ गुवाहाटी

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी द्वारा देश भर में छेड़े गए स्वच्छता अभियान का असर अब दिखने लगा है। नागरिकों में साफ-सफाई के प्रति जागरूकता बढ़ी है और बाजार में डस्टबिन-झाड़ू आदि की भी बिक्री बढ़ने लगी है। युवा खासकर स्कूली बच्चों में साफ-सफाई और स्वच्छता को लेकर गजब की जागरूकता देखने को मिल रही है। खाने से पहले हाथ धोने और कचरा फेंकने के लिए डस्टबिन का उपयोग करने वाले लोगों की संख्या में भी बेतहाशा वृद्धि देखी जा रही है। प्रधानमंत्री के स्वच्छता अभियान का असर गुवाहाटी में भी देखा जा रहा है। गुवाहाटी पहले की अपेक्षा अधिक स्वच्छ और साफ-सुथरी नजर आने लगी है। इस साफ-सफाई के लिए गुवाहाटी नगर निगम के मेयर मृगेन शरणिया का विशेष रूप से जिक्र किया जाना चाहिए। ऐसी बात नहीं है कि श्री शरणिया से पहले के मेयर सभी ने इस दिशा में काम नहीं किया, मगर श्री शरणिया अपना पदभार संभालने के बाद ही स्वच्छता अभियान में जुट गए थे।

गुवाहाटी नगर निगम के मेयर के विशेष प्रयासों से विभागीय सफाई कर्मियों में भी उत्साह का संचार हुआ। गुवाहाटी की सड़कों-रास्तों की नियमित सफाई

होने लगी। सड़क किनारे लगाए गए डस्टबिन से भी कचरा तय समय पर उठा लिया जाता है। सबसे बड़ी बात तो यह कि इधर-उधर कचरा फेंकते फिरने वाले बहुत से लोग प्रातः भ्रमण पर निकलते वक्त घर से कचरे से भरा पैकेट लेकर निकलते हैं और उसे डस्टबिन में ही फेंकते हैं। इसके अलावा पिछले दो-तीन सालों से घरों से नियमित रूप से कचरा उठाने का काम भी सुचारू रूप से चल रहा है। घरों से कचरा उठाने के काम में लगे विभिन्न गैर सरकारी समाजसेवी संगठनों की हम जितनी भी प्रशंसा करें, कम है।

हम अपनी साफ-सुथरी और स्वच्छ गुवाहाटी पर जितना भी गर्व करें, उतना ही कम है। मैं यह दावा नहीं करता कि गुवाहाटी देश-दुनिया का सबसे स्वच्छ महानगर है। मैं मानता हूं कि गुवाहाटी को इससे भी अधिक साफ-सुथरा और स्वच्छ बनाने की जरूरत है, बनाया जाना चाहिए। मेरा इशारा महानगरवासियों की सोच में आए बदलाव की ओर है। स्वच्छता और साफ-सफाई को लेकर लोगों की सोच में आए भारी बदलाव के कारण ही हमें गुवाहाटी इतनी साफ-सुथरी और स्वच्छ नजर आती है। लोगों की सोच बदल जाए तो सरकारी अभियान चलाने की जरूरत ही नहीं है। अभी कुछ साल पहले ही सिनेमाघरों अथवा सिटी बसों में लोग सिगरेट-बीड़ी का सेवन करते हुए दिख जाते थे। इसको रोकने के लिए सरकार ने लाख कोशिशें की, मगर सफलता तभी जाकर मिली जब आमलोग जागरूक हुए। अब आमजनता ही किसी को सिनेमाघर अथवा सिटी बस में बीड़ी-सिगरेट पीने नहीं देती। कोई पीता दिख जाए तो छोटा सा बच्चा भी उसे टोक देता है। स्वच्छता के प्रति भी हमें हमारी सोच को ऐसा ही बनाना होगा। न खुद कचरा फैलाएंगे और न ही किसी को कचरा फैलाने देंगे।

मेरा मानना है कि स्वच्छता अभियान को स्कूली बच्चों तक पहुंचाकर आमजनता को इस अभियान के साथ जोड़ा जा सकता है। हम बड़े-बुजुर्ग और किसी की बात सुने न सुने, अपने छोटे-छोटे बच्चों की बात जरूर सुनते हैं। कभी-कभी बच्चे जिद कर माता-पिता से अपनी बातें मनवाकर ही मानते हैं। एक सिटी बस की घटना का जिक्र करना उचित होगा कि एक महिला अपने सात साल के बच्चे को लेकर सिटी बस में पलटन बाजार से बेलतला तक की यात्रा कर रही थी। महिला ने गुटका खाकर उसका पैकेट सिटी बस में ही फेंक

दिया। अब बच्चा मचल उठा, उसने अपनी मम्मी से कहा- बस में कचरा क्यों फेंका। नरेंद्र मोदी ने कहा है, इधर-उधर कचरा नहीं फेंकना चाहिए। सिटी बस के सभी यात्री उस महिला की ओर देखने लगे और बच्चा अपनी जिद पर अड़ा था। आखिरकार थक-हारकर महिला को गुटके की पैकेट उठाकर अपनी पर्स में रखना ही पड़ा। इसे एक उदहारण के तौर पर लिया जा सकता है। वैसे भी बच्चों को जो बातें बताई-समझाई जाती है, वह उनके मन-मस्तिष्क पर बड़ी गहराई से अंकित हो जाती है। ऐसे में हमें स्वच्छता अभियान को स्कूल-कॉलेज स्तर तक ले जाना चाहिए।

महानगर की साफ-सफाई और स्वच्छता के लिए गुवाहाटी नगर निगम को अभी भी बहुत कुछ करना है। सड़क किनारे दिवारों पर लगे पोस्टर, बिजली-टेलीफोन के खंभों पर लगे बैनर-पोस्टर महानगर की सुंदरता को तो दागदार बनाते ही है। महानगर को ऐसे बैनर-पोस्टर से मुक्त कर सुंदर बनाए रखने की संपूर्ण जिम्मेदारी गुवाहाटी नगर निगम की है। इसके अलावा महानगर के अंदरूनी इलाकों में भी नगर निगम के अधिकारियों को विशेष ध्यान देना होगा। ख्याल रहे, जब तक गुवाहाटी महानगर का एक छोटा सा भी हिस्सा गंदा रहेगा, हम गुवाहाटी को पूरी तरह से साफ-सुथरा और स्वच्छ बनाने का दावा नहीं कर सकते।

महामाया मंदिर और नजरूल इस्लाम

पिछले साल 27 दिसंबर को धुबड़ी में आयोजित असम साहित्य सभा के शतवर्ष संपन्न समारोह में शामिल होने के लिए वहां जाने का मौका मिला। साहित्य सभा की सभी जिला ईकाइयों ने अपने-अपने तरीके से राज्य भर में शतवर्ष संपन्न समारोह का आयोजन किया था। धुबड़ी में आयोजित मुख्य कार्यक्रम में मेरे स्वर्गीय पिता वासुदेव जालान की स्मृति में विशिष्ट साहित्यकार-लेखक रत्नेश्वर बसुमतारी को असम साहित्य सभा का वर्ष 2017 का वासुदेव जालान पुरस्कार प्रदान किया गया था। इसी कार्यक्रम में शिरकत करने के लिए मैं 27 दिसंबर की सुबह अपने प्रकाशक-लेखक मित्र ब्रजेंद्र नाथ डेका के साथ धुबड़ी के लिए रवाना हुआ। धुबड़ी जाते वक्त रास्ते में ख्याल आया क्योंकि बगड़ीबाड़ी के घने जंगलों में स्थित जागृत महामाया मंदिर में जाकर आदि शक्ति महामाया के दर्शन कर लिए जाएं। यह सोच मैंने जब अपने एक दोस्त को फोन किया तो उसने बताया कि इन दिनों महामाया मंदिर में श्रद्धालुओं की भारी भीड़ लगी रहती है। मैं यदि देवी-दर्शन करने गया तो मुझे घंटों इंतजार भी करना पड़ सकता है। मेरे पास लंबा इंतजार करने के लिए वक्त भी नहीं था। लिहाजा मैंने जब अपने दोस्त को मेरी मंशा और समस्या बताई तो उसने मुझको नजरूल इस्लाम नामक एक व्यक्ति के फोन नंबर दिए। उससे फोन नंबर लेने के बाद मेरे मन में ख्याल आया कि नजरूल मेरी मंदिर में महामाया देवी दर्शन करने में भला क्या मदद कर सकता है। इसी उधेड़बुन में मैंने जब नजरूल को फोन किया तो उसने मेरा अभिवादन करने के बाद मुझे महामाया मंदिर के एक व्यक्ति का फोन नंबर दिया और कहा कि मंदिर में जाने पर वह व्यक्ति मुझे देवी-दर्शन करा देगा। बाद में महामाया मंदिर तक के एक घंटे के सफर के दौरान मेरे पास इस्लाम के तीन बार फोन आए और उसने मुझसे मेरी सुविधा-असुविधाओं के बारे में पूछा। यहां तक कि मंदिर के पास पहुंचने तक उसके फोन आने का सिलसिला जारी रहा। मंदिर में जाने पर देखा नजरूल ने वहां मेरे लिए सभी प्रकार की तैयारियां करवा

रखी है। जिस व्यक्ति ने मुझको देवी महामाया के दर्शन कराए, उसने भी नजरूल के बारे में बताया। यह सारा घटनाक्रम मुझे अभिभूत कर गया। एक अन्य धर्मावलंबी युवक के मन में मुझको देवी के दर्शन कराने की जो ललक दिखाई दी, उसकी जितनी भी प्रशंसा की जाए कम है। इस्लाम की महामाया के प्रति श्रद्धा और भक्ति की भावना भी मुझको इंसानियत के स्तर पर जाकर सोचने पर मजबूर कर दिया। जब पूरे देश में कट्टरता की आंधी चल रही है। हिंदू-मुसलामन, दलित-कमजोर के नाम पर देश-समाज को बांटने की कोशिशें हो रही है, वैसे में नजरूल जैसे व्यक्ति बड़ी ही खामोशी के साथ हिंदू-मुसलमानों के बीच समन्वय और आपसी भाईचारे की धारा को प्रवाहित करने में लगे हैं। ऐसे लोगों से हम सभी को सीख लेनी चाहिए कि दुनिया का चाहे कोई भी धर्म हो, वह समाज को तोड़ने का नहीं, जोड़ने का काम करता है। वैसे भी असम का कोई भी नागरिक नहीं चाहता कि समाज में किसी भी प्रकार का सांप्रदायिक तनाव फैले। बस चंद बुरे लोग ही हैं, जो हमेशा भोले-भाले लोगों के बीच सांप्रदायिक तनाव फैलाने की फिराक में रहते हैं।

माना की बगड़ीबाड़ी का नजरूल इस्लाम कोई लोकप्रिय व्यक्ति नहीं है, लेकिन उसमें जो विशाल हृदयता छिपी हुई है, वह किसी भी लोकप्रिय व्यक्ति की विशालता से बड़ी हो सकती है। नजरूल की बातों पर भरोसा करके ही मंदिर में प्रवेश किया था। इस मंदिर को लेकर बहुत सी किंवदंतियां प्रचलित है। यह मंदिर घने जंगल के बीच बसा है। जंगल में वन्य जंतुओं का भी विचरण होता है, मगर आज तक ऐसा सुनने में नहीं आया कि देवी महामाया के दर्शन को गए किसी श्रद्धालु पर किसी वन्य जंतु-जानवर ने हमला किया हो। धुबड़ी जिले का यह महामाया मंदिर न सिर्फ आस्था का केंद्र बल्कि एक पर्यटन स्थल के रूप में भी विख्यात है। धुबड़ी जिले में आने वाला हर एक बाहरी व्यक्ति इस मंदिर के दर्शन करने जरूर आता है। राज्य सरकार तनिक कोशिश कर इस स्थल को कामाख्या मंदिर की तर्ज पर विकसित कर सकती है। गुवाहाटी से महामाया मंदिर तक की सीधी यातायात सेवा का शुभारंभ कर इस मंदिर को श्रद्धालु और पयर्टकों की पहुंच के लिए आसान बनाया जा सकता है। इससे न सिर्फ महामाया मंदिर के आसपास के इलाके का विकास होगा, रोजगारी के अवसर बढ़ेंगे, बल्कि इससे एक श्रद्धा के केंद्र के रूप में भी विकसित किया जा सकेगा।

नए साल की सकारात्मक बातें

उम्मीदों से लबालब नए साल ने हमारे दिल-द्वार पर दस्तक दे दी है। नए साल की खुमारी अभी-अभी चढ़ी ही है और इसके उतरने में पूरा महीना तो लग ही जाएगा। नव-वर्ष आगमन के मौकेपर हम कुछ ऐसी बातों पर नजर फिराएंगे, जिन्हें नए साल का सकारात्मक बातें कही जा सकती है। राष्ट्रीय नागरिक पंजी (एनआरसी) की अंतिम सूची का इस साल तक प्रकाशन हो जाने की सबसे बड़ी सकारात्मक बात कही जा सकती है। 31 दिसंबर की मध्यरात्रि को एनआरसी का पहला मसौदा जारी करने के बाद एनआरसी के राज्यिक समन्वयक प्रतीक हाजेला ने वैसे तो इस पूरी प्रक्रिया को उच्चतम न्यायलय के दिशा-निर्देश पर चलने वाली बताया, लेकिन यह भी उम्मीद जताई कि इस साल में एनआरसी की अंतिम सूची का प्रकाशन हो जाएगा। इसे असम के लिए एक बहुत बड़ी सौगात कहा जा सकता है। छह साल तक चले असम आंदोलन और 855 युवाओं की शहादत के बाद 1985 की 15 अगस्त को हुए असम समझौते में एनआरसी अद्यतन की मांग की गई थी, जिस पर अमल होने में 30 साल से अधिक लग गए। एनआरसी के अद्यतन हो जाने से न सिर्फ राज्य में गैर कानूनी ढंग से बसे बांग्लादेशियों की पहचान हो सकेगी, बल्कि यहां के मूल निवासियों को संवैधानिक रक्षा कवच उपलब्ध कराए जाने की मांग को भी आगे बढ़ाया जा सकेगा।

इस साल तक राज्यवासियों को 'आधारकार्ड' मिलने की संभावना को भी सकारात्मक पहलू से जोड़कर देखा जा सकता है। आधारकार्ड न होने की वजह से आज नहीं तो कल विभिन्न समस्याएं खड़ी होनी ही है। केंद्र सरकार के दिशा-निर्देश के अनुसार बैंक खातों के साथ-साथ रसोई गैस कनेक्शन, पैनकार्ड, मोबाइल नंबर, बीमा पॉलिसी तथा सरकार से मिलने वाली सभी प्रकार की सुविधाओं को आधारकार्ड से जोड़ा जाना जरूरी है। ऐसे में देश के सभी राज्यों के लोगों के पास आधारकार्ड का होना और असम के लोगों के पास इसका न होना, एक तरह से

हम असमवासियों को सबसे अलग-थलग करना ही हुआ। असम में साल के अंत तक जब सभी के पास आधारकार्ड होंगे तो उनकी पहचान और भी पुख्ता होगी।

राज्य के कृषि क्षेत्र में आ रहे बदलाव को भी साल की शानदार बातों में शुमार किया जा सकता है। सरकार की ओर से किसानों में दस हजार ट्रैक्टरों को बांटना, पढ़े-लिखे बेरोजगार युवाओं का फिर से खेत-खलिहानों की ओर लौटना असम में हरित क्रांति के आगाज की सूचना देता है। विशेषज्ञों का कहना है कि कई बार बाढ़ आने के बाद भी राज्य में धान की पैदावार बढ़ी है। इसके अलावा अदरक, काली मिर्च, चायपत्ती के उत्पादन में भी उल्लेखनीय बढ़ोत्तरी असम के उज्ज्वल भविष्य की ओर इंगित करता है। राजनीति क्षेत्र की यदि कहें तो राज्य सरकार द्वारा भ्रष्टाचार के खिलाफ चलाए जा रहे अभियान को हम सकारात्मक पहलु के रूप में देख सकते हैं। गलत रास्ते अख्तियार कर प्रशासनिक पदों पर बैठने वाले दो दर्जन युवाओं को जेल की सलाखों के पीछे पहुंचाकर सरकार ने अपनी मंशा स्पष्ट कर दी है। इसके अलावा कई विभागों के शीर्ष अधिकारियों का भ्रष्टाचार के आरोप में गिरफ्तार होना और उनमें से कम से कम एक अधिकारी को न्यायालय द्वारा सजा सुना देना, निश्चय ही युवा असम की एक अतुलनीय तस्वीर पेश करता है। सरकार द्वारा निरंतर चलाए जा रहे भ्रष्टाचार विरोधी अभियान का ही नतीजा है कि रिश्वतखोरी कम हो रही है और लोगों में भ्रष्टाचार को लेकर जागरूकता बढ़ने लगी है। पिछले दिनों केंद्रीय विद्यालय, खानापाड़ा के प्राचार्य द्वारा रिश्वत मांगने पर एक ठेकेदार द्वारा संबंधित विभाग को शिकायत करने की घटना को जन-जागरूकता से जोड़कर देखा जाना चाहिए। गुवाहाटी को देश की खेल की राजधानी बनाने की सरकारी इच्छा को खेल जगत से जुड़ी अच्छी खबर मानी जानी चाहिए। राज्य सरकार खेल, खिलाड़ी और खेल से जुड़े संसाधनों में निखार लाने की कोशिशों में लगी है। बीते साल गुवाहाटी में फीफा अंडर 17 विश्वकप, आस्ट्रेलिया-भारत के बीच हुए एक दिवसीय क्रिकेट मैच और प्रीमियर बैडमिंटन लीग के प्रारंभिक मुकाबलों को इसकी शुरुआत के तौर पर देखा जाना चाहिए। राज्य सरकार द्वारा गांवों में खेल मैदानों को विकसित करने, मिनी स्टेडियम बनाने और खिलाड़ियों को प्रोत्साहित करने के लिए की गई विभिन्न घोषणाओं को इस साल के सकारात्मक पहलू के साथ जोड़कर देखा जाना चाहिए।

यातायात नियमों पर अमल करेंगे, हो नए साल का संकल्प

पिछले तीन-चार सालों में सड़क दुर्घटनाओं में बेतहाशा बढ़ोतरी हुई है। केंद्रीय सड़क परिवहन एवं राजमार्ग तथा जहाजरानी मंत्री नितिन गडकरी स्वयं देश भर में क्रमशः बढ़ रही सड़क दुर्घटनाओं पर चिंता व्यक्त कर चुके हैं। हमारे देश में हर साल सड़क दुर्घटना में होने वाली मौतों का आंकड़ा बढ़ता ही जा रहा है। वर्ष 2015 में सड़क दुर्घटना में प्रतिदिन 400 लोगों की मौतें हुई थी, जबकि पिछले साल कम से कम 410 लोगों की मौत का आंकड़ा दर्ज किया गया। टाइम्स ऑफ इंडिया के आंकड़ों के मुताबिक 1.5 लाख लोग 2016 में सड़क दुर्घटना में मारे गए, जबकि तुलनात्मक रूप से 2015 में ये आंकड़ा 1.46 लाख था। यह जानकर आश्चर्य हो सकता है कि हमारे देश में सबसे ज्यादा मौतें सड़क दुर्घटना में होती हैं। मिजोरम, केंद्र शासित प्रदेश चंडीगढ़, दमन और दीव, दादरा और नागर हवेली और दूसरे राज्यों द्वारा केंद्र और सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष सड़क सुरक्षा पर पेश किए गए आंकड़े से ये बातें निकल कर सामने आई। संबंधित विभाग के अधिकारी मानते हैं कि

सड़क दुर्घटना का अस्थायी डेटा हालांकि चिंता का विषय है और मौतों तथा घायलों की संख्या को स्थिर करने और संभवत: कम करने की कोशिश कर रहे हैं। सरकार अगले तीन सालों में इस मृत्यु दर को 50 फीसद कम करने की कोशिश करने में लगी है। यहां इस बात का भी उल्लेख करना होगा कि साल 2016 में, दिल्ली सहित नौ राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में सड़क दुर्घटनाओं में होने वाली मौतों में गिरावट दर्ज की गई थी। लेकिन उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु, मध्य प्रदेश, आंध्र प्रदेश और पश्चिम बंगाल सहित छह राज्यों में हुए मौतों के आंकड़े को देखा जाए तो इसमें चिंताजनक वृद्धि हुई है। ये आंकड़े 1970 के बाद से अभी तक के सभी बड़े आंकड़ों को पीछे छोड़ दिया है। 1970 से, 2012 और 2013 को छोड़कर सड़क दुर्घटना की मौतें लगातार बढ़ रही हैं।

सड़क दुर्घटना में प्रतिदिन चार सौ से अधिक लोगों की मौत को कमतर नहीं आंका जाना चाहिए और न ही इस समस्या को सिर्फ सरकार के भरोसे ही छोड़ा जा सकता है। इसके लिए आम आदमी से लेकर वाहन मालिक-चालक, यातायात पुलिस, नागरिक प्रशासन सभी को सतर्क होना पड़ेगा। जहां तक आम आदमी का सवाल है तो इस समस्या से सबसे अधिक प्रभावित वही है, तो सबसे अधिक कोशिश भी उसकी ओर से ही होनी पड़ेगी। इसकी शुरुआत हम नए साल के इस संकल्प के साथ कर सकते हैं कि 'नए साल में यातायात नियमों पर अमल करेंगे।' इसके अलावा हम अपने प्रियजन, रिश्तेदार, साथी-संगी को भी यह संकल्प दिला सकते हैं। क्योंकि इन सभी की जान आपके लिए भी बेहद कीमती है। आंकड़े बताते हैं कि सड़क दुर्घटनाओं में मरने वालों में ऐसे युवाओं की संख्या भी कम नहीं है, जिन्होंने दोपहिया चलाने के समय हेलमैट नहीं पहन रखा था। हेलमैन पहनकर दोपहिया वाहन दुर्घटना से होने वाली मौतों के आंकड़े को कुछ हद तक कम किया जा सकता है। ऐसा नहीं है कि हमारे युवा जब दोपहिया लेकर घर से निकलते हैं तो उनके पास हेलमैट नहीं होता। बस वह हेलमैट उनके हाथों में अथवा बाइक के पीछे लटक रहा होता है। जरूरत बस हेलमैट को सिर पर पहनने भर की है। इसके अलावा नए साल में चार पहिया वाहनों की सवारी करने

वालों को सुरक्षा बेल्ट लगाने की भी आदत डालने का संकल्प लेना चाहिए। इसके बाद नंबर आता है, उन राहगीरों का जो वाहन चालकों की लापरवाही अथवा अपनी नासमझी की वजह से सड़क दुर्घटनाओं में मारे जाते हैं। यातायात नियमों का पालन करना राहगीरों के लिए भी उतना ही जरूरी है, जितना वाहन चालकों के लिए। जेब्रा क्रॉसिंग पर वाहन की गति को धीमी न करना और दौड़कर सड़क पार करने जैसी हरकतें भी कभी-कभी गंभीर सड़क दुर्घटनाओं का कारण बनती है।

पूर्वोत्तर का मुख्यद्वार कहलाने वाला गुवाहाटी भी सड़क दुर्घटनाओं के कहर से अछूता नहीं है। रात के वक्त तो सड़क दुर्घटना की संभावना और भी कई गुणा बढ़ जाती है। इसका मुख्य कारण शराब का सेवन कर वाहन की सवारी करना बताया जाता है। रात के 10 बजे के बाद अत्याधिक तेज रफ्तार से दौड़ते वाहनों को नित्य-प्रतिदिन देखा जा सकता है। यातायात पुलिस द्वारा व्यस्त सड़कों पर नियमित रूप से औचक निरीक्षण भी किया जाता है। यातायात नियमों का उल्लंघन करने वालों के खिलाफ कार्रवाही भी की जाती है। इसके बावजूद लापरवाही से वाहन चलाने के आंकड़े और सड़क दुर्घटनाओं में लोगों के मारे जाने की संख्या कम होने का नाम नहीं ले रही है। इस मामले में पुलिस-प्रशासन से अधिक आपको-हम सभी को जिम्मेदार होना होगा। यह बात हमें समझ लेनी चाहिए कि हमारे जान बहुत कीमती है। हमारे लिए भी और हमारे परिवार-रिश्तेदार-साथी-संगियों के लिए भी। हमारी इस अनमोल जान को सड़क दुर्घटना के नाम पर तो कुर्बान हरगिज नहीं किया जा सकता।

देवदूत ईशा मसीह की वाणी का मानव जीवन पर प्रभाव

25 दिसंबर अर्थात क्रिसमस डे। जिस तरह से हिंदुओं के दीपावली और मुसलमानों के लिए ईद का त्यौहार महत्वपूर्ण और सबसे बड़ा है, ठीक उसी प्रकार ईसाइयों के लिए क्रिसकस का त्यौहार होता है। हर साल दिसंबर की 25 तारीख को पूरे विश्व भर में यह त्यौहार बड़े ही हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। इसी दिन ईसा मसीह का जन्म हुआ था, जिन्होंने आगे चलकर इसाई धर्म की स्थापना की। कहा जाता है जब समस्त मानव जाति संकट में थी और चारों ओर हाहाकार मचा था, वैसी संकट की घड़ी में मानव जाति का कल्याण करने के लिए ईश्वर ने ईसा मसीह को इस संसार में भेजा था। सभी धर्मों में यह मान्यता है कि जब भी संसार में मानव जाति पर संकट आता है अथवा अत्याचार बढ़ता है, ईश्वर का कोई न कोई देवदूत संसार में जरूर जन्म लेता है। हिंदुओं में भगवान

श्रीकृष्ण के प्रति जैसी आस्था है, ईसाइयों में ईशा मसीह के बारे में भी वैसी ही आस्था है। दयालु ईशा मसीह ने अपनी वाणी में मौत की साजिश करने वालों तक को क्षमा कर देने के लिए भगवान से प्रार्थना की थी। यहां तक की जब ईशा को सालीब पर लटकाकर उन्हें कांटों का मुकुट पहनाया गया, उस वक्त भी वे लटकाने वालों की ओर दया भरी नजरों से देख रहे थे।

वे एक ऐसे मसीहा थे, जिन्होंने घूम-घूमकर लोगों को मानवता और शांति का संदेश दिया। धर्म के नाम पर आडंबर फैलाने वालों को मानव जाति का शत्रु बताया और अन्याय, घोर विलासिता और अज्ञानता का अंधकार मिटाने का आह्वान किया ।

कहते हैं ईसा के संदेश सबसे अधिक धर्मपंडितों को ही अखरे। उन्होंने ईसा के दिए संदेश को धर्म की अवमानना कहा और यीशु को मृत्युदंड की कठोर सजा सुना दी। फांसी से पहले यीशु को कई तरह की यातनाएं दी गईं। मसलन, यीशु के सिर पर कांटों का ताज रखा गया। उन्हें कंधे पर उठाकर गोल गोथा नामक जगह ले गए, जहां उन्हें सलीब पर चढ़ा दिया गया। जिस दिन यीशु को सूली पर चढ़ाया गया, वह दिन शुक्रवार था। यीशु ने ऊंची आवाज में परमेश्वर को पुकारा- हे पिता मैं अपनी आत्मा को तेरे हाथों में सौंपता हूं। ऐसे शब्द कहने के बाद ही यीशू ने अपने प्राण त्याग दिए।

ईसा मसीह ने विरोध और यातनाएं सहते हुए अपने प्राण त्यागे थे। उन्हीं की आराधना और वचनों के माध्यम से इंसानियत की राह पर चलने का ज्ञान देने वाला दिन गुड फ्राइडे कहलाता है।

दरअसल ईसा ने सलीब पर अपने प्राण त्यागे थे। जबकि वे निर्दोष थे, फिर भी उन्हें दंडस्वरूप सलीब पर लटका दिया गया। उन्होंने सजा देने वालों पर दोषारोपण नहीं किया बल्कि यह कहा कि- हे ईश्वर ! इन्हें क्षमा करें, क्योंकि ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं।

बाद में लोग इनकी ईश्वर के पुत्र के रूप में पूजा करने लगे। इस दिन को हम क्रिसमस कहें या और कुछ ईसाइयों के अलावा यीशु को मानने वाले सभी 24 दिसंबर की रात से गिरजाघरों में विशेष पूजा शुरू कर देते हैं। इस रात गिरजाघरों में जो पूजा की जाती है, उसे 'हाईमास' कहते हैं। यह पवित्र दिन हमें

मानव धर्म का पाठ पढ़ाता है। ईश्वर ने अपने बेटे यीशु को पृथ्वी पर इसीलिए भेजा था कि वह लोगों के बीच प्रेम का आदान-प्रदान करने के साथ ही सभी को इसके लिए प्रेरित कर सके। अपने हृदय में क्षमा, दया, मानवता की भावना लिए बहुत कम समय के लिए ही यीशु पृथ्वी पर आए, लेकिन जाते-जाते समस्त मानव जाति को प्रेम और भाईचारे केसाथ मिल-जुलकर रहने का संदेश दे गए।

आज सैकड़ों साल बाद भी यीशु की वाणी का महत्व कम नहीं हुआ है। आज भी मानव जाति वहीं की वहीं खड़ी है। आज भी सच्ची बात-अच्छी बातें कहने वालों का विरोध करने वाले मिल जाते हैं। धर्म और मानवता का मजाक उड़ाने वालों के साथ-साथ धर्म के नाम पर लोगों को ठगने वाले आज भी हमारे समाज में भरे पड़े हैं। ऐसे में यीशु की वाणी हमारे समाज के लिए किसी अंधेरी रात में रहगीरों को राह दिखाने वाली रोशनी की मीनार साबित हो सकती है।

क्रिसमस के त्यौहार की खुशियां सिर्फ इसाई धर्मावलंबियों तक ही सिमटी हुई नहीं है। आज सभी धर्म-संप्रदाय के लोग अपने-अपने हिसाब से इस त्यौहार में खुद को शामिल करते हैं और आपस में एक-दूसरे को बड़े दिन की शुभकामनाएं देते हैं। यही है क्रिसमस की खुबसूरती, जो मानव जाति को धर्म के दायरे से बाहर निकलकर एक-दूसरे के सुख-दुख में शरीक होने का संदेश देती है।

परंपरागत पकवान

दिसंबर-जनवरी के महीने के आगमन का मतलब ही है, त्यौहार-पर्व, उत्सव-महोत्सव। दिसंबर का महीना शुरू होते ही वनभोज की योजनाएं बनने लगती है। सिर्फ गुवाहाटी ही नहीं, राज्य भर के पर्यटन स्थल वनभोज का आनंद उठाने वालों के गीत-नृत्य से गुलजार होने लगते हैं। पिछले कई सालों से वनभोज के दौरान एक बात विशेष रूप से उभरकर सामने आई है कि लोग खासकर युवा साफ-सफाई और स्वच्छता के प्रति पहले से अधिक संवेदनशील-गंभीर हो गए हैं। वनभोज पर जाने वाली बहुत सी टोलियां लौटते वक्त उस स्थान की साफ-सफाई करना नहीं भुलती। राज्यवासियों के वनभोज के खुमार के बीच जब क्रिसमस का त्यौहार लोगों के दरवाजों पर दस्तक देता है तो गिरजाघरों में प्रार्थनाओं के साथ-साथ होटल-क्लब आदि में पार्टियों का दौर दूर हो जाता है। यूं कह लें कि यह दो महीने पूरी तरह से मस्ती और खुशियों से सरोबार नजर आते हैं। बदलते वक्त के साथ युवाओं की सोच में भी उल्लेखनीय बदलाव देखने को मिल रहा है। पार्टी के समय पड़ोसियों की सुविधा-असुविधा का ध्यान रखना अथवा उच्चतम न्यायालय द्वारा तय समय सीमा रात के 10 बजे के बाद अधिक ऊंची आवाज में माईक आदि नहीं बजाना, युवाओं की प्रशंसनीय सोच का नतीजा कहा जा सकता है।

वनभोज का जो सिलसिला दिसंबर के दूसरे सप्ताह के बाद से शुरू होता है, वह भोगाली बिहू अर्थात 14 जनवरी के बाद भी जारी रहता है। भोगाली बिहू यानी की भात-भोजन के त्यौहार का असमवासियों को विशेष रूप से इंतजार रहता है। भोगाली बिहू के समय युवागण पिज्जा-बर्गर के स्वाद को भूल पीठा-लड्डू का आनंद उठाने में लग जाते हैं। असम में शायद ही कोई एक घर होगा, जहां भोगाली बिहू के समय परंपरागत व्यंजन पीठा-लड्डू आदि न बनते हों। भोगाली बिहू प्रारंभ होने से पखवाड़े भर पहले से ही परंपरागत व्यंजन बनाने की तैयारियां शुरू हो जाती है। कौन कितना स्वादिष्ट पकवान बनाता है, एक प्रकार से प्रतियोगिता ही शुरू

हो जाती है। रसोई घर में सुबह-सुबह खनकने वाली चुड़ियों की आवाज और 'ढेकी' पर चावल पीसने की प्रक्रिया भोगाली के आगमन का संदेश देती है। आमतौर पर भोगाली के मौके पर नारियल पीठा, तिल पीठा, चूंगा पीठा, नारियल-तिल के लड्डू आदि ही बनाए जाते हैं। कई स्थानों पर तो इतने सुघड़ तरीकेसे ये पकवान बनाए जाते हैं कि किसी मशीन के बने नजर आते हैं।

लेकिन आजकल पीठा-लड्डू बाजार में भी उपलब्ध है। आमतौर पर पूरे साल भर बाजार में पीठा-लड्डू खरीदे जा सकते हैं, लेकिन भोगाली बिहू के समय तो मानो बाढ़ सी आ जाती है। महानगर में तो आहिस्ता-आहिस्ता यह एक उद्योग का स्वरूप ले रहा है। परंपरागत पकवान बनाने वाले 'भोगाली जलपान' की शानदार सफलता को इसका एक उदाहरण कहा जा सकता है। इसके अलावा राज्य भर में बने आत्मसहायक गुट की महिलाएं भी भोगाली बिहू आते ही पीठा-लड्डू बनाने में जुट जाती है। हम चाहें तो इसे कुटीर उद्योग की भी संज्ञा दे सकते हैं। यह एक अच्छी स्थिति है और सरकार तथा अन्य वित्तीय संस्थानों की ओर से इसे प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। बाजार में जो पीठा-लड्डू उपलब्ध है, उनको बनाते वक्त इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है कि उनकी गुणवत्ता और स्वाद लंबे समय तक बना रह सके। पीठा-लड्डू सहित अन्य परंपरागत पकवानों का धंधा चल निकलने के कारण राज्य के युवाओं को विशेषकर महिलाओं को रोजगार का एक नया मार्ग मिल गया है। इसे महिला सशक्तिकरण के साथ भी जोड़कर देखा जा सकता है। आमतौर पर पीठा-लड्डू आदि बनाने का काम महिलाएं ही करती हैं। घर के पुरुष इन पकवानों को बाजार आदि में बेचकर महिलाओं का सहयोग भी कर सकते हैं। भोगाली बिहू के दौरान पीठा-लड्डू की जोरों की बिक्री यह बात भी रेखांकित करता है कि राज्य का युवा वर्ग अब भी पीठा-लड्डू पसंद करता है। बस जरूरत ऐसे पकवानों को उनके नास्ते की प्लेट तक पहुंचाने की है। इस बात का जिक्र करने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए कि गुवाहाटी जैसे महानगरों के फ्लैटों में जगह की कमी के कारण 'ढेकी' अपना स्थान खोती जा रही है। ऊपर से घर की महिला-पुरुष दोनों के काम पर जाने की मजबूरी। जब घर की महिला घर में नहीं रहेगी। ढेकी को स्थापित नहीं किया जाएगा तो फिर पीठा-लड्डू बनेंगे कैसे। ऐसे में सिर्फ बाजार में बिकने वाले पीठा-लड्डुओं पर ही जाकर नजर टिकती है। मगर, हमें ध्यान रखना होगा, महानगर में काम की व्यस्तता और ढेकी की अनुपलब्धता की वजह से हमारे ये परंपरागत पकवान ही हमारी प्लेट से गायब न हो जाए।

मातृभाषा सर्वोपरि

सभी ने मातृभाषा को सर्वोपरि माना है, बिना मातृभाषा के विकास के किसी भी जाति के विकास की कल्पना तक नहीं की जा सकती। मातृभाषा का विकास नहीं होने की वजह से आज सैकड़ों मातृभाषाएं विश्वपटल से विलुप्त हो चुकी है, इस वजह से बहुत जाति अपने अस्तित्व को बनाए रखने के संकट से गुजर रही है। विश्व की सबसे ताकतवर मानी जाने वाली जाति भी ऐसे ही संकट के दौर से गुजर रही है। एक वह भी समय था, जब जर्मनी ने पूरे विश्व पर अपना राज कायम कर लिया था। हिटलर की तानाशाही की वजह से पूरा विश्व त्राहिमाम था। मगर, यह बात बहुत कम लोगों को ही पता होगी कि जर्मन जाति के विकास के मूल में वहां की भाषा, साहित्य और संस्कृति का विकास था। गुटेनबर्ग में छापाखाना का आविष्कार होने के साथ-साथ जर्मन के शिक्षा-साहित्य और सांस्कृतिक जगत में नवजागरण का प्रारंभ हुआ। जर्मन निवासियों ने सैकड़ों साल पहले ही इस बात को समझ लिया और इसी कारण वह लोग अपनी जाति को एक ताकतवर जाति बनाने में कामयाब रहे थे। आज भी जर्मनी को विश्व की सबसे ताकतवर जातियों में से एक माना जाता है। अंग्रेजी भाषा को आज पूरे विश्व में संपर्क भाषा के रूप में क्यों स्वीकारा जा रहा है, यह सभी को पता है। जिस जाति ने अपनी मातृभाषा के विकास और प्रचार-प्रसार को अधिक महत्व दिया है, वह जाति अपनी मातृभाषा को विश्वपटल पर विस्तारित करने में कामयाब रही है। अंग्रेजों को इसके एक उदाहरण के तौर पर देखा जा सकता है।

मातृभाषा के विकास के बिना एक जाति जिंदा नहीं रह सकती और भाषा-संस्कृति, शिक्षा-साहित्य का विकास तो असंभव है। हाल ही में असम भ्रमण पर आए उपराष्ट्रपति वेंकैया नायडू ने मातृभाषा के महत्व को रेखांकित करते हुए इसके विकास पर समुचित ध्यान दिए जाने की जरूरत बताई थी। उन्होंने सभी से अपनी-अपनी मातृभाषा के विकास में लग जाने की अपील करते हुए कहा कि हमें अपनी मातृभाषा के महत्व को समझने की जरूरत है। देश के संवैधानिक प्रमुखों से एक

उपराष्ट्रपति द्वारा देशवासियों से की गई यह अपील यह संदेश देती है कि हमारे लिए मातृभाषा का विकास कितना जरूरी है। इस बात को दोहराने की जरूरत नहीं है कि हमारे देश में हजारों बोलियां बोली जाती है। सैकड़ों भाषाएं हैं और देश के विकास में, भारतीय साहित्य को समृद्ध करने में सभी का अपना-अपना योगदान है। हमारे देश की संपूर्ण उन्नति इन बोलियों व भाषाओं में ही छिपी हुई है। अपने आप में 'अनेकता में एकता' का मंत्र छिपाए बैठे भारत में जब सभी के विकास आती है तो हर एक मातृभाषा के पल्लवित होने की बात सबसे पहले आती है। मातृभाषा का विकास किसी जाति को कामयाबी की सबसे ऊंची सीढ़ी तक ले जा सकता है। सभी कोई अपनी मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा प्राप्त कर देश के विकास में लगें, तभी देश का संपूर्ण विकास संभव है। देश में शिक्षित-साक्षरता की दर जितनी बढ़ेगी, देश का भी उतना ही विकास होगा। जिस देश में मानव संपदा का उपयुक्त उपयोग नहीं होता है, वहां शिक्षा, साहित्य और संस्कृति का विकास भी धीमा पड़ जाता है। मातृभाषा के माध्यम से सभी को बड़ी आसानी से शिक्षादान किया जा सकता है। श्री नायडू ने इस बात को आत्मसात करते हुए सभी से अपनी-अपनी मातृभाषा को महत्व देने की अपील की थी।

राष्ट्रसंघ के हाल में जारी एक प्रतिवेदन में कहा गया है कि विश्व की कई जातियां आज इस लिए खत्म होने के कगार पर पहुंच गई है, क्योंकि या तो उनकी मातृभाषा विलुप्त हो चुकी है अथवा उसका विकास रुका पड़ा है। कुछ लोगों द्वारा हमारी असमिया भाषा को लेकर भी इन दिनों सवाल उठाए जा रहे हैं। इनको लगता है असम में असमिया भाषा माध्यम से पढ़ने वाले विद्यार्थियों की संख्या बड़ी तेजी से गिरती जा रही है। नई पीढ़ी के बीच भी असमिया भाषा में बातचीत करने वालों की संख्या कम होती जा रही है। इनकी ऐसी सोच के बावजूद असमिया भाषा पर फिलहाल किसी भी प्रकार का संकट नजर नहीं आता। असमिया माध्यम के स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों की संख्या में अभी भी किसी प्रकार की गिरावट नजर नहीं आती। सिर्फ शहरी इलाकों में फैलते अंग्रेजी माध्यम के स्कूल में पढ़ने वाले विद्यार्थियों की बढ़ती संख्या को देखकर ही असमिया भाषा के अस्तित्व पर सवाल खड़े नहीं किए जा सकते। आज भी असमिया दैनिक, पत्रिका तथा किताब-उपन्यास पढ़ने वालों की संख्या कम नहीं है और सबसे बड़ी बात हमारे पास 1917 की दिसंबर में स्थापित सौ साल पुरानी असम साहित्य सभा भी है।

कौन लेगा दिव्यांगों की सुध

हर साल 3 दिसंबर का दिन विश्वभर में दिव्यांग दिवस के रूप में मनाया जाता है। यह दिन विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन कर शारीरिक व मानसिक रूप से दिव्यांगों को समर्पित है। विज्ञान ने भले ही कितनी ही उन्नति क्यों न कर ली हो, कुछ चीजें आज भी उसकी पहुंच से बाहर है। किसी की जन्मजात दिव्यांगता अथवा दुर्घटनाजनिक दिव्यांगता को आमतौर पर ईश्वर की मर्जी से जोड़कर देखा जाता है। किसी भी व्यक्ति का संपूर्ण नहीं होना, चाहे वह मानसिक हो अथवा शारीरिक, बहुत पीड़ादायक है। यह बात सच है कि हम दिव्यांग व्यक्ति की इस पीड़ा को खत्म नहीं कर सकते, लेकिन उनके प्रति अपनापन, सम्मान और आदर का भाव प्रदर्शित कर उनकी पीड़ा को कम जरूर कर सकते हैं। मानव तन की रचना ईश्वर द्वारा की गई गलती अथवा कोई दुर्घटना किसी के दिव्यांगता का कारण बन सकती है, लेकिन दिव्यांग के प्रति परिवार-समाज का व्यवहार उनकी पीड़ा की वजह तो हर्गिज नहीं बनना चाहिए। यह समस्या न तो नई है और न ही हमारे देश तक सीमित है। विश्व का शायद ही कोई ऐसा देश होगा, जहां की आबादी में दिव्यांग लोग न हों। दुनिया बड़ी तेजी से बदल रही

है। विज्ञान के क्षेत्र में होने वाले नए-नए अविष्कारों के चलते अब दिव्यांग लोग भी किसी के सहारे के मोहताज नहीं हैं। दिव्यांग सभी न सिर्फ अपने दैनिकचर्या के काम अपने-आप करने लगे हैं, बल्कि सामाजिक-राष्ट्रीय पटल भी वे अपने उल्लेखनीय कार्यों के दम पर पूरी ताकत के साथ उभरकर सामने आए हैं।

अपनी प्रतिभा के दम पर उन्होंने एक बार नहीं कई बार यह बात साबित की है कि हौसला अगर हो तो दिव्यांगता कभी विकास के मार्ग का रोड़ा नहीं बन सकती। देश की जानी-मानी नृत्यांगना सुधा चंद्रन हो या गायक स्वींद्र जैन ऐसे लोगों ने हमेशा ही दिव्यांगता को मात दी है। यह बात बहुत कम लोगों को पता होगी कि विश्व विजेता फारस के वीर नेपोलियन बोनापार्ट के दिल में भी छेद था। हृदय में छेद रहने के बावजूद उन्होंने कभी भी स्वयं को असंपूर्ण नहीं समझा।

सूरदास का नाम भला किसने नहीं सुना होगा। जन्मांध सूरदास आज भी अपनी श्रीकृष्ण भक्तिमूलक कविता-दोहों में जिंदा हैं। दिव्यांगता किसी की प्रतिभा के फलने-फुलने में आड़े नहीं आती, यह जानने के बावजूद हमारे समाज में आज भी दिव्यागों को बेचारा समझा जाता है, उनके प्रति दया-करुणा के भाव प्रदर्शित किए जाते हैं। समाज के विकास में बराबर का सहयोग देने के बावजूद उनको बराबरी का हक हासिल नहीं होता। रोजगार हो या नौकरी का क्षेत्र दिव्यांगों को सिर्फ इसलिए दरकिनार कर दिया जाता है, क्योंकि वह लोग शारीरिक अथवा मानसिक रूप से संपूर्ण नहीं हैं। सामाजिक समारोह आदि में भी दिव्यागों को 'बेचारगी' की भावना के साथ देखा जाता है। इस स्थिति को बदलने की जरूरत है। सरकार की ओर से इस दिशा में उल्लेखनीय प्रयास किए जा रहे हैं। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के प्रयासों से देश भर में विकलांग शब्द की जगह दिव्यांग शब्द का उपयोग करना, उनके प्रति सम्मानसूचक है। लेकिन इस दिशा में आज भी जनजागरण की जरूरत है। दिव्यांगों के प्रति समभाव-आदर भाव की भावना का उदय हो, यह संदेश सभी तक पहुंचाने के लिए अंतर्राष्ट्रीय दिव्यांग दिवस एक महत्वपूर्ण मौका हो सकता है।

दिव्यांगों के प्रति सामाजिक उपेक्षा के भाव को मिटाने और उनके जीवन के तौर-तरीकों को और बेहतर बनाने के लिए समाज के सभी अंगों को एकजुट

होकर काम करना पड़ेगा। दिव्यांगों के जीवन स्तर को बेहतर बनाने के लिए सरकार की ओर से अनेक योजनाए हैं। इन योजनाओं को उन तक पहुंचाने की जिम्मेदारी सिर्फ सरकार की ही नहीं हम सभी की है। दिव्यांगों को सरकारी सहायता मिलना उनका अधिकार है। उनको राष्ट्र की मुख्यधारा में शामिल करने और राष्ट्रीय मानव संपदा में बदलने के लिए सरकारी योजनाओं को उन तक पहुंचाना ही होगा। एक अनुमान के मुताबिक विश्व की करीब 15 प्रतिशत जनता दिव्यांग है। दिव्यांग विश्व की सबसे बड़ी अल्पसंख्यक आबादी के तहत आते हैं और उनके लिए उचित संसाधनों और अधिकारों की कमी के कारण उन्हें जीवन के हर एक कदम पर ढेर सारी बाधाओं का सामना करना पड़ता है। मैं यह नहीं कहता दिव्यांगों के प्रति हमदर्दी अथवा दया का भाव न रखें, मेरा मानना है कि दिव्यांगों के प्रति आप अपना व्यवहार बिल्कुल वैसा ही रखें, जैसा आप अपने अन्य मित्र अथवा जानने वालों के प्रति रखते हैं। दिव्यांगों के आत्मबल को बढ़ाने के लिए सरकारी योजनाओं की नहीं समाज के मित्रवत व्यवहार की जरूरत है। सरकारी योजनाएं किसी दिव्यांग को चलना तो सीखा सकती है, मगर उसका आत्मबल उसे दौड़ना सीखा सकता है। उसका यह आत्मबल उसके प्रति समाज के व्यवहार और अपनेपन से ही पैदा हो सकता है।

ओ मोर आपोनार देश

लखीनाथ बेजबरुवा द्वारा रचित 'ओ मोर आपोनार देश' संगीत के प्रति असमवासियों के मन में वैसी ही श्रद्धा व सम्मान की भावना है, जैसी राष्ट्र गीत 'जन-गण-मन अधिनायक' के प्रति पूरे देशवासियों में है। ओ मोर आपोनार देश को असम के जातीय संगीत का दर्जा हासिल है। कुछ दिन पहले धुबड़ी जिले के बिलापीपाड़ा के एक अंदरूनी गांव के विद्यालय के विद्यार्थियों द्वारा इस संगीत को विकृत रूप से प्रस्तुत करने का वीडियो सोशल मीडिया पर वायरल हुआ, तो राज्य के बुद्धिजीवी-साहित्यकार-पत्रकारों की पेशानियों पर बल पड़ गए। बुद्धिजीवी वर्ग में इसको लेकर चिंता की लहर का दौड़ना स्वाभाविक था, क्योंकि कोई भी नहीं चाहता कि असम के जातीय संगीत के सम्मान को लेकर किसी भी प्रकार का खिलवाड़ अथवा लापरवाही हो। स्कूल के विद्यार्थियों के साथ जुड़ा होने के कारण यह मामला और भी गंभीर हो गया। सवाल यह भी उठा कि क्या हमारी युवा पीढ़ी अपने ही जातीय संगीत के असली स्वरूप और सम्मान को भूलने लगी है। हमारे जातीय संगीत के साथ राज्य के सभी नागरिकों की भावनाएं-संवेदनाएं जुड़ी हुई है और इसमें किसी भी प्रकार की छेड़छाड़ असहनीय है। सभी को पता है कि काफी चिंतन-मनन के बाद हमारे जातीय संगीत को एक सुर दिया गया था। इसके हर शब्द के साथ सामंजस्य रखते हुए सुर की रचना की गई थी। सरकार की ओर से भी यह स्पष्ट निर्देश है कि कोई भी असम के जातीय संगीत को विकृत रूप में प्रस्तुत नहीं कर सकता। रसराज लखीनाथ का यह गीत आज भी असमवासियों को जीवंत बनाए हुए है। लिहाजा इसको विकृत रूप में प्रस्तुत करना एक तरह से हमारे रसराज का अपमान करने जैसा है।

बिलासीपाड़ा के अंदरूनी गांव के एक शिक्षण संस्थान में विकृत रूप से प्रस्तुत किए गए जातीय संगीत का वीडियो वायरल होते ही बुद्धिजीवी वर्ग में अफरा-तफरी मच गई, मगर यह स्पष्ट नहीं हो पा रहा था कि आखिरकार यह वीडियो है

किस शिक्षण संस्थान का और यह संस्थान राज्य के किस जिले में कौन सी जगह पर स्थित है। बाद में एक निजी चैनल के पत्रकार ने यह विद्यालय खोज निकाला। विद्यालय के शिक्षक-विद्यार्थियों से पूछने पर यह बात भी सामने आई कि उनमें से किसी को भी जातीय संगीत के सुर की जानकारी नहीं है। यह अपने आप में एक चिंताजनक बात थी कि असम के विद्यार्थियों को तो दूर, शिक्षकों को भी जातीय संगीत के सुर का पता नहीं है। इस बात से यह सवाल भी सामने आया कि कहीं आज के शिक्षक-विद्यार्थी असम के साहित्य, संस्कृति और परंपराओं से कटते तो नहीं जा रहे हैं। असम के साहित्य, संस्कृति और परंपराओं को आगे ले जाने की जिम्मेदारी जिनके कंधों पर है, वही यदि इससे अनजान रहे तो आने वाले असम की तस्वीर चिंता तो पैदा करती ही है। स्कूल के शिक्षक-विद्यार्थियों की इस अज्ञानता ने कई सवालों को खड़ा कर दिया। कहीं शिक्षक-विद्यार्थी झूठ तो नहीं बोल रहे है। उनकी कही बातों पर कितना यकीन किया जाए। इसके लिए किसको जिम्मेदार ठहराया जाए और सबसे बड़ा सवाल एकाएक सामने आई इस स्थिति से कैसे निपटा जाए। क्योंकि इस पूरे मामले के साथ असम और असमिया का स्वाभिमान जुड़ा हुआ था। इसको यदि नजरअंदाज किया जाता तो यह उससे भी बड़ी भूल मानी जाती। जातीय संगीत के सुर को लेकर विद्यार्थियों की अज्ञानता तो समझ में भी आती है, लेकिन शिक्षकों की अज्ञानता ढेर सारे सवाल खड़े करती है।

हमारे ही राज्य के एक निजी चैनल ने उक्त समस्या का शानदार समाधान किया। जातीय संगीत के निपुण गीतकार-संगीतकारों को निजी चैनल ने उक्त स्कूल में भेजा। इन गीतकार-संगीतकारों ने स्कूल के शिक्षक-विद्यार्थियों को जातीय संगीत का सही-सही ढंग से गायन का प्रशिक्षण दिया। धुबड़ी जिले के बिलासीपाड़ा के अंदरूनी अल्पसंख्यक बहुल गांव के बच्चों को जातीय संगीत की शिक्षा देने से ही इस समस्या का पूरी तरह से समाधान नहीं होगा। इस घटनाक्रम से उत्पन्न सवाल की जड़ तक तो हमें जाना ही होगा। क्या यह मान लिया जाए कि राज्य की एक आबादी हमारे जातीय संगीत अथवा कला-साहित्य-संस्कृति-परंपराओं के बारे में नहीं जानती अथवा इन्हें भूलने लगी है। यदि ऐसा है तो इसके बिलासीपाड़ा के एक स्कूल तक ही सीमित नहीं समझना चाहिए। राज्य की समस्त जनता तक हमारे जातीय संगीत अथवा कला-साहित्य-संस्कृति-परंपराओं की जानकारी पहुंचनी चाहिए और यह जिम्मेदारी आपको- हम सभी को मिलकर उठानी होगी।

क्यों बढ़ रहा है हाथी-मनुष्य का संघर्ष ?

राज्य के विभिन्न हिस्सों में हाथी-मनुष्य के बीच का संघर्ष क्रमशः बढ़ता ही जा रहा है। कहीं हाथियों के झुंड गरीबों के घरों को उजाड़ रहे हैं तो कहीं खड़ी फसलों को बरबाद कर रहे हैं। खड़ी फसल के बर्बाद होने के कारण किसानों के घरों में भी भूखमरी पैर पसारने लगी है। हाथियों के हमलों के कारण जहां एक ओर मनुष्य परेशान है, वहीं मनुष्यों द्वारा जंगलों का सफाया कर कंक्रीट के जंगल खड़े कर लेने की वजह से जंगली हाथियों को भी अपनी जान से हाथ धोना पड़ रहा है। गुवाहाटी के आसपास रेल की चपेट में आने से हाथियों के मारे जाने की घटनाएं अक्सर समाचारों की सुर्खियां बनती रहती है। हाथियों के आवाजाही वाले कारिडोर के बीच में रेल पटरियां बिछाने अथवा कंक्रीट की दिवार आदि खड़ी करने के कारण यह स्थिति पैदा हुई है। इसके अलावा कम होते जंगलों ने भी हाथियों के रहने के स्थान के दायरे को काफी कम कर दिया है। इस कारण भी कई बार जगंली हाथियों के झुंड जन-बस्तियों में निकल आते हैं।

हाथी-मनुष्य के बीच संघर्ष की इस स्थिति ने प्रकृतिप्रेमियों से लेकर पर्यावरण प्रेमी और समाज शास्त्रियों को चिंता में डाल रखा है। इस बिंदु पर सभी एकमत हैं कि हाथियों की रोजमर्रा की गतिविधियों में किसी भी प्रकार की रुकावट न डालकर ऐसी संघर्ष की स्थिति से काफी हद तक बचा सकता है। हाथी-मनुष्य के बीच के संघर्ष की वजह हाथी नहीं मनुष्य ही है। पहाड़ी इलाकों में पसरे जंगलों का सफाया कर उस जगह यदि बस्तियां बसाई जाएगी तो हाथी, तेंदुओं का तो उधर आना-जाना लगा ही रहेगा। बेहतर स्थिति तो यही है कि हाथी और मनुष्य दोनों ही अपने-अपने दायरे में रहें और इसके लिए जरूरी उपाय भी किए जाएं। इस बात को दोहराने की जरूरत नहीं है कि जंगली हाथियों का झुंड जब किसी गरीब के घर को उजाड़ता है अथवा किसी किसान की खड़ी फसल को नष्ट करता है तो उस गरीब के समक्ष कैसी विकट स्थिति पैदा होती है। मगर, हमें इस पर भी विचार करना पड़ेगा कि किसी मानवीय भूल अथवा लापरवाही की वजह से जब किसी

हाथी की अकाल मृत्यु होती है तो प्रकृति-पर्यावरण को कितना नुकसान पहुंचता होगा। राज्य के पहाड़ी व जंगल बहुल इलाकों के किसानों को बाढ़-कटाव से जितना डर लगता है, हाथियों के उत्पात से भी उतना ही डर लगता है।

ऐसी स्थिति ने किसान-हाथियों को एक-दूसरे के आमने-सामने ला खड़ा किया है। किसान अपनी खेती-अपने घरों को हाथियों के प्रकोप से बचाने के लिए नए-नए हथकंडे अपना रहे हैं। कहीं बिजली के तार से खेत-घरों को घेर दिया जाता है तो कहीं आसपास गहरे गड्ढे खोद दिए जाते हैं। ऐसे बिजली के तार के स्पर्श में आकर अथवा गड्ढे में गिरकर हाथी के मारे जाने की खबरें भी कभी-कभी देखने-पढ़ने को मिलती है। वन्य जंतुओं के अंगों की तस्करी करने वालों से भी इन हाथियों को कम खतरा नहीं है। हाथियों के मूल्यवान दांत-नाखून आदि अंग हमेशा से ही इन तस्करों के लालच का केंद्र रहे हैं। बाढ़ के दौरान ऐसे तस्करों की अवैध गतिविधियां और भी बढ़ जाती है। राज्य पहाड़ी जिलों के अलावा पड़ोसी राज्य नगालैंड, असम-अरुणाचल, असम-मेघालय के सीमावर्ती गांवों में तो हाथी के उत्पात से डरे लोग अपनी रातें भी जाग-जागकर काटते हैं। जोरहाट, नगांव, कार्बी आंग्लोंग, चिरांग, बंगाईगांव, बाक्सा, लखीमपुर, शोणितपुर, दरंग आदि जिलों में हाथी-मनुष्य संघर्ष की सर्वाधिक घटनाएं देखने-सुनने को मिलती है। हाथी-मनुष्य के बीच बढ़ते संघर्ष को कम करने में वन विभाग भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर सकता है। जंगली हाथी के बस्तियों में घुस आने की खबर वन विभाग को दिए जाने के घंटों बाद भी वन विभाग के अधिकारी-जवान घटनास्थल पर नहीं पहुंचते। इसे वन विभाग के अधिकारियों की लापरवाही से जोड़कर देखा जाना चाहिए। कभी-कभी वन अधिकारी-जवान काफी देर बाद घटनास्थल पर पहुंचते हैं तो सब कुछ खत्म हो चुका होता है। वन विभाग की लेटलतीफी की वजह से जनता में तनाव चरम पर होता है, जिस पर काबू पाने के लिए कभी-कभी तो हवा में गोलियां चलाने तक की नौबत आ जाती है। कभी-कभी वन जंतु तस्करों के हाथों वनकर्मियों को अपनी जान तक गंवानी पड़ती है। पिछले पांच सालों में सैकड़ों की संख्या में हाथी और आमलोगों के मारे जाने की अलग-अलग घटनाएं यह साबित करती है कि हाथी-मनुष्य के बीच के संघर्ष के मसले को हलके में तो हरगिज नहीं लिया जाना चाहिए।

रसराज के मकान का संरक्षण

साहित्यरथी लखीनाथ बेजबरुवा के उड़ीसा के संबलपुर में स्थित प्राचीन निवासस्थल को सड़क निर्माण में रुकावट बताकर तोड़े जाने का निर्णय लिए जाने संबंधी समाचार जैसे ही मीडिया में आया, राज्य भर में विरोध की लहर दौड़ गई। असम के लोगों की भावनाएं और विरोध के प्रति सम्मान प्रदर्शित करते हुए उड़ीसा सरकार ने भी अंतत: इस घर को बजाए तोड़ने के इसको संरक्षित करने का फैसला लिया। राज्य के प्रात: स्मरणीय लोगों में से एक रसराज लखीनाथ बेजबरुवा के इस ऐतिहासिक घर को संरक्षित कर रखने का उड़ीसा सरकार ने जो फैसला किया है, उसकी जितनी भी प्रशंसा की जाए कम है। असमवासियों की भावना-संवेदना तथा असम के गौरव कहे जाने वाले रसराज की उड़ीसा स्थित स्मृति को संजोकर रखने के लिए प्रस्फुटित जनभावना का आदर करते हुए उड़ीसा सरकार ने जो प्रशंसनीय फैसला लिया, उसमें असम के कई व्यक्ति-संगठनों की भी भूमिका कम महत्वपूर्ण नहीं थी। असम सरकार को जो काम दशकों पहले कर लेना चाहिए था, वह अगर उसने कर लिया होता तो साहित्यरथी के निवास को लेकर आज यह समस्या खड़ी नहीं होती। सच्ची बात तो यह है कि पहले की सरकार ने सोचा ही नहीं था कि रसराज लखीनाथ बेजबरुवा की स्मृति को संरक्षित कर रखा जाना चाहिए। संभवत: पहले की सरकार के दिमाग में यह बात रही होगी कि रसराज के संबलपुर स्थित घर को संरक्षित कर आखिरकार क्या फायदा होने वाला है। जब पूरे विश्व भर में ऐतिहासिक धरोहरों को संभालने-संरक्षित कर रखने की कवायद चल रही है, वैसे में एक ऐतिहासिक इमारत के संरक्षण के लिए असम में व्यक्ति-संगठनों

द्वारा आंदोलन छेड़ा जाना एक चिंताजनक विषय है। इस बात का जिक्र करने की जरूरत नहीं रह गई है कि सही देखभाल और संरक्षण की कमी के कारण असम के बहुत से कृतिचिन्ह, ऐतिहासिक इमारतें आदि नष्ट हो चुकी है। ऐसे खस्ताहाल कृतिचिन्हों में सिर्फ नाट्यकार-साहित्यकार की ही नहीं अन्य कृतिचिन्ह आदि भी शामिल हैं। सरकार को यह बात अच्छी तरह से समझ लेनी चाहिए कि ऐसी ऐतिहासिक इमारतें अथवा कृतिचिन्ह एक बार नष्ट हो गए तो फिर किसी भी कीमत पर इन्हें हासिल नहीं किया जा सकेगा। अब तक हमने ऐसी बहुत सी अमूल्य संपदाओं को खोया है, जिनकी सालों तलाश करने के बाद भी अब तक हम कुछ हासिल नहीं कर पाए हैं।

असम साहित्य सभा के मुख्य भवन को जोरहाट में संरक्षित कर रखने को एक असम के इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना कह सकते हैं, मगर यह बहुत ही दुख की बात है कि असम साहित्य सभा को धन्य करने वाले साहित्यकारों की अमूल्य कृति-संपत्ति का आजतक पूरी तरह से संरक्षण नहीं हो गया है। पद्मनाथ बरगोहाईं से शुरू कर असम साहित्य सभा के अन्य पूर्व अध्यक्षों द्वारा व्यवहार में लाई गई वस्तुओं से लेकर साहित्य-रचना किसी का भी संरक्षण होता नजर नहीं आया। आज भी बहुत से साहित्यकार उपेक्षित हैं। साहित्य सभा का दायरा सीमित है और सरकार की लगता है दृष्टि सीमित है। साहित्य सभा तय सीमा में ही काम कर सकती है, जबकि सरकार यदि चाहे तो बहुत कुछ कर सकती है। सुधाकंठ भूपेन हजारिका का समाधि क्षेत्र को इसकी एक मिसाल कहा जा सकता है। इसके साथ यह सवाल भी उठता है कि राज्य के अन्य किसी कलाकार के समाधिक्षेत्र को उस हिसाब से विकसित क्यों नहीं किया गया। सरकार की इस उपेक्षा भावना के कारण ही आज हमारे बहुत से महापुरुष स्मृति के दायरे से बाहर हो गए हैं। ऐसे महान पुरुषों की स्मृति की रक्षा के लिए कोई व्यक्ति-संगठन आगे आने को तैयार नहीं है। वैसे भी जो काम सरकार को, सरकार के सांस्कृतिक विभाग को करना चाहिए, उस काम को कराने के लिए व्यक्ति-संगठन आंदोलन क्यों करे। सरकार अपनी यह जिम्मेदारी स्वयं इच्छा से क्यों नहीं पूरी कर सकती। अब ऐसे सवाल हवाओं में तैरने लगे हैं, जिसका जवाब सरकार को आज नहीं तो कल देना ही होगा।

भक्तिरस, रासलीला और श्रीमंत शंकरदेव

शरत काल का मतलब ही है दुर्गोत्सव-दीपावली के खत्म होते ही भक्तिरस से सरोबार श्रीकृष्ण रासलीला के दिनों का आगमन। प्रकृति भी भक्तिरस में डूबे इस माहौल का स्वागत करने के लिए अपनी सारी सौंदर्यता धरा पर बिखेर देती है। शरत ऋतु की दुधिया चांदनी रात में श्रीकृष्ण द्वारा गोपियों के साथ मिलजुल कर रचाई रास का धार्मिक और सामाजिक महत्व आज की आधुनिकता के इस दौर में भी कम नहीं हुआ है। किसी असमिया वैष्णव कवि ने लिखा भी है 'शरत कालर रात्रि, अति वितोपन, रास क्रीड़ा करिते कृष्णर भैला मन।' यमुना की चांदी जैसी रेत पर गोपियां श्रीकृष्ण से अकेले में मिलने के लिए व्याकुल हो रही थीं। हर एक गोपी चाहती थी कि श्रीकृष्ण सिर्फ उसके साथ ही दिल खोलकर प्रेम करे। मगर, इन गोपियों को श्रीकृष्ण की लीला के बारे में पता नहीं था। अंतर्यामी श्रीकृष्ण इसलिए गोपियों के साथ समय बिताने के लिए यमुना के किनारे शरत की मधुर निशा में मुरली बजाकर एक ऐसे माहौल का सृजन किया करते थे, जिसमें श्रीकृष्ण के अलावा केवल गोपियां ही विचरण करती थीं। गोपियां भी उस माहौल में बजाय अपने सुख की बात सोचने के सिर्फ भगवान श्रीकृष्ण का

ही ध्यान किया करती थी। गोपियों का भी श्रीकृष्ण को छोड़ संसार की किसी अन्य वस्तु के प्रति किसी भी प्रकार का आकर्षण नहीं रह गया था। महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव ने कीर्तन घोषा में इसका बड़े ही सुंदर ढंग से वर्णन किया है। श्रीमंत शंकरदेव ने गोपियों की मनोदशा का इस तरह से वर्णन किया है-

'जगतरे बंधु आत्मा तुमि
समस्त धर्मरे आपुनि तुमि
नालागे पति पुत्र दुख हेतु
हुवाय प्रसन्न गरुड़ केतु।'

दूसरी ओर कीर्तन घोषा में रासक्रीड़ा के संबंध में श्रीमंत शंकरदेव ने एक अतुलनीय व्याख्या प्रस्तुत की है। शरत की मधुर यामिनी को और अधिक मधुर बनाने के लिए इस तरह से वर्णन किया गया है

'दुयो गोपी माजे एक भैलंत माधव।
प्रवर्तिला तथा रासक्रीड़ा महोत्सव॥
भैलंत मंडलाकार हाते गले धरि।
सबे बोले मोकेसे आलिंगि आछे हरि॥'

आमतौर पर कुछ लोग का कहना है कि रासलीला को काम-भावना का प्रकटीकरण है। पति-पुत्र के रहने के बाद भी गोपियां श्रीकृष्ण को प्राप्त करने के लिए दौड़कर आकर यमुना के किनारे नृत्य-गान किया करती थी। श्रीकृष्ण भी सभी की जैसी मनोकामना होती थी, उस गोपी को उसी तरह से संतुष्ट किया करते थे। रासलीला के दौरान किए जाने वाले नृत्य सभी को देखकर यह तो नहीं कहा जा सकता कि इनमें काम-भाव नहीं है, लेकिन श्रीमंत शंकरदेव ने इस प्रकार के नृत्य को कामगंधहीन नृत्य की संज्ञा दी है। गोपियों की गृहस्थी-संसार रहने के बावजूद इस प्रकार श्रीकृष्ण को प्राप्त करने की व्याकुलता के अंदर उनकी भक्ति और प्रेम की स्वर्गीय अनुभूति छिपी हुई थी। गोपियों का श्रीकृष्ण प्रेम स्वर्गीय था। इसीलिए श्रीमंत शंकरदेव इसे काम-भावना युक्त नृत्य न कहकर अपने कीर्तन घोषा में शृंगार रस की ही संज्ञा दी है। उन्होंने अपने कीर्तन घोषा में लिखा है-

'शृंगार रसे जार आछे रति
आके शुनि होक निर्मल मति।'

गोपियों के मन की बातों को समझते हुए श्रीकृष्ण के यमुना के किनारे

अनंत केली रासक्रीड़ा करने के संबंध में श्रीमंत शंकरदेव ने इस प्रकार से वर्णन की है-

युमना बालि देखी सुकोमल।
पद्मगंधि बाते अति शीतल॥
गोपीगन लइया नामिला तात।
करिला क्रीड़ा कृष्णे असंख्यत॥
बाहु मेलि काको आलिंगि धरि।
कारो तननखे परशे हरि।
मुख चाया कारो तुलंत हास।
मातंत काको करि परिहास॥'

ब्रजनारी थीकृष्ण की प्राणागता थीं। कृष्ण को हर क्षण, हर पल अपने सामने, अपने निकट पाने के लिए व्याकुल रहती थी। श्रीकृष्ण के प्रति उसने अपना सब कुछ समर्पण कर दिया था। इसीलिए श्रीमंत शंकरदेव ने वर्णन किया है-

'जगतरे बंधु आत्मा तुमि।
समस्त धर्मेर आपूनि तुमि॥
तुमि आत्मा हेन जानि संप्रति।
तोमातेसे करे भकते रति॥'

काम पीड़ितों के मन से काम-भाव दूर कर सच्चे प्रेम का मार्ग दिखाने के लिए ही श्रीकृष्ण ने यमुना की रेत पर रासलीला शुरू की थी। यहां इस बात की भी उल्लेख किया जाना चाहिए कि विभिन्न क्रीड़ाओं के बाद ही महारास का प्रारंभ हुआ था। हालांकि रासक्रीड़ा के बारे में विभिन्न धर्मग्रंथों में अलग-अलग तरह से व्याख्या की गई है। 'हरिवंश', 'विष्णु पुराण', 'भागवत दशम स्कंध', 'श्रीमद्भागवत', 'कीर्तन घोषा' आदि में रासक्रीड़ा की अलग-अलग तरीके से व्याख्या की गई है। अलग-अलग व्याख्याओं के बीच इस बात से किसी को इंकार नहीं है, मगर रासक्रीड़ा में जीवन के सुख-दुख की झलक देखी जा सकती है।

इसीलिए कहा गया -

वृंदावने आनंदे करिया रासक्रीड़ा।
गुचाइला गोविंद गोपीकार कामपीड़ा॥

वाकिंग जोन : एक सराहनीय प्रयास

गुवाहाटी शुक्रेश्वर घाट से भरलुमुख श्रीमंत शंकरदेव उद्यान तक के महात्मा गांधी रोड को प्रत्येक रविवार की शाम 4 बजे से रात 10 बजे तक वाकिंग जोन (भ्रमण क्षेत्र) घोषित किए जाने संबंधी सरकार के फैसले का स्वागत किया जाना चाहिए। विगत 22 अक्टूबर को गाजे-बाजे के साथ इस योजना का औपचारिक रूप से शुभारंभ किया गया। इससे महानगरवासियों को अपने परिवार संग सप्ताह में कम से कम एक बार न सिर्फ लंबी सड़क पर पैदल चलने का मौका मिलेगा, बल्कि वह लोग महात्मा गांधी रोड के किनारे से होकर बहने वाले महाबाहु ब्रह्मपुत्र के अनुपम सौंदर्य का भी आनंद उठा सकेंगे। इस योजना को अमली जामा पहनाने के लिए गुवाहाटी विकास विभाग के मंत्री डॉ. हिमंत विश्व शर्मा की जितनी भी प्रशंसा की जाए कम है। रविवार को जब यह क्षेत्र वाकिंग जोन के रूप में तब्दील रहेगा, तब इस इलाकेमें किसी भी प्रकार के वाहन के प्रवेश की इजाजत नहीं होगी। इस दौरान एमजी रोड पर आसानी से टहलते हुए ब्रह्मपुत्र के सौंदर्य का आनंद लेने के

साथ ही आसपास लगी व्यंजनों की दुकानों पर लजीज पकवानों का भी आनंद लिया जा सकेगा।

इस योजना को सरकार की दूरगामी सोच के साथ जोड़कर देखा जाना चाहिए। इसके सफल होने के बाद महानगर की अन्य कई सड़कों को भी अल्पावधि के लिए वाकिंग जोन के रूप में घोषित किए जाने पर विचार किया जा सकता है। इससे न सिर्फ लोगों को पैदल चलने का मौका मिलेगा, बल्कि बच्चे भी किसी वाहन की चपेट में आने के भय से मुक्त होकर सड़क पर खेलकूद सकेंगे। सबसे बड़ी बात वाकिंग जोन में चहलकदमी करते हुए लोग अपने परिजनों के साथ अपने मन की वह सारी बातें कर सकेंगे, जो घर में अधिक सदस्य रहने के कारण आमतौर पर नहीं कर पाते। वाकिंग जोन, वह भी ब्रह्मपुत्र के किनारे, सेहद पसंद लोगों के लिए सोने पे सुहागा साबित हो सकता है। ब्रह्मपुत्र की जलराशि को छूकर आती ठंडी बयार, स्वच्छ माहौल, प्रदूषण मुक्त पर्यावरण सभी को अपनी ओर आकर्षित करेगा, इसमें कोई संदेह नहीं है। सरकार की यह सोच लंबे समय तक साकार होती रहे, इसके लिए जरूरी है कि आमजनता भी स्वयं को इस योजना के साथ खुद को जोड़े, क्योंकि इसकी सफलता का पूरा दामोदार ही जनता पर निर्भर है। सरकार द्वारा बनाए गए वाकिंग जोन में यदि लोग वाकिंग करने के लिए आएंगे ही नहीं तो यह क्षेत्र कितने दिन वाकिंग जोन रह पाएगा। जनता के स्वास्थ्य को ध्यान में रखकर वाकिंग जोन बनाया गया है और यह बात जनता को भी समझाने की जरूरत है। इस बात में कोई संदेह नहीं है कि एक अकेले महात्मा गांधी रोड का वाकिंग जोन पूरे महानगरवासियों की जरूरत को पूरा नहीं कर सकता। लिहाजा प्रयोग के तौर पर शुरू की गई इस योजना की सफलता ही इसकेविस्तार की गारंटी है।

इस योजना के बाद अब राज्य सरकार को महानगर में साईक्लिंग संस्कृति को बढ़ावा देने की दिशा में चिंतन करना चाहिए। साईक्लिंग संस्कृति न सिर्फ महानगर के प्रदूषण को कम करने में मददगार साबित होगी, बल्कि जाने-अनजाने में साइकिल चालकों के लिए व्यायाम का एक शानदार साधन भी साबित होगी। इस योजना के अध्ययन के लिए उत्तर प्रदेश सरकार से भी संपर्क

किया जा सकता है। उत्तर प्रदेश के अलावा देश के अन्य कई शहरों में भी साइक्लिंग संस्कृति है। ऐसा नहीं है कि गुवाहाटी में लोग साइकिल नहीं चलाते, मगर गुवाहाटी की ट्रैफिक का जो हाल है लोग साइकिल चलाने से डरते हैं कि कहीं किसी दुर्घटना की चपेट में न आ जाएं। असम सरकार साइकिल चालकों के लिए सड़क के किनारे अलग से साइक्लिंग ट्रैक बनाकर इस काम की शुरुआत कर सकती है। महानगर के सभी स्कूल-कॉलेज के विद्यार्थी ही अगर साइकिल पर स्कूल-कॉलेज आने-जाने लगे तो यह अपने आप में एक क्रांतिकारी कदम होगा। वैसे भी लोगों को हर एक काम के लिए सरकार के भरोसे नहीं बैठे रहना चाहिए। बात चाहे वाकिंग की हो अथवा साइकिल चलाने की, दोनों ही जनता के स्वास्थ्य से जुड़ी आदतें हैं। हम यदि चाहें तो सुबह-सुबह, जब सड़क पर यातायात कम और मौसम सुहाना रहता है, वाकिंग और साइक्लिंग का आनंद उठा सकते हैं। पहले हमें अपनी आदतों में सुधार लाना होगा, क्योंकि बिना आदत में सुधार लाए ऐसी सरकारी योजना सफल नहीं हो सकती।

ज्ञान गंगा का उद्‌गम स्थल है पुस्तक मेला

लोगों का ग्रंथ-पुस्तकों के प्रति प्राचीनकाल से ही आकर्षण रहा है। 1439 में जर्मनी के टेंग किला ने लकड़ी के छापा प्रिंटिंग मशीन बनाकर इस ऊर्ध्वाधर सर्पिल हाथ प्रेस ब्रश का निर्माण किया था, हालांकि यह संरचना सरल है, लेकिन इसका उपयोग 300 वर्षों के लिए किया गया है। 1812 में जर्मनी के कोएनिग ने पहली बार ताईचुंग को प्रिंटिंग मशीन छपवाया। 1847 में संयुक्त राज्य अमेरिका होय ने रोटरी प्रेस का आविष्कार किया। इसी के साथ पूरे विश्व धर में पुस्तक प्रकाशन के माध्यम से एक नवजागरण का शुभारंभ हुआ। इससे पहले अध्ययन में रुचि रखने वाले विद्वान-पाठक विभिन्न जानकारियों-ज्ञान की बातों को ताम्रपत्र अथवा पेड़ के पत्तों में लिखकर रखते थे। कागज और छपाई मशीन का अविष्कार होने से पहले भी सांचीपत्र जैसे पत्तों पर लिखी गई विभिन्न पुस्तकों ने पूरी दुनिया को हिलाकर रखने का काम किया था। रामायण, महाभारत, बाइबल, कुरान आदि धार्मिक पुस्तकें आज भले ही छापेखाने में छपने लगी हों, लेकिन सांचीपत्रों में लिखे गए उक्त धार्मिक ग्रंथों की अहमियत आज भी कम नहीं हुई है। जब से इंसान नए-नए विचारों पर चिंतन-मंथन करने लगा, वह अपने ज्ञान और विचारों को जंगली पत्तों और पत्थरों पर लिपिबद्ध भी करने लगा। आज भी देश के कई स्थानों पर ऐसी गुफाएं मिल जाएंगीं, जिन पर आम आदमी के समझ में न आने वाली भाषा में कुछ लिखा हुआ है।

जैसे-जैसे समाज का विकास हुआ, लिखने-छापने की कला का भी विकास हुआ। पहले जो बातें सांचीपात अथवा पत्थरों पर अंकित की जाती थी, अब वह पुस्तकों में लिखी जाने लगी। छपाई मशीन के आविष्कार से सिर्फ जर्मनी

में ही नहीं पूरे विश्व में नवजागरण का शुभारंभ हुआ। आज के दिन विश्व भर में रोजं लाखों पुस्तकें प्रकाशित होती है और करोड़ों पुस्तकें पढ़ी व लिखी जाती है। इन पुस्तकों की बदौलत ही एक देश के नागरिक को दूसरे देश के बारे में जानने-पढ़ने व समझने का मौका मिलता है। हजारों साल पहले लिखे गए ग्रंथ आज हमारे लिए अमूल्य संपदा है, मगर सैकड़ों साल पहले एक तय दायरे के लोगों को छोड़ अन्य किसी के लिए ऐसे ग्रंथों तक पहुंच पाना संभव नहीं था। अब वक्त बदल चुका है। भारत के किसी गांव में बैठकर आप रूसी लेखक मैक्सिम गोर्की के लोकप्रिय उपन्यास 'मां' अथवा शेक्सपियर के 'रोमियो-जुलियट' को पढ़ सकते हैं। चीनी घुमंतु ह्वेनसांग जैसे कई पंडित-विद्वानों ने एक देश से दूसरे देश की पदयात्राएं कर ज्ञान हासिल कर उसे जनता में बांटने के कष्टसाध्य प्रयास जरूर किए थे, मगर उस दौर में सब कुछ एक सीमित दायरे में ही था। इस ज्ञान को सभी लोगों तक पहुंचाना तब संभव नहीं था। इसके बावजूद जैसे-तैसे वे अपने अनुभवों का लिपिबद्ध कर गए और आज हम उनकी इसी दूरदर्शिता का पुस्तक के रूप में फायदा प्राप्त कर रहे हैं।

विभिन्न देश-स्थान की कला-संस्कृति सहित विभिन्न पहलुओं से जुड़ी विभिन्न प्रकार की पुस्तकें बड़ी संख्या में लिखी भी जा रही है और उन्हें प्रकाशित भी किया जा रहा है। इसके बावजूद सभी प्रकार की पुस्तकें सभी लोगों की पहुंच से बाहर है। एक व्यक्ति चाह कर भी विभिन्न स्थानों पर लिखी जाने वाली पुस्तकों का घर बैठे संग्रह नहीं कर सकता। कोई ऐसा करना भी चाहे तो इसके लिए वक्त और पैसे दोनों की जरूरत है। किसी के पास वक्त है तो पुस्तकें संग्रह करने के लिए पैसे नहीं है और किसी के पास पैसे है तो वक्त नहीं। ऐसे लोगों को ध्यान में रखकर ही पुस्तक मेलों का आयोजन किया जाता है। एक ऐसा मेला, जहां पाठक, ज्ञानी-गुणी अपनी मनपसंद की पुस्तकों को देख-पलट सके और चाहें तो खरीदकर पढ़ भी सके। अब ऐसे मेले असम में भी होने लगे हैं। गुवाहाटी में पिछले कई दशकों से पुस्तक मेलों का हर साल आयोजन होते रहा है। अब तो राज्य के अन्य हिस्सों में भी पुस्तक मेले होने लगे हैं। ऐसे पुस्तक मेलों में लेखक-पाठक, पुस्तक प्रकाशकों के लगने वाले जमावड़े को देख इसके महत्व को समझा जा सकता है। पुस्तक मेले को यदि ज्ञान गंगा का उद्गम स्थल कहा जाए तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी।

याद हैं जयंत हजारिका

आहिस्ता-आहिस्ता कलाकार को बिसरा देना इंसानी फितरत होती है। कलाकार चाहे कितना भी प्रिय-चहेता क्यों न हो, वक्त गर्द उसकी यादों पर जम ही जाती है। असम के संगीत जगत के चमकते नक्षत्र जयंत हजारिका को भी लगता है नई पीढ़ी अब भूलने लगी है। सुधाकंठ भूपेन दा के भाई जयंत हजारिका के गले में मानो सुरों की देवी सरस्वती का ही निवास था। दोनों भाइयों के गाए गीत आज भी असमिया संगीत जगत के अनमोल धरोहर है। जयंत दा भी अपने भैया की तरह हरदम आम आदमी की ही बातें कहते थे। 20 अक्टूबर 1943 में जन्में जयंत हजारिका का निधन 1977 की 15 अक्टूबर को कोलकाता में हुआ। वे बहुत कम उम्र में ही चल बसे थे। लेकिन उनके गाए गीत आज भी अमर है। भूपेन दा ने कहा था 'भाईटी राणा बेहद स्पष्टवादी और मजबूत है, वह मित्रता के पुष्प की खोज में घूमता रहता था। उनका कंठ दर्द में डूबे लोगों की ही बातें कहा करता था।' आज के कई दशक पहले भूपेन दा ने अपने भाई के बारे में जो बातें कही थी, उनकी कही बातें आज भी असमिया संगीत जगत में जयंत दा के अमूल्य योगदान को स्मरण कराती है। उनकी असमय मौत से असम

के संगीत जगत को जो क्षति पहुंची, उसकी भरपाई आज तक नहीं हो पाई है। असम की भूमि में आने वाली सदियों तक नए-नए गायक कलाकार पैदा होते रहेंगे, मगर जयंत हजारिका की कमी का अहसास हमेशा ही बना रहेगा। उनके गाए अमर गीत सदैव असमिया संस्कृति को प्रज्ज्वलित किए रखेंगे।

भूपेन दा के छोटे भाई जयंत हजारिका सुर के कल्पतरु थे। अर्थात उनकी शरण में आकर सुर उसकी तान में ढल जाया करते थे, जैसा कि वे चाहते थे। वे दिल से कलाकार ही नहीं, दयालु भी थे। दर्द में डूबे व्यक्ति की मदद कर उनको एक अजीब सा सकून मिलता था। किसी की मदद करने में उनको स्वर्गीय सुख की अनुभूति होती थी। उनका ऐश्वर्य-सम्मान सब कुछ उनके दर्शक-श्रोताओं पर ही निर्भरशील था। उनकी सृजन का मूल थे उनके श्रोता। यही कारण है उन्होंने हमेशा ही अपने श्रोताओं को सबसे आगे रखा, खुद से भी आगे। अपने बड़े भाई सुधाकंठ भूपेन हजारिका के साथ जिस दिन वे जर्मनी में आयोजित संगीत महोत्सव में हिस्सा लेने गए थे, संभवत: उस दिन किसी ने सोचा भी नहीं होगा कि ये दोनों भाई वहां असम की ख्याति को किसी फूल की खुशबू की तरह चारों ओर बिखेर देंगे। तब जर्मनी के समाचार पत्रों में भी दोनों भाइयों द्वारा संगीत महोत्सव में किए गए संगीत प्रदर्शन की चर्चा जोर-शोर से की गई थी।

स्व. नीलकांत-शांतिप्रिया हजारिका के दस में से नौवीं संतान थे जयंत। जयंत उर्फ राणा का जन्म मंगलदै के बेगा नदी के किनारे स्थित एक किराए के घर में हुआ था। मात्र 9 साल की उम्र में माउथआर्गन बजाकर लोगों को मंत्रमुग्ध कर देने वाला जयंत ने हाईस्कूल में पढ़ने के दौरान ही विभिन्न वाद्य यंत्रों को बजाना सीख लिया था। बचपन से ही संगीत में रुचि रखने वाले इस बालक को पढ़ने-लिखने में तनिक भी दिलचस्पी नहीं थी। यह बालक पढ़ने में भले ही अत्याधिक मेधावी न हो, लेकिन 1957-58 में कामरूप अकादमी हाईस्कूल के वार्षिक सम्मेलन में 'माघोत देखोन उरुका नोहोय तुमि नोहोले' गीत प्रस्तुत कर सभी की नजरों में आया। मालूम हो कि डॉ. भूपेन हजारिका ने यह गीत मात्र पांच मिनट में लिखा था। सिर्फ तीन मिनट में सुरों में पिरोया गया यह गीत आज भी लोगों के हृदय को मृदु-मृदु स्पंदित करता है। हाथ और पांव की मदद से एक साथ तीन-तीन हारमोनियम बजाने में महारत हासिल जयंत हजारिका ने

वर्ष 1962 में पहला ग्रामोफोन रिकार्ड 'आगलि बताहे' रिकार्ड कराया था। मालूम हो कि वर्ष 1959-60 में उजान बाजार के एक भोज समारोह में 'सुगंधी पाखिला' के कवि हीरू दा की इस कविता को निर्मलप्रभा बरदलै ने सिर्फ तीन मिनट में दियासलाई के एक पैकेट पर लिखा था और तीन मिनट में ही जयंत दा ने इसका सुर बनाया था।

जयंत हजारिका की प्रतिभा में संगीत निदेशक, सुरकार, गीतकार, सृजनशील कलाकार सभी छिपे थे। यदि वे समय से पहले ही हमें छोड़कर न गए होते तो उनकी रचना, उनके गीतों से असमिया संस्कृति और भी अधिक समृद्ध होती। इतनी कम उम्र में ही उन्होंने बहुत से कालजयी गीत गाए। भूपेन हजारिका की 'मणिराम दैवान' फिल्म से उन्होंने इस दुनिया में पहला कदम रखा। बाद में 'लटीघटी', 'चिकमिक बिजुली' में भूपेन दा के साथ सहायक निदेशक बने, जबकि 'बनरीया फूल', 'वृष्टि', 'धर्मकाई', 'नियति' आदि फिल्मों में अपनी आवाज दी। उन्होंने भ्राम्यमान थिएटर में भी संगीत निर्देशन किया था। 1977 की सितंबर में दो दिन में ही उन्होंने ग्वालपाड़ा में लखमी थिएटर के छह नाटकों के लिए 11 गीत लिखे थे। इस महान कलाकार की कला को संजोकर रखना राज्य के सभी लोगों की जिम्मेदारी बनती है। सरकार को चाहिए कि जयंत हजारिका के नाम पर एक अनुसंधान केंद्र की स्थापना करे ताकि युवा पीढ़ी को इस महान कलाकार के बारे में बताया-समझाया जा सके।

दीपावली देती है अंधकार से प्रकाश की ओर यात्रा का संदेश

दुर्गोत्सव के बाद अब दीपावली हमारे द्वार पर दस्तक देने आ पहुंची है। दीपावली अर्थात अंधकार पर विजय प्राप्त करने वाला प्रकाश पर्व। अमावस की काली रात को चुनौती देते नन्हे-नन्हे दियों के हौसले और हिम्मत का पर्व है दीपावली। इसे सिर्फ आतिशबाजी और उपहार के लेने-देने के पर्व के रूप में देखना इसके संपूर्ण अर्थ को समझने में असफल होना होगा। दीपावली हमें अपने अंदर की यात्रा करने का संदेश देती है यानी की अंधकार से प्रकाश की ओर अज्ञानता से ज्ञानता की ओर निरंतर चलते रहने का पर्व है दीपावली। दीपावली से पूर्व घर की साफ-सफाई और रंगरोगन करने की परंपरा हमें यह संदेश देती है कि मन को साफ-सुथरा कर उसे चमका-दमका कर प्रकाश यात्रा के लिए निकल पड़ना है। यहां प्रकाश यात्रा को सिर्फ दियों की कतार अथवा रंगीन बल्बों की लड़ियों के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। भारतीय पर्वों की शृंखला में दीपावली का स्थान सबसे ऊपर माना जाता है।

दीपावली का सामाजिक और धार्मिक दोनों ही नजरिए से बहुत महत्व है। इस पर्व को दीपोत्सव भी कहा जाता है। उपनिषदों की आज्ञा है 'तमसो मा

ज्योतिर्गमय' अर्थात अंधेरे से ज्योति यानी की प्रकाश की ओर गमन करना। दीपावली को सिर्फ हिंदू ही नहीं सिख, बौद्ध तथा जैन धर्मावलंबी लोग भी मनाते हैं। जैन धर्म के लोग दीपावली को भगवान महावीर के महानिर्वाण दिवस के रूप में मनाते हैं।

हिंदुओं में मान्यता है कि रावण का वध करने के बाद अपने 14 साल का वनवास पूरा कर भगवान श्रीराम माता सीता और भाई लक्ष्मण के साथ वापस अयोध्या लौटे थे तो अयोध्यावासियों ने अपने घर के सामने घी के दिए जलाकर उनका स्वागत किया था। अयोध्या नगरी में जगमग करते दियों का प्रकाश इतना प्रचंड था कि कार्तिक मास की सघन काली अमावस्या की रात भी जगमगा उठी। उस दिन से हर भारतीय दीपावली अर्थात प्रकाश पर्व बड़े ही हर्षोल्लास के साथ मनाते आ रहे हैं।

दीपावली दीपों का त्योहार है। भारतीयों का विश्वास है कि सत्य की सदा जीत होती है, झूठ का नाश होता है। दीपावली यही चरितार्थ करती है कि दीपावली स्वच्छता व प्रकाश का पर्व है। कई सप्ताह पूर्व ही दीपावली की तैयारियां आरंभ हो जाती हैं। लोग अपने घरों, दुकानों आदि की सफाई का कार्य आरंभ कर देते हैं। घरों में मरम्मत, रंग-रोगन, सफेदी आदि का कार्य होने लगता है। लोग दुकानों को भी साफ-सुथरा कर सजाते हैं। दीपावली से पहले ही घर-मोहल्ले, बाजार सब साफ-सुथरे व सजे-धजे नजर आते हैं।

पिछले कई सालों में दीपावली मनाने के तौर-तरीकों में भारी बदलाव आया है। यह बदलाव न सिर्फ दीपावली के मूल सिद्धांतों पर कुठाराघात करता है, बल्कि सामाजिक दृष्टि से भी आदर योग्य नहीं है। बदलते वक्त के साथ तेल की बाती से प्रज्ज्वलित होने वाले दियों का स्थान चीन आयातित बिजली के रंगीन बल्बों की लड़ियों ने ले लिया है। इससे हमारे देश के कुटीर उद्योग पर सीधी मार पड़ी है। मिट्टी के दिए तथा अन्य पूजन सामग्री बनाने वाले कुम्हार के चाक बंद पड़े हैं। उनका रोजगार खत्म हो गया है, वहीं दूसरी ओर बिजली के सजावटी समान के आयात नाम पर देश के लाखों करोड़ों रुपए चीन जा रहे हैं। यही हालत आतिशबाजी की है। चीनी आतिशबाजी ने शिव-काशी अथवा बरपेटा-नगांव के आतिशबाजी उद्योग की कमर तोड़कर रख दी है। यह बात साबित हो जाने के बाद भी कि चीनी आतिशबाजी हमारे आंख-कान के साथ ही पर्यावरण के लिए नुकसानदेह है। हम चीन निर्मित आतिशबाजी का लोभ संवार नहीं पा रहे हैं। यही

वह क्षण है जब हमें अपने अंतर में उतरकर सोचना चाहिए कि आज की दीपावली से हमारा, समाज अथवा देश का किसका भला हो रहा है।

दीपावली अपने अर्थ को न खोए, हम दीपावली के महत्व को न भूलें, यह कोशिशें तो होनी ही चाहिए। दीपावली हमें साफ-सफाई और स्वच्छता का भी संदेश देती है। स्वच्छता मन की। स्वच्छता घर-मोहल्ले की। हमारे प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी भी दीपावली के इसी संदेश को हम सभी के बीच संप्रेषित करने में लगे हैं। स्वच्छ भारत में दीपावाली का स्वागत कर हम अपनी प्रकाश यात्रा को सफल बना सकते हैं। आइए इस बार दीपावली के मौके पर हम संकल्प लें माटी के दिए जलाने का। हम संकल्प लें अपने घर और इसके आसपास के इलाके को साफ-सुथरा रखने का। कुछ इसी तरह से ही होनी चाहिए हमारी अंधकार से उजाले के ओर की प्रकाश यात्रा।

पर्यटन को बढ़ावा देकर बदली जा सकती है देश की तकदीर

हमारा भारत विविधताओं से भरा देश है। देश के एक हिस्से में रेगिस्तान है तो दूसरे हिस्से में हरियाली। एक हिस्से में पहाड़-घाटियां हैं तो दूसरे हिस्से में तालाब-झरने आदि। इतनी विविधताओं से भरा भारत आज भी विश्व के पर्यटन मानचित्र पर अपनी जगह सुनिश्चित नहीं कर पाया है, जबकि सरकार, कॉरपोरेट घराने और जनता संयुक्त रूप से कोशिश करे तो पर्यटन को बढ़ावा देकर देश की तकदीर को बदला जा सकता है। हमारे देश में ऐसे असंख्य पर्यटन स्थल है, जिन पर आज भी जमाने की नजर नहीं पड़ी है। हरे-भरे जंगलों के बीच अथवा झरने-नदियों के किनारे भी ऐसे पर्यटन स्थलों को विकसित किया जा सकता है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने विगत 22 अगस्त, 2017 को देश के जाने-माने 200 सीईओ को संबोधित करते हुए पर्यटन से जुड़ी इसी संभावना का जिक्र किया। श्री मोदी ने उनको सुनने आने वालों को बताया कि उन्होंने किस तरह से कच्छ के रण को पर्यटन स्थल बना दिया। प्रधानमंत्री ने कहा कि जब मैं राजनीति में नहीं था तो जंगलों में भटकता था। कच्छ का व्हाइट रण देखा तो मेरे मन में विचार

काँधा था। मैं जब गुजरात का मुख्यमंत्री बना तो मैंने कहा कि रण को पर्यटन स्थल (टूरिस्ट डेस्टिनेशन) बनाऊंगा। उन्होंने सभी से रणोत्सव में जाने का न्यौता देते हुए कहा कि आप उसके सौंदर्य की कल्पना नहीं कर सकते हैं। आजकल वहां जाने के लिए बुकिंग में भी परेशानी होती है। कई लोग अपनी बोर्ड मीटिंग भी रणोत्सव से जोड़ देते हैं। उसकी वजह से कच्छ का हैंडीक्राफ्ट और दूसरा मार्केट खड़ा हो गया। प्रधानमंत्री ने कहा कि इसी तर्ज पर देश के विभिन्न राज्यों में अलग-अलग रणस्थल विकसित किए जा सकते हैं।

प्रधानमंत्री ने कहा कि देश पर्यटन स्थलों से भरा पड़ा है। जरूरत वैसे स्थानों की पहचान कर उन्हें विकसित करने की है। मेरा मानना है कि इसके लिए सरकार, कॉरपोरेट घराने और निजी कंपनियां साथ मिलकर भी योजनाबद्ध तरीके से काम कर सकती है। देश के अंदरूनी हिस्सों में स्थित किसी पर्यटन स्थल के विकास होने का मतलब उसे पूरे इलाके का विकास होना है। जब कोई स्थान पर्यटन स्थल के रूप में विकसित होगा, वहां बड़ी संख्या में पर्यटक आएंगे। वह लोग खान-पान, ठहरने-रुकने, घूमने-फिरने अथवा खरीददारी करने के नाम पर जो पैसे खर्च करेंगे, उसका एक हिस्सा उस क्षेत्र के लोगों तक पहुंचेंगा, जिससे पूरे इलाके का ही आर्थिक विकास होगा। इसके लिए सरकार को भी कोशिशें करनी पड़ेगी। इस बारे में श्री मोदी ने एक बात कही थी। पहले पर्यटन स्थल के रूप में किसी स्थान को विकसित किया जाए अथवा एक बार पर्यटकों के आने का सिलसिला शुरू हो गया तो उस स्थान का अपने-आप विकास हो जाएगा। प्रधानमंत्री ने सीईओ सभी से कहा कि पर्यटन विकास का फंडा कुछ पहले मुर्गी की पहले अंडा जैसा ही है। पर्यटक आएंगे तो पर्यटन का विकास होगा अथवा पर्यटन स्थल का विकास होने के बाद पर्यटन आएंगे।

हमारे असम में भी पर्यटन की कम संभावनाएं नहीं है। हमारे राज्य में ऐसा बहुत कुछ है, जो देश के अन्य हिस्सों में नहीं है। दूर-दूर तक फैले चाय बागान किसी हरियाली भरे गलीचे का अहसास करते हैं। असम में क्या नहीं है। ऊंचे-ऊंचे पहाड़ से लेकर नीली घाटियां, झरने, नदियां प्रकृति ने दोनों हाथों से जी खोलकर यहां अपना सौंदर्य लुटाया है। काजीरंगा राष्ट्रीय उद्यान, मानस राष्ट्रीय उद्यान, पबितोरा वन्यजंतु अभयारण्य, माजुली, तेजपुर, शिवसागर ऐसे बहुत से

स्थान हैं, जो पर्यटनों के लिए आकर्षण का केंद्र हो सकते हैं। मगर, देश की आजादी के 70 साल बाद भी देश के अन्य हिस्सों के लोगों को असम के बारे में, असम में बिखरे पड़े प्राकृतिक सौंदर्य के बारे में पूरी जानकारी नहीं है। देश-विदेश के पर्यटकों तक असम के पर्यटन स्थलों की जानकारी पहुंचाने के लिए असम पर्यटन विकास निगम नामक एक सरकारी विभाग भी है, मगर उसकी सक्रियता लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने में नाकाम साबित हो रही है। ऐसे निराशाजनक माहौल के बीच ब्रह्मपुत्र नद उत्सव और अंबुवासी मेले के दौरान राष्ट्रीय मीडिया में किया गया प्रचार-प्रसार दिल में उम्मीदें जगाता है। प्रसंगवश इस बात का भी जिक्र करना चाहूंगा कि असम खेल पर्यटन के क्षेत्र में भी अपनी एक विशेष पहचान बना सकता है। असम में पर्वतारोहण और बोटिंग के साथ-साथ रोमांचक खेलों को भी बढ़ावा दिया जा सकता है। कुल मिलाकर पर्यटन क्षेत्र के विकास की जिम्मेदारी, सरकार, टूर ऑपरेटर, स्थानीय गैर सरकारी संगठन और जागरूक जनता सभी को मिलकर उठानी पड़ेगी। श्री मोदी की कही इस बात से किसी को इंकार नहीं है कि पर्यटन को बढ़ावा देकर हम अपने देश की तकदीर को बदल सकते हैं।

दुर्गोत्सव : श्रद्धा पर भारी पड़ती सजावट

देखते ही देखते दुर्गा पूजा दुर्गोत्सव में बदल गई। किसी के मन में यह सवाल भी उठ सकता है कि दुर्गा पूजा और दुर्गोत्सव में फर्क क्या है। वैसे तो दोनों ही शब्द एक जैसे ही लगते हैं, लेकिन शब्दों का यदि भावनात्मक विश्लेषण किया जाए तो जहां पूजा शब्द आता है, वहां श्रद्धा का स्मरण आता है और यहां उत्सव का जिक्र होता है, वहां मौज-मस्ती, सजावट-आलोक-सज्जा का जिक्र अपने आप चला आता है। कुछ ऐसा ही आजकल शारदीय पर्व दुर्गा पूजा में देखने को मिलता है। पिछले दो-तीन दशकों पर यदि नजर डालें तो पता चलता है, श्रद्धा पर सजावट भारी पड़ने लगी है। अधिकांश क्लब-संगठनों में दुर्गा पूजा से अधिक डेकोरेशन-लाइटिंग आदि पर ध्यान दिया जाता है।

मैं हरिसभा, रामकृष्ण मिशन जैसे सार्वजनिक धार्मिक संस्थानों को इस सूची से बाहर रख रहा हूं, क्योंकि इन स्थानों पर आज भी सिर्फ और सिर्फ दुर्गा पूजा ही होती है। मां की ममतामयी मूर्ति के सामने प्रज्ज्वलित प्रदीप, धूप-अगरबत्ती और पंडित-पुरोहितों के शुद्ध संस्कृत भाषा में गूंजते मंत्रोच्चारण सचमुच में पूजन विधा की अनुभूति कराते हैं। ऐसे धार्मिक स्थानों पर दर्शक-श्रद्धालुओं की भीड़ नहीं उमड़ती और न ही देवी-दर्शन के लिए लंबी-लंबी कतारें लगती है। हरिसभा, रामकृष्ण मिशन आदि में आपको अधिकांश वृद्ध-प्रौढ़ श्रद्धालुगण ही नजर आएंगे। इनमें से कुछ ऐसे श्रद्धालु भी मिल जाएंगे, जो बेटे-बहू, पोते-पोतियों के पूजा घूमने चले जाने की वजह से घर का अकेलापन काटने के लिए पास स्थित हरिसभा अथवा रामकृष्ण मिशन में आ गए हैं।

मैं कहना चाहता हूं कि आज के दौर में श्रद्धा पर सजावट भारी पड़ रही है। लगभग सभी अखबारों में नियमित रूप से समाचार प्रकाशित कर पाठकों को बताया जा रहा है कि कौन से क्लब में किस तरह की सजावट की जा रही है। बजट कितने का है। मूर्तिकार-सज्जाकर कहां से आए हैं। पंडाल-मूर्ति की ऊंचाई कितनी है आदि। मगर, अखबारों में इस बात का जिक्र कम ही मिलता है कि संधि पूजा कितने बजे से प्रारंभ होकर किस टाइम पर खत्म होगी अथवा देवी-विसर्जन का तय समय कौन-सा है। मगर, जब किसी क्लब अथवा सार्वजनिक समिति की पूजा में सजावट के जिक्र की बात आती है तो उसे न सिर्फ विस्तार से बल्कि बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत किया जाता है। संभवत: यही कारण है कि पूजा पंडालों में देवी पूजन के समय श्रद्धालुओं की भीड़ कम रहती है और रात को रंग-बिरंगी रोशनी से नहाए पूजा पंडालों में की गई सजावट को देखने वालों को पैर रखने तक की बड़ी मुश्किल से जगह मिलती है। सजावट के नाम पर हर एक क्लब प्रति वर्ष लाखों रुपए खर्च करता है। ऐसे क्लब के सदस्य जब पूजा के लिए चंदा लेने जाते हैं तो वे बड़े गर्व के साथ यह बताते हैं कि उनके डेकोरेशन का बजट इतने लाख रुपए का है। इस साल कई क्लबों का संपूर्ण पूजा बजट करीब 50 लाख रुपए तक पहुंच गया है। चंदे के दम पर सार्वजनिन दुर्गा पूजा के नाम पर यदि सिर्फ सजावट में ही लाखों रुपए खर्च किए जा रहे हों तो समाज के प्रबुद्ध लोगों द्वारा ऐसे खर्च पर कम से कम बहस तो जरूर की जानी चाहिए। मेरे कहने का यह तात्पर्य हरगिज नहीं है कि दुर्गोत्सव में सजावट न हो अथवा आलोक-सज्जा न की जाए, मगर क्लब के पदाधिकारियों द्वारा इसकी एक सीमा तो तय करनी ही चाहिए। पिछले कई सालों से कुछ क्लब पूजा के ठीक पहले-पहले अपने क्षेत्र में स्वच्छता अभियान के तहत मोहल्ले की साफ-सफाई आदि करने लगे हैं। हमें उनकी ऐसी किसी भी पहल की प्रशंसा करनी चाहिए। इसके अलावा कई पूजा समितियों द्वारा इस मौके पर अनाथ आश्रम अथवा वृद्धा आश्रम में रहने वालों में नए कपड़े, मिठाई आदि वितरित की जाती है। ऐसी मानव सेवा को भी श्रद्धा के एक अन्य रूप में देखा जाना चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है श्रद्धा के बिना पूजा वैसी ही है, जैसे प्राण के बिना शरीर। हमें सजावट और श्रद्धा के बीच संतुलन बनाकर चलना होगा ताकि दुर्गोत्सव में दुर्गा पूजा का भी प्रकटीकरण हो सके।

सुधाकंठ के 91वें जन्मदिन पर कुछ बातें दिल से

सुधाकंठ भूपेन हजारिका का आज 91वां जन्मदिन है। असम-बंगाल के अलावा बांग्लादेश जैसे पड़ोसी देशों में भी आज के दिन भूपेन दा को याद किया जा रहा है। जन्मदिन के बहाने लगातार कई दिन उनकी स्मृति में तरह-तरह के कार्यक्रम आयोजित होते रहेंगे। अभी कल की बात लगती है, जब 5 नवंबर 2011 में हमारे राज्य का यह संगीत-सूर्य हमेशा-हमेशा के लिए अस्ताचल के लिए चला गया था। भूपेन दा के नहीं रहने की खबर सुनते ही न सिर्फ असम बल्कि समूचा बंगाल और बालीवुड भी आंसुओं के समंदर में डूब गया था। असम को तो सुधाकंठ के चले जाने से लगे सदमें से उबरने में कई दिन लग गए थे। 9 नवंबर को महान गायक और सांस्कृतिक स्तंभ भूपेन दा को हजारों चाहने वालों की अश्रुधारा के बीच राजकीय सम्मान के साथ गौहाटी विश्वविद्यालय में चिर विदाई

दी गई। भूपेन-पुत्र तेज हजारिका ने जब अपने पिता को मुखाग्नि दी तो पूरे माहौल में एक साथ गूंजती हिचकियों की आवाज को साफ-साफ सुना गया। भूपेन हजारिका के अंतिम दर्शन के लिए लाखों लोग नवंबर की पूरी सर्द रात सड़क के किनारे कतार में लगे रहे थे। इसके बाद तो पूरा असम ही भूपेन-प्रेम के ज्वार में डूबने-उतरने लगा। किसी ने सार्वजनिक स्थानों पर भूपेन दा के गाए गीतों को चौबीसों घंटे बजाने की बात कही, किसी ने भूपेन के नाम पर अंतर्राष्ट्रीय स्तर केपुरस्कार की घोषणा किए जाने की मांग की। इन सब के बीच केंद्र सरकार ने भी राज्यवासियों के भूपेन प्रेम को खूब समझा। उनके अंतिम संस्कार में भाग लेने वालों की सूची में तत्कालीन मुख्यमंत्री तरुण गोगोई, तत्कालीन राज्यपाल जेबी पटनायक, तब के केंद्रीय मंत्री पवन सिंह घटोवार, कांग्रेस महासचिव दिग्विजय सिंह और लोकसभा में तत्कालीन विपक्ष की नेता सुषमा स्वराज ने अपना नाम दर्ज कराया। भूपेन दा के चाहने वालों ने जब उनके समाधि क्षेत्र पर एक स्मारक बनाने के साथ ही इसे एक पर्यटक स्थल के रूप में विकसित करने की मांग रखी तो सरकार ने उस पर तुरंत पर अपनी रजामंदी दे दी। बाद में स्मारक निर्माण में तनिक देर तो हुई, लेकिन आखिरकार एक शानदार स्मारक भवन बनकर तैयार हो गया। भूपेन दा की पूर्ण प्रतिमा, फव्वारों आदि से सजे इस समाधि क्षेत्र में रोज हजारों की संख्या में लोग आते हैं और अपने खानाबदोश (जाजाबर) गायक को याद करते हैं। राज्यवासियों की बहुत इच्छा थी कि विश्व में समन्वय के प्रतीक माने जाने वाले भूपेन दा के नाम पर और भी कुछ किया जाए। नरेंद्र मोदी सरकार ने असमवासियों की इस भावना को समझा और देश के सबसे लंबे नदी पुल (9.150 मीटर) धोला-सदिया पुल का नाम 'डॉ. भूपेन हजारिका सेतु' रखकर उनकी स्मृति को और अधिक जीवंत कर दिया। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 2017 की 26 मई को जब इस पुल का उद्घाटन किया तो सिर्फ असम-अरुणाचल प्रदेश के बीच की दूरी ही 165 किलोमीटर कम नहीं हुई, बल्कि दोनों राज्य के लोगों के बीच की दूरी भी सिमट कर रह गई थी।

मगर, सवाल उठता है भूपेन दा की स्मृति को बनाए रखने के लिए इतना ही कुछ काफी है। राज्य सरकार से कहा तो उसने समाधि क्षेत्र का निर्माण करा दिया, केंद्र सरकार से कहा तो उसने एक पुल का नामकरण भूपेन दा के नाम

पर कर दिया। राज्य व केंद्र सरकार के अलावा हम राज्यवासियों के पास भूपेन दा के नाम पर करने को कुछ नहीं है? बेजान समाधि क्षेत्र और पुल भूपेन दा के नाम को तो जिंदा रख सकता है, लेकिन भूपेन-संस्कृति को आगे बढ़ाने के लिए हम सभी को ही प्रयास करने होंगे। आज यदि कोई भूपेन हजारिका से संबंधित किसी भी विषय पर शोध करना चाहे तो उसके लिए जरूरत भर की अध्ययन सामग्री तक उपलब्ध नहीं है। उनकी सारी सृष्टि-सृजन, रचना-कला इधर-उधर बिखरी पड़ी है। इन सबको समेटकर संजोने की जिम्मेदारी भले ही सरकार की हो, मगर यह हमारी भी जिम्मेदारी बनती है कि हम भूपेन दा से संबंधित सामग्री जुटाने में सरकार की मदद करें। इसके अलावा आने वाली पीढ़ी तक भूपेंद्र संगीत को पहुंचाने की जिम्मेदारी भी हम सभी की है। इसमें सरकार के लिए करने को बहुत खास नहीं है। अपने बच्चों को भूपेन हजारिका के गीत, संगीत, फिल्म, नाटक आदि के बारे में यदि हम ही नहीं बताएंगे तो हमें सरकार अथवा किसी दूसरे से ऐसी उम्मीद क्यों रखनी चाहिए। अपने गीत-संगीत, फिल्म-नाटक आदि के रूप में भूपेन दा हमारे घर में, हमारे दिल में हमेशा बसे रहे, इसी कामना के साथ सुधाकंठ को कोटि-कोटि नमन्।

स्वच्छ भारत अभियान एक पहलू यह भी

स्वच्छ भारत अभियान नरेंद्र मोदी सरकार की चंद महत्वपूर्ण योजनाओं में शामिल है। इस अभियान ने न सिर्फ भारत में एक नई सोच पैदा की, बल्कि विश्व भर में एक नए नजरिए को स्थापित किया। नरेंद्र मोदी संभवत: देश के ऐसे पहले प्रधानमंत्री थे, जिन्होंने लाल किले की प्राचीर से देशवासियों को संबोधित करते हुए स्वच्छ भारत अभियान की जरूरत को समझाया। इसके बाद तो पूरे देश भर में स्वच्छता अभियान की होड़ ही लग गई। प्रधानमंत्री से लेकर केंद्रीय मंत्री, मुख्यमंत्री-विधायक, कलाकार, बुद्धिजीवी सभी सड़कों पर झाड़ू लगाते नजर आए। देश केविभिन्न सरकारी-गैर सरकारी संगठन, संस्थानों नै भी प्रधानमंत्री द्वारा शुरू किए गए स्वच्छ भारत अभियान में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। स्कूली बच्चे भी इसमें बड़े ही उत्साह के साथ भाग लिया। लोगों की मानसिकता में बदलाव आया। घर ही नहीं कार्यालय, आसपास के इलाके, सड़क-रास्ते, पार्क-अस्पताल, स्कूल-कॉलेज सब साफ-सुथरे नजर आने लगे।

स्वच्छ भारत अभियान और इसमें जन भागीदारी की चर्चा विदेशी मंचों पर भी होने लगी। मगर, अब लगता है लोगों में इस अभियान को लेकर जो उत्साह था, वह मंद पड़ता जा रहा है। वर्ष 2014 की 2 अक्टूबर को राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के जन्मदिन पर शुरू किए गए इस आज तीन साल पूरे हो गए हैं। तीन साल बाद तो स्वच्छ भारत अभियान की समीक्षा की ही जा सकती है। राज्य से होकर गुजरने वाले चार लेन युक्त राष्ट्रीय राजमार्ग के बीच खाली पड़ी जमीन पर लगे कचरे के ढेर को देखकर लगता है कि इस अभियान की सफलता के लिए अभी भी बहुत कुछ किया जाना जरूरी है। पिछले तीन सालों में हमने अपने से जुड़े स्थान चाहे वह घर हो अथवा स्कूल-कॉलेज, कार्यालय-अस्पताल आदि की ही सफाई करने की आदत डाली है। हम उन स्थानों को नजरअंदाज कर जाते हैं, जिनसे हमारा आमतौर पर कोई लेना-देना नहीं होता। राष्ट्रीय राजमार्ग के बीच वाले हिस्से में फैली गंदगी कहीं हमारी इसी सोच की ही तो चुगली नहीं करती। कहीं हम यह तो नहीं सोचने लगे कि इस हिस्से की सफाई की जिम्मेदारी राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण की है तो फिर हमें क्या पड़ी है। यदि ऐसा है तो हमें इस सोच को बदलना होगा। बात जब 'स्वच्छ भारत' की हो तो हम उसे टुकड़े-टुकड़े में नहीं देख सकते। ऐसा नहीं हो सकता कि इस हिस्से की सफाई करने का जिम्मा मेरा और उस हिस्से की सफाई का जिम्मा तेरा। बात जब देश की हो तो हमें देश की छवि, स्वास्थ्य, सोच सबको समग्रता के साथ देखना पड़ेगा।

भारत भ्रमण पर आया कोई विदेशी पर्यटक यदि राष्ट्रीय राजमार्ग के बीच बिखरे पड़े कचरे के ढेर को देखे तो उसके मन में हमारे देश के प्रति कैसी नकारात्मक छवि बनेगी, इस पर चिंतन करने की जिम्मेदारी देश के हर एक नागरिक की है। माना राजमार्ग की मरम्मत, साफ-सफाई के लिए सरकार ने एक विभाग खोल रखा है, यदि वह विभाग अपनी जिम्मेदारी को सही तरह से निर्वाह नहीं करे तो सरकार तक इसकी जानकारी पहुंचाना देश के हर एक नागरिक का फर्ज है। वैसे भी सूचना और तकनीक के इस युग में सरकार और जनता के बीच की दूरी घटकर अंगुली की नोंक बराबर ही रह गई है। कोई चाहे तो चार कंप्यूटर पर शिकायत की चार लाइनें टाइप कर देश के राष्ट्रपति-प्रधानमंत्री तक पहुंचा

सकता है। सबको पता है, ऐसी शिकायतों को गंभीरता से भी लिया जाता है और उन पर उचित कार्रवाही भी होती है।

'स्वच्छ भारत अभियान' नामक जिस मशाल को आज से तीन साल पहले हमारे प्रधानमंत्री ने जलाया था, उसको प्रज्ज्वलित रखना हम सभी की जिम्मेदारी है। प्रधानमंत्री ने जिस अभियान को शुरू किया, उसको आगे बढ़ाने के लिए देश के हर एक नागारिक को आगे आना होगा, क्योंकि अभियान की सफलता ही जनभागीदारी के दम पर टिकी हुई है। यह मानव स्वभाव है कि वह अपने किसी भी उत्साह को अधिक दिन तक कायम नहीं रख सकता। शायद यही कारण है कि स्वच्छता अभियान को लेकर लोगों में जो उत्साह था, वह पहले जैसा नहीं रहा। कितना अच्छा होगा, यदि हम इस उत्साह को अपनी आदत बना लें। एक बार जो आदत बन जाती है, वह बड़ी मुश्किल से छुटती है। अच्छी आदत तो छुटती ही नहीं है। सप्ताह में एक दिन अथवा त्यौहार से पूर्व अपने इलाकों, सार्वजनिक स्थानों एवं सड़क-रास्तों की सफाई कर हम न सिर्फ अपने में एक अच्छी आदत को विकसित करेंगे, बल्कि स्वच्छ भारत अभियान के सक्रिय सिपाही भी बनेंगे। हमारा एक छोटा-सा फैसला स्वच्छ भारत अभियान जैसे बड़े कार्यक्रम की सफलता का आधार बन सकता है।

गुरु-शिष्य का रिश्ता : तब और अब

गुरु-शिष्य के रिश्ते को दुनिया का सबसे श्रेष्ठ और पवित्र रिश्ता माना जाता है। इतिहास के पन्नों पर यदि नजर दौड़ाई जाए तो ऐसे अनेकों उदाहरण हमारे सामने आते हैं। गुरु द्रोणाचार्य द्वारा दक्षिणा में अंगूठा मांगने पर धनुर्धर एकलव्य द्वारा अपना अंगूठा काटकर दे देने की घटना को गुरु-शिष्य के सर्वोच्च रिश्ते के तौर पर देखा जाता है। गुरु-शिष्य का रिश्ता ऐसा रिश्ता नहीं है जो सिर्फ स्कूल-कॉलेज अथवा अन्य शिक्षण संस्थानों की चाहरदीवारी तक ही सिमटा रहता हो। इस रिश्ते की महक खेल के मैदान से लेकर लड़ाई के मैदान तक देखी जा सकती है। हमारे शास्त्रीय संगीत से जुड़ी कई गायन तथा नृत्य शैली तो गुरु-शिष्य परंपरा से जुड़ी हुई है। सैकड़ों साल बाद भी जब कोई पारंगत कलाकार बेजोड़ कला का प्रदर्शन करता है तो उससे पूछा जाता है कि वह किस गुरु घराने से संबंधित है। हमारे देश में गुरु गृह में रहकर भी शिक्षा प्राप्त करने की प्रथा रही है। कृष्ण और सुदामा ने अपने गुरु के घर पर रहकर ही शिक्षा प्राप्त की थी

और इसीलिए दोनों के बीच 'गुरुभाई' का रिश्ता बना। भगवान श्रीराम ने अपने तीनों भाइयों के साथ गुरु वशिष्ठ के आश्रम में जाकर शिक्षा प्राप्त की थी। इसके अलावा हमारे देश में विभिन्न राजघरानों के राजकुमार-राजकुमारियों ने भी गुरु आश्रम में जाकर शिक्षा-दीक्षा प्राप्त की। गुरुकुल में ऐसे राजकुमारों को आम बच्चों की तरह से ही रखा जाता था और सिखाया-पढ़ाया जाता था। उस जमाने में शिष्य के लिए गुरु का आदेश ही सर्वोपरि होता था। गुरु के आदेश को अनसुना कर दे, ऐसी हिम्मत किसी भी शिष्य में नहीं होती थी। शिष्य ऐसा कोई काम ही नहीं करते थे, जिससे गुरु के मन को ठेस लगे। गुरु के क्रोध और अभिशाप से सभी को डर लगता था। महाभारत में जिक्र मिलता है कि गुरु के शाप के कारण ही दानवीर कर्ण रणक्षेत्र में युद्ध करने का कौशल भूल गए थे। गुरुकुल में रहने वाले शिष्यों के लिए हर एक काम किसी अग्निपरीक्षा से कम नहीं होता था।

समय गुजरने के साथ-साथ देश-दुनिया की शिक्षा व्यवस्था भी बदली। देशवासियों को शिक्षित करने की जिम्मेदारी सरकार पर आन पड़ी। इसके अलावा गैर सरकारी समाजसेवी संगठन, दानवीर लोगों ने भी स्कूल-कॉलेज आदि की स्थापना कर शिक्षादान के महत्व को स्वीकार किया। बच्चे अपने घरों में रहकर ही पढ़ाई करने लगे और उनको गुरु केआश्रम में जाकर पढ़ाई नहीं करनी पड़ती थी। पूरी शिक्षा व्यवस्था ही नहीं बदली, गुरु का स्वरूप और गुरु-शिष्य के रिश्ते का अर्थ तक बदल गया। पहले जहां हर विधा की अग्निपरीक्षा देने के बाद शिष्य को गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने की अनुमति मिलती थी, अब बच्चों की मेधा अंक तालिका तय करने लगी। जिस बच्चे को जितने अधिक अंक मिले, वह बच्चा उतना ही होशियार घोषित हुआ। इस नंबर के चक्कर में बच्चे-अभिभावकों की ऐसी दौड़ शुरू हुई कि सबकुछ पीछे छूट गया। सभी का ध्यान गुरु भक्ति से हटकर परीक्षा पद्धति पर टिक गया। सभी की कोशिश रहती कि किस तरह से अधिक से अधिक अंक हासिल की जाए। इस नई व्यवस्था ने न सिर्फ गुरु-शिष्य के रिश्ते को प्रभावित किया, बल्कि बच्चे के बचपन को ही खत्म कर दिया। आज के बच्चों की दुनिया पढ़ाई और परीक्षाफल के दायरे में ही सिमट कर रह गई है। बच्चों के लिए शिक्षकों के प्रति समर्पण का भाव रखने से जरूरी प्रतियोगिता में खुद की प्रतिभा को साबित करना हो गया। इस बदलाव के कारण

कहीं-कहीं गुरु-शिष्य के बीच अप्रिय स्थिति उत्पन्न होती देखी गई। गुरु-शिष्य के बीच मनमुटाव, आपसी विवाद, रिश्ते की गरिमा पर दाग जैसे समाचार अखबारों की सुर्खियां बनने लगी। यह स्थिति सिर्फ शिक्षण संस्थानों तक ही सीमित नहीं रह गई थी। सड़कों पर भी ऐसे नजारे नजर आने लगे, जब छात्र ही शिक्षकों के खिलाफ नारेबाजी करने लगे। कभी-कभी शिक्षक भी विद्यार्थियों के हितों को ताक पर रखकर सरकार के खिलाफ नाराजगी प्रकट करते नजर आए। कुल मिलाकर प्राचीन भारत की शिक्षा व्यवस्था का मजबूत आधार 21वीं सदी के आते-आते पूरी तरह से चरमरा गया। आज के दिन बच्चे स्कूल में कम पार्क में अधिक नजर आते हैं। पढ़ाई में कम आंदोलन में ज्यादा व्यस्त रहते हैं। वहीं दूसरी ओर शिक्षक भी कक्षाओं में नहीं सड़कों के किनारे अथवा किसी उद्यान में सरकार विरोधी नारे लगाते, धरना-अनशन करते दिखाई पड़ते हैं। कुल मिलाकर यदि देखा जाए तो गुरु-शिष्य के रिश्ते में आई गिरावट का असर उच्च स्तर के मानव संसाधन के सृजन पर भी पड़ा है। एक आदर्श नागरिक का सृजन करना शिक्षक की जिम्मेदारी होती है, क्योंकि ऐसे आदर्श नागरिक के दम पर ही स्वस्थ समाज और सबल राष्ट्र का गठन संभव है। शिक्षा व्यवस्था का आधुनिकीकरण हो, मगर गुरु-शिष्य के बीच केरिश्ते की गर्माहट भी बनी रहे। ऐसा सभी चाहते हैं। मैं और आप भी।

उस नवजात का कसूर क्या था ?

ऊपरी असम के जोरहाट में वर्ष 2017 के 3 अगस्त को एक नवजात के बरामद होने की हृदयविदारक खबर ने एक बार फिर संवेदनशील लोगों को और पूरी समाज व्यवस्था को झकझोरकर रख दिया है। जन्म लेते ही माता-पिता के प्यार से वंचित हुए इस नवजात को बाद में जोरहाट के चिकित्सा महाविद्यालय में भर्ती कराया गया, ताकि उसको जीने के हक से वंचित न होना पड़े। इस घटना ने एक बार फिर हमारी संवेदनाओं को सवालों के कटघरे में ला खड़ा किया है। समझा जा रहा है कि इस नवजात का जन्म आधुनिकता और स्वछंदता के रंग में रंगे किसी किशोर जोड़े के क्षणिक गलती का नतीजा हो सकता है। ऐसा अक्सर देखा जाता है कि अपने बेलगाम बच्चों की गलती पर पर्दा डालने के लिए उनके ही माता-पिता अथवा अभिभावक ऐसे नवजात बच्चों को सड़क किनारे अथवा कचरे के ढेर में फेंक जाते हैं। एक ओर बहुत से दंपति एक बच्चे की चाहत में डाक्टरों के इस चैंबर से उस चैंबर की दौड़ लगा रहे हैं। वहीं दूसरी सड़क किनारे नवजात बच्चों को फेंक देने की घटनाओं में बढ़ोतरी हो रही है। यह हमारे समाज में सिर उठा रही एक अन्य प्रकार की समस्या की ओर इशारा करती है। देखने में आया है कि सड़क किनारे जिन नवजातों को फेंका जाता है, उनमें से अधिकांश नवजातों की मौत हो जाती है। ऐसे नवजातों को किसी भी तरह से यदि अनाथाश्रम तक पहुंचा दिया जाए तो इसके दो सुखद परिणाम निकलकर सामने आ सकते हैं। पहला ऐसे नवजातों की अकाल मौत नहीं होगी और दूसरा नि:संतान महिला की गोद भी हरी हो सकेगी। वैसे एक नि:संतान दंपति ही औलाद न होने का दर्द समझ सकता है। चाहे महिला हो या फिर पुरुष शादी करने के बाद वह औलाद पाने का ही सपना देखता है। आज के युग में यह बात बहुत अधिक मायने नहीं रखती कि जन्म लेने वाला नवजात लड़का

है या लड़की और बच्चे की चाहत रखने वाले अब ऐसी कोई कामना अपने मन के अंदर दबाकर नहीं रखते हैं। वह लोग अपने आंगन में सिर्फ बच्चे की किलकारियां सुनना चाहते हैं।

जोरहाट की यह घटना राज्य की पहली व अकेली घटना नहीं है। इस प्रकार की घटनाएं अक्सर घटती रहती है, मगर वह समाज के सामने नहीं आती। ऐसी घटनाओं की जितनी भी निंदा की जाए कम है। अपने ही नवजात को लेकर माता-पिता इतने निर्दयी कैसे हो सकते हैं, यह सवाल तो पूछा ही जाना चाहिए। यह सच है कि ऐसी घटनाओं को रोका नहीं जा सकता, मगर इस तरह से फेंके गए नवजात बच्चों के लिए क्या कोई आश्रय-आश्रम की व्यवस्था हो सकती है। इस बिंदु पर सामाजिक संगठन और सरकार के बाल कल्याण, समाज कल्याण जैसे विभागों को जरूर सोचना चाहिए। राज्य के बड़े-बड़े गुवाहाटी जैसे महानगरों में अनाथाश्रम आदि हैं, मगर राज्य के अन्य शहरों में ऐसी व्यवस्था नहीं है। अनाथाश्रम वाले भी हर बच्चे को अपने यहां शरण देना चाहते हैं। इसलिए उनकी आमलोगों से अपील भी रहती है कि कहीं यदि कोई नवजात बरामद होता है तो उसकी सूचना भर देने से वे उस नवजात को अपने खर्च पर अनाथाश्रम ले जाएंगे और उसकी पूरी देखभाल भी करेंगे। मगर, जब वक्त आता है तो यह अपील बेअसर साबित होती है। समाज से एक भी व्यक्ति निकलकर सामने नहीं आता जो अनाथाश्रम तक यह खबर ही पहुंचा दे। मालूम हो कि अनाथाश्रम वाले ऐसे बच्चों को पूरी कानूनी प्रक्रिया पूरी करने के बाद नि:संतान दंपतियों को सौंप देते हैं। उलुबाड़ी के शरणिया पहाड़ी पर स्थित 'मातृ मंदिर' द्वारा इस दिशा में हासिल उपलब्धि किसी भी अनाथाश्रम प्रबंधन के लिए प्रेरणा का स्रोत साबित हो सकती है। मातृ मंदिर न जाने कितने ही नि:संतान दंपतियों की गोद हरी की है। यहां के बच्चों को तो विदेशी दंपति भी गोद लेने लगे हैं। इस तरह से यदि देखा जाए तो समाज की इस समस्या को एक खुबसूरत मोड़ देकर इसे नि:संतान दंपतियों के लिए वरदान सरीखा बनाया जा सकता है। यह जरूरी है कि राज्य के किसी भी कोने में इस प्रकार के नवजात के बरामदगी की खबर मिलती है तो इसकी एक सूचना राज्य के किसी भी शहर में स्थित अनाथाश्रम तक पहुंचा दी जाए। ऐसा कर हम न सिर्फ एक बच्चे की जान बचाएंगे, बल्कि एक मां की सूनी गोद को भरने का पुण्य भी कमा सकेंगे। इसके लिए एक पहल तो होनी ही चाहिए।

नई पीढ़ी के सामने स्वाधीनता दिवस का अर्थ

पराधीनता की जंजीरों को तोड़ देश को अंग्रेजों के चुंगल से आजाद कराए सात दशक पूरे हो गए। हम भारतवासी तन से तो आजाद हो गए, मगर मन से कितने आजाद हुए, कितने अंग्रेज-अंग्रेजी के बंधन में जकड़े हुए हैं। यह सवाल आज भी रह-रहकर उठता है। इस बात को लेकर कोई विवाद नहीं है कि जब तक हर एक भारतीय खुद को पूरे दिल से स्वाधीन नागरिक होने का अहसास नहीं करेगा, तब तक देश का संपूर्ण विकास नहीं हो सकता। हमारा देश विश्व का सबसे युवा देश है। हमारे देश में आधी से अधिक आबादी 35 साल से कम उम्र के युवाओं की है। हमारे युवाओं को न तो यह पता है कि देश को किस कीमत पर आजादी मिली और न ही इस बात की जानकारी की किसी देश के लिए आजादी के मायने क्या होते हैं। संभवत: यही कारण है कि युवाओं के खान-पान, रहन-सहन, बोल-चाल आदि में कहीं भी भारतीयपन नजर नहीं आता। हमने भले ही आजादी हासिल कर ली हो, मगर युवाओं को उस आजादी का मतलब बताने-समझाने में नाकाम रहे हैं। यह बात देश के युवाओं की मानसिकता में भी देखी जा सकती है। पहले के लोग देश-समाज को पहले रखते थे। आज के युवा के लिए माई सेल्फ फर्स्ट वाला फर्मूला चल निकला है। हम न तो अंग्रेजों के प्रभाव से मुक्त हो पाए और न ही उनमके फेस्टीबल-फास्ट से। देश भले ही 1947 की 15 अगस्त को आजाद हो गया। आजादी की लड़ाई में न जाने कितने ही लोग शहीद हो गए। कितने ही लोगों ने जेलों में यातनाएं सही। तब जाकर देश को आजादी मिली, वह भी दो टुकड़े, भारत और पाकिस्तान के रूप में। देश को स्वाधीनता दिलाने के लिए वीर शहीदों का इतना बड़ा बलिदान उस वक्त व्यर्थ नजर आता है, जब युवाओं के दिलों में देशभक्ति तभी हिलौर मारती

है, जब भारत क्रिकेट में पाकिस्तान को हराता है। संक्षेप में यदि कहा जाए तो 70 साल गुजर जाने के बाद भी हम गुलामी वाली मानसिकता से खुद को पूरी तरह से आजाद नहीं करा पाए हैं। यह हालत देश के उन नेताओं की भी है, जिन पर देश के युवाओं के नेतृत्व की जिम्मेदारी है।

ऐसे निराशजनक माहौल में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी एक उम्मीद की किरण बनकर उभरे हैं। श्री मोदी की बातचीत, आचार-व्यवहार और मिजाज में स्वाधीन देश का एक नागरिक दिखाई देता है, ऐसा नागरिक जो पूरे देश के युवाओं को भारतीय होने पर गर्व करने का संदेश देता है। प्रधानमंत्री की 'मेक इन इंडिया' जैसी योजनाओं से जुड़कर युवाओं की सोच में भी बदलाव आने लगा है। युवा वर्ग अब देश को आगे रखकर उसकी दशा और दिशा पर गंभीरता से चिंतन-मनन करने लगा है। जहां तक असम सहित पूर्वोत्तर के युवाओं का सवाल है तो यहां के युवा वर्ग न तो स्वाधीनता दिवस का मतलब जानते हैं और न ही गणतंत्र दिवस का तात्पर्य। यहां के युवाओं के लिए स्वाधीनता दिवस-गणतंत्र दिवस का मतलब है असम बंद, काम से छुट्टी। पिछले करीब चार दशकों से असम सहित पूर्वोत्तर राज्यों में विभिन्न उग्रवादी संगठन राष्ट्रीय दिवस पर बंद का आह्वान करते रहे हैं। पहले उग्रवादियों द्वारा बंद बुलाने पर अपने घरों से कोई नहीं निकलता था। शहरों में कर्फ्यू की स्थिति पैदा हो जाती थी। लेकिन अब स्थिति बदलने लगी है। उग्रवादी संगठनों द्वारा बंद का आह्वान करने के बावजूद लोग न सिर्फ बिना किसी परवाह के घरों से बाहर निकलने लगे हैं, बल्कि राष्ट्रीय पर्व में सक्रिय हिस्सेदारी भी निभाने लगे हैं। युवाओं में स्वाधीनता का मतलब बदल गया है। हमारे युवा गरीबी, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, नशाखोरी, हत्या-हिंसा, कुप्रथा आदि से देश को स्वाधीनता दिलाना चाहते हैं। युवाओं की सोच है कि बिना इन सामाजिक समस्याओं के संपूर्ण समाधान के देश की पूरी युवा शक्ति को राष्ट्र निर्माण के कार्य में नहीं लगाया जा सकता है। ये सारी समस्याएं देश के विकास की राह में रोड़ा है। बिना इन सभी बाधाओं को खत्म किए देश विकास के मार्ग पर सरपट कैसे दौड़ सकता है। देश का युवा देश की आजादी के मायने समझे, उन्हें समझाने की जिम्मेदारी हम सभी को मिलकर उठानी पड़ेगी। शिक्षण संस्थानों में देश का सच्चा-सटीक इतिहास पढ़ाया जाए और अगली पीढ़ी नई पीढ़ी को अपने समाज-परिवार की परंपराओं की जानकारी दें। तभी जाकर युवाओं को हमारे देश की आजादी के मायने समझ में आएंगे।

गुवाहाटी के विकास में सिटी बस सेवा वरदान या अभिशाप

विश्व के किसी भी महानगर अथवा मेट्रो सिटी के विकास में वहां की यातायात व्यवस्था की भूमिका सबसे अधिक महत्वपूर्ण होती है। बिना उन्नत यातायात व्यवस्था के आधुनिक महानगर की कल्पना तक नहीं की जा सकती। कोलकाता जैसा महानगर अपनी ट्राम सेवा के लिए पूरे विश्व भर में विख्यात है। भारत में सिर्फ कोलकाता ही एक ऐसा महानगर है, जहां अंग्रेजों के जमाने से चल रही ट्राम यातायात सेवा आज भी चल रही है। कोलकाता में पहली ट्राम 24 फरवरी 1873 में सियालदह से अमरीकनघाट स्ट्रीट के बीच चलाई गई थी। इसी कड़ी में हम गुवाहाटी की सिटी बस सेवा का जिक्र कर सकते हैं। गुवाहाटी की सिटी बस सेवा महानगर के विकास में सहायक है या रोड़ा, इस पर एक लंबी बहस की जा सकती है। जिला प्रशासन, पुलिस की यातायात शाखा, प्रदूषण विभाग और परिवहन विभाग द्वारा लाख कोशिशें करने के बावजूद महानगर की सिटी बस सेवा के बदलाव के कोई लक्षण नहीं दिखती। महानगर में यदि कोई एक व्यवस्था है, जो बिना किसी नियम-कायदे अथवा व्यवस्था पर चलती है तो वह है सिटी बस सेवा। इसके सामने सारी व्यवस्थाएं फेल नजर आती है।

सिटी बसों को गलत तरीके से चलाना, एक-दूसरे से आगे निकलने की होड़, जहां-तहां बसों को खड़ा करना, यात्रियों के साथ दुर्व्यवहार और यातायात पुलिस कर्मियों के साथ हरदम मारपीट करने को तैयार रहना सिटी बस ड्राईवर-खलासी का स्वभाव बन चुका है। यातायात विभाग ने ऐसे चालकों पर भारी-

भरकम का जुर्माना से लेकर गुलाब का फूल तक थमाकर देख लिया, लेकिन यह लोग बदलने को तैयार नहीं है। अभी हाल ही में पुलिस के यातायात विभाग ने एक नया नियम लागू किया था कि सभी सिटी बसों का पिछला दरवाजा बंद रहेगा। पुलिस की कड़ाई की वजह से चार दिन तक इस नियम पर अमल भी किया गया, मगर बाद में वहीं ढाक के तीन पात। अब सिटी बसों का पिछला दरवाजा बंद नहीं रहता। सामने पुलिस कर्मी खड़े रहे तब भी। जिस महानगर में दिन दहाड़े कानून की इस तरह से धज्जियां उड़ती हो, वहां के विकास की रफ्तार कितनी होगी, इसका अंदाजा आसानी से लगाया जा सकता है। ऐसे में सिटी बस के चालक-खलासी वर्दी में रहेंगे, बस के अंदर पान पराग -गुटका नहीं खाएंगे, यात्रियों को किराए के बदले टिकट देंगे, यात्रियों से मधुर व्यवहार करेंगे, तय सीमा से अधिक यात्रियों को बस में नहीं चढ़ाएंगे और बस को जहां-तहां खड़ी नहीं करेंगे, इन बातों की तो कल्पना तक नहीं की जा सकती।

मौजूदा सिटी बस सेवा के खस्ताहाल के लिए बस यात्रियों को भी बराबर का जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। बस के अंदर बैठा यात्री ही जब नियमों के अनदेखी करने का विरोध नहीं करेंगे तो फिर व्यवस्था पटरी पर कैसे आएगी। वैसे भी बहुत से यात्री स्वयं व्यवस्था के खिलाफ नजर आते हैं। वरिष्ठ नागरिकों के लिए संरक्षित सीट पर कब्जा जमाए बैठे युवक को कहना पड़ता है कि वह सामने खड़े वृद्ध यात्री के लिए उसकी सीट छोड़ दे, अथवा महिला यात्री की सीट पर जब कोई पुरुष यात्री ढीठ की तरह बैठा ही रहता है तो पूरी व्यवस्था ही सवालिया घेरे में नजर आती है। याद कीजिए यह वही सिटी बस है, जिस पर सवार होकर कुछ यात्री किसी जमाने में बेखौफ होकर बीड़ी-सिगरेट पिया करते थे, मगर यात्रियों के दबाव के कारण अब किसी की भी हिम्मत नहीं होती, सिटी बस के अंदर बैठकर सिगरेट पी ले। ठीक इसी तरह सभी यात्रियों को चालक द्वारा नियमों की अनदेखी किए जाने का भी पुरजोर तरीके से विरोध करना होगा। क्योंकि यह यात्रियों की जान की सुरक्षा और यात्रा के सुखद अंत के लिए बेहद जरूरी है। महानगर की सिटी बस सेवा में बदलाव लाना है तो इस मुहिम में यात्रियों को सबसे पहले आगे आना होगा। अन्य सरकारी विभाग सिर्फ सहायक की भूमिका ही निभा सकते हैं।

डोकलाम पर क्यों है चीन की टेढ़ी नजर

भारत के लिए चीन आज के दिन पाकिस्तान से अधिक खतरनाक साबित हो रहा है। एशिया के सबसे ताकतवर देश के रूप में चीन हमेशा ही भारत को अपने वश में करने की कोशिशें करता आया है। भारत के चिर शत्रु पाकिस्तान को सभी प्रकार की मदद-सहयोग कर चीन ने वहां न सिर्फ बाजार पर कब्जा जमाया हुआ है, बल्कि पाकिस्तान को भारत के खिलाफ लगातार भड़का भी रहा है। 1962 के भारत-चीन की लड़ाई की स्मृति आज भी भारतीय लोगों के जेहन में ताजा है। जिन्होंने भारत-चीन का युद्ध देखा है, उनको चीन की बेवफाई भूले नहीं भुलती। आज की युवा पीढ़ी भी भारत-चीन की उस लड़ाई को 'चीन द्वारा भारत की पीठ में खंजर घोंपने' के रूप में देखती है। चीन 1962 के युद्ध की याद दिलाकर आज भी भारत को धमकाने में लगा है, जबकि वह भूल गया है कि भारत भी अब 1962 वाला भारत नहीं रह गया है। भारत की ताकत 1962 की तुलना में कई गुणा अधिक है। भारत आज चीन की आंखों में आंखें डालकर बातें कर सकता है। चीन लगातार भारत पर आक्रमण की करने की धमकी दिए जा रहा है। भूटान के पठार स्थित डोकलाम को लेकर इन दिन भारत-चीनी सेना आपने-सामने है। सिक्किम-भूटान और चीन के त्रिकोण पर स्थित डोकलाम को बेहद संवेदनशील स्थान माना जाता है। विवाद की शुरुआत तब हुई, जब चीन ने सारे अंतर्राष्ट्रीय नियमों को ताक पर रखकर डोकलाम के निकट सड़क बनाने की कोशिश की। भूटान ने जब चीन को डोकलाम में सड़क बनाने पर रोका तो चीन ने उसके विरोध को अनसुना कर दिया। इसके बाद भूटान ने भारत से मदद की गुहार लगाई और उसके बाद से भारत-चीन की सेनाएं आमने-सामने है। यह पहला मौका है, जब भारत किसी तीसरे देश के लिए चीन से लड़ाई तक लड़ने को तैयार दिखता है।

भारत चीन द्वारा डोकलाम में सड़क बनाने का इसलिए भी विरोध कर रहा है, क्योंकि भूटान का डोकलाम पठार भारत-चीन और भूटान के ट्राइजंक्शन

पर है। डोकलाम को चीन अपना इलाका डोकलाम बताता है और यह सड़क बनाकर भारत-चीन सीमा क्षेत्र पर अपनी स्थिति मजबूत करना चाहता है। इस इलाके में चीन द्वारा सड़क बनाने पर भारत-भूटान को इसलिए भी आपत्ति है, क्योंकि यह क्षेत्र 'चिकन-नेक' के पास का इलाका है। भारत के लिए सामरिक नजरिए से भी यह पूरा इलाका बेहद अहम है। चीन अगर यहां अपनी सड़क बनाने में कामयाब हो जाता है तो उसके लिए भारत की चिकन नेक कहे जाने वाले सिलीगुड़ी तक पहुंचना काफी आसान हो जाएगा। दरअसल, चिकन नेक उस इलाकेको कहते हैं जो सामरिक रूप से किसी देश के लिए बहुत महत्वपूर्ण होता है, लेकिन संरचना के आधार पर कमजोर होता है। सिलीगुड़ी कॉरिडोर ऐसा ही क्षेत्र है। डोकलाम से सिलीगुड़ी कॉरिडोर की दूरी महज 50 किलोमीटर के करीब है। सिलीगुड़ी कॉरिडोर ऐसा इलाका है, जिससे शेष भारत, पूर्वोत्तर के 7 राज्यों से जुड़ता है। 200 किलोमीटर लंबे और 60 किलोमीटर चौड़ा ये कॉरिडोर देश की एकता के लिए काफी जरूरी है। साथ ही सिलीगुड़ी कॉरिडोर साउथ की तरफ से बांग्लादेश और नॉर्थ की तरफ से चीन से घिरा है। ट्रेन-रोड नेटवर्क से संपन्न ये इलाका चीन के किसी भी संभावित हमले में सैनिक साजो-सामान और दूसरी जरूरी चीजों की आपूर्ति केलिए अहम है। जानकार मानते हैं कि अगर चीन ने डोकलाम में सड़क बना ली, तो दुश्मन हमसे और करीब हो जाएगा।

भारत-चीन के बीच 1962 में हुई लड़ाई के बाद से ही डोकलाम को लेकर चीन विवाद पैदा करता रहा है। भूटान जब भी इस इलाके को अपना बताता है, चीन अपनी दादागिरी पर उतर आता है। वैसे भी भूटान के भारत के साथ खास रिश्ते रहे हैं। 1949 की संधि के मुताबिक, ये विदेशी मामलों में भारत सरकार की सलाह से निर्देशित होगा। 2007 दोहराई गई संधि के मुताबिक, भूटान के भू-भाग के मामलों को देखना भी भारत की जिम्मेदारी है। ऐसे में अगर चीन, भूटान के किसी भी हिस्से पर दावा ठोकता है या उसकी संप्रभुता में दखल देता है, तो भारत के लिए भी विरोध करना जरूरी है।

ऐसे में भारत को पाकिस्तान और चीन के साथ दो अलग-अलग मोर्चों पर लड़ना पड़ रहा है। भारत-चीन सीमा पर चीन के अतिक्रमण को रोकने के लिए भारतीय सेनाओं को 24 घंटें चौकस रखना पड़ रहा है, वहीं दूसरी ओर पाकिस्तान की करस्तानी को नाकाम करने के लिए भारत को जम्मू-कश्मीर स्थित भारत-पाक सीमा पर भी विशेष ध्यान रखना पड़ रहा है।

बढ़ती जनसंख्या को संभावनाओं में बदलने की चुनौती

बढ़ती जनसंख्या पूरे विश्व के लिए चुनौती बनी हुई है। जनसंख्या की दृष्टि से बड़े देश कहे जाने वाले चीन और भारत जैसे देशों के लिए इसे सबसे बड़ी समस्या माना जाता है। जनसंख्या नियंत्रण के लिए सरकार की ओर से लाख योजनाएं चलाए जाने के बावजूद इसका कोई सुफल दिखाई नहीं दे रहा है। इस बात को दोहराने की कोई आवश्यकता नहीं है कि बढ़ती जनसंख्या का सीधा प्रभाव देश के विकास पर पड़ता है। साधारण शब्दों में यदि कहा जाए तो किसी परिवार में यदि कमाने वाले सदस्यों से अधिक संख्या खाने वालों की हो तो उसका असर परिवार की आर्थिक स्थिति पर पड़ता है। हमारे देश की भी कुछ ऐसी ही स्थिति है। साल भर में प्राप्त कुल राजस्व का एक अच्छा-खासा हिस्सा जनकल्याणकारी योजनाओं के अलावा शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास और मध्याह्न भोजन जैसी योजनाओं पर खर्च हो जाता है। बढ़ती आबादी से उत्पन्न गरीबी और बदहाली का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि बच्चों को पढ़ाने

के लिए स्कूल तक लाने के लिए मध्याह्न भोजन जैसी योजनाओं का सहारा लेना पड़ता है। गरीब परिवार के लोगों की सोच रहती है कि बच्चा बजाए पढ़ाई करने के चार पैसे कमा ले तो परिवार को आर्थिक सहारा मिल जाएगा।

आंकड़ों की यदि बात की जाए तो वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या 1,210,193,422 थी, यानी की हमारे देश की आबादी ने एक अरब का आंकड़ा आज से छह साल पहले ही पार कर लिया था। विशेषज्ञों की यदि मानें तो बहुत जल्द भारत चीन को पछाड़ते हुए विश्व की सबसे अधिक जनसंख्या वाला देश बन जाएगा। यह स्थिति तब जाकर है जब सरकार द्वारा जनसंख्या नीति, परिवार नियोजन और कल्याण जैसे कार्यक्रम बहुत पहले से ही बड़े पैमाने पर चलाए जा रहे है। सरकार द्वारा चलाई जा रही ऐसी योजनाओं के कारण हमारे देश में जन्म दर तो कम हुई है, फिर अन्य देशों के मुकाबले यह अधिक बनी हुई है। भारत देश में जनसंख्या वृद्धि की मुख्य वजह कम उम्र में बच्चों की शादी करा देना माना जाता है। वैसे तो कानूनी तौर पर लड़की की शादी की उम्र 18 साल है, लेकिन जल्दी शादी की अवधारणा यहां बहुत प्रचलित है। जल्दी शादी करने से गर्भधारण करने की अवधि भी बढ़ जाती है। इसके अलावा भारत में शादी को एक पवित्र कर्तव्य और सार्वभौमिक अभ्यास माना जाता है, जहां लगभग सभी महिलाओं की शादी प्रजनन क्षमता की आयु में आते ही हो जाती है। इसके अलावा देश में व्याप्त गरीबी और निरक्षरता भी बढ़ती आबादी का एक प्रमुख कारण मानी जाती है। गरीब परिवारों में एक धारणा है कि परिवार में जितने ज्यादा सदस्य होंगे उतने ज्यादा लोग कमाने वाले होंगे। कुछ लोग यह मानते हैं कि बुढ़ापे में देखभाल करने के लिए भी बच्चों का होना जरूरी है। यह एक अजीब बात है, लेकिन सच है कि भारत अब भी गर्भ निरोधकों और जन्म नियंत्रण विधियों के इस्तेमाल में पीछे है। कई लोग इस बारे में बात करने के लिए तैयार नहीं होते हैं या फिर इससे पूरी तरह अनजान हैं। निरक्षरता भी आबादी बढ़ने का एक अन्य कारण है। इसके अलावा पड़ोसी देशों से घुसपैठ आदि भी बढ़ती जनसंख्या में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

ऐसे में सरकार के सामने सबसे बड़ी चुनौती यह है कि इस गंभीर समस्या को राष्ट्रीय संसाधन और अपार संभावनाओं में कैसे बदलें। इस बात का जिक्र

करना भी जरूरी है कि बढ़ती जनसंख्या के साथ-साथ देश में बेरोजगारों की फौज भी कम बड़ी नहीं है। दुख की बात यह है कि बेरोजगारों में अधिकतर युवा है। सरकार इन युवा बेरोजगारों को कौशल युक्त प्रशिक्षण देकर इनको राष्ट्रीय विकास की धारा में शामिल कर सकती है। रोजगार को सिर्फ नौकरी से ही नहीं व्यापार-वाणिज्य से भी जोड़कर देखा जाना चाहिए। एक बेरोजगार युवा को पहले कौशल युक्त प्रशिक्षण दिया जाए, फिर व्यापार-वाणिज्य शुरू करने के लिए आर्थिक मदद, उचित बाजार तथा अन्य संसाधन उपलब्ध कराए जाएं। ऐसा होने पर वही युवा अन्य दो-चार युवाओं को अपने यहां रोजगार दे सकेगा। यह बड़ी अफसोस की बात है कि बढ़ती जनसंख्या को अब तक एक समस्या के रूप में ही चिन्हित किया गया है और इसी तर्ज पर इस पर चर्चाएं की जाती रही है। जनसंख्या को एक बार संभावनाओं के रूप में देखे जाने की जरूरत है। हमें इस दिशा में चिंतन करने की जरूरत है कि हम अपने देश की युवा आबादी को किस तरह से राष्ट्रीय विकास में जोड़ सकते हैं।

बाढ़ ही नहीं भूस्खलन भी है एक बड़ी समस्या

बाढ़-कटाव और भूस्खलन को राज्य की गंभीर समस्याओं में गिना जाता है। बाढ़ का आना और जमीन कटाव की चपेट में आकर नदी में समा जाना हर साल की घटना है। आम आदमी जहां इन समस्याओं को लेकर परेशान है, वहीं दूसरी ओर विभिन्न संगठन आंदोलनरत हैं। असम की बाढ़ और भूकटाव को राष्ट्रीय समस्या घोषित करने की मांग वर्षों पुरानी है। बाढ़-कटाव रोकने के नाम पर अब तक न जाने कितने हजारों करोड़ रुपए खर्च किए जा चुके हैं, मगर समस्या अब भी जस की तस बनी हुई है। इन दिनों बाढ़ की वजह से राज्य की हालत बद से बदतर हो चुकी है। 23 जिलों की 12 लाख से अधिक आबादी बाढ़ की चपेट में है। मोरीगांव जिले के लाहोरीघाट में भूकटाव के कारण एक बड़ा हिस्सा ब्रह्मपुत्र में समा चुका है। मुख्यमंत्री सर्वानंद सोनोवाल ने गत दिनों जल संसाधन मंत्री केशव महंत तथा अन्य अधिकारियों के साथ लाहोरीघाट का दौरा किया था। श्री सोनोवाल ने कटाव के स्थाई समाधान के लिए तत्काल उपाय करने के आदेश दिए हैं।

जहां पूरा राज्य बाढ़ व भूकटाव की चपेट में है, वहीं दूसरी ओर महानगरवासियों को भूस्खलन जैसी समस्या से भी दो-चार होना पड़ रहा है। बरसात के दौरान अनिलनगर, नवीननगर, लाचितनगर, जू-रोड आदि इलाकों में होने वाली कृत्रिम बाढ़ की चर्चा तो सभी करते हैं, मगर इसके साथ-साथ महानगर की विभिन्न पहाड़ी अथवा पहाड़ की तराई में होने वाले भूस्खलन की घटना को नजर अंदाज कर देते हैं। एक तरह से यदि देखा जाए तो महानगरवासियों के लिए भूस्खलन की समस्या कृत्रिम बाढ़ की समस्या से कम छोटी नहीं है। बढ़ी जनसंख्या के साथ-साथ लोगों के निवास की भी समस्या गहराई है। इसी का नतीजा है कि पहाड़ियों पर भी लोग

घर बनाकर रहने लगे हैं। गुवाहाटी के चारों ओर फैली पहाड़ियों पर अब बड़े-बड़े मकान दिखने लगे हैं। दिन-ब-दिन ऐसे मकानों की संख्या बढ़ती ही जा रही है। पहले पहाड़ियों पर इतने घर-मकान नजर नहीं आते थे। लगातार बरसात के कारण जब पहाड़ी मिट्टी नरम पड़ जाती है तो भूस्खलन होता है तो इसका सबसे अधिक नुकसान इन पहाड़ियों पर रहने वाले अथवा पहाड़ के नीचे रहने वाले परिवारों को उठाना पड़ता है। अब तक यह बात साबित होती आई है कि 'गार्डवाल' देकर भूस्खलन के खतरे को कम नहीं किया जा सकता। पिछले एक दशक में महानगर में पहाड़ी मिट्टी के भूस्खलन से जितने लोगों की मौतें हुई है। हमारा पड़ोसी राज्य मेघालय पहाड़ पर बसा होने के बावजूद वहां इससे आधे लोगों की भी मौतें नहीं हुई है। आंकड़े बताते हैं कि महानगर में पिछले चार सालों में 17 लोगों की भूस्खलन की चपेट में आने से मौतें हुए हैं। जिला प्रशासन की ओर से ऐसे 365 स्थानों की शिनाख्त की गई है, जहां भूस्खलन का खतरा अधिक है। कामरूप महानगर जिला प्रशासन की ओर से इन सब बातों की जानकारी देने और महानगरवासियों को भूस्खलन के खतरे से बार-बार आगाह करने के बाद भी लोग सुनने को तैयार नहीं हैं। प्रशासनिक अधिकारियों का कहना है कि भूस्खलन से होने वाले जान-माल के नुकसान को कम करने के लिए लोगों में जागरूकता लाना बहुत जरूरी है। जब तक लोग जागरूक नहीं होंगे। पहाड़ियों पर खतरनाक स्थानों पर घर बनाकर रहेंगे, तब तक यह समस्या ऐसे ही बनी रहेगी। जिला प्रशासन के लिए अकेले अपने दम पर लोगों को जागरूक बनाना संभव नहीं है। इसके लिए गैर सरकारी समाजसेवी संगठनों को भी आगे आकर काम करना चाहिए। इस काम को करने के लिए सरकार, प्रशासन, सामाजिक संगठन और गणमान्य लोगों को साथ में लेकर एक अभियान के रूप में आगे बढ़ाना होगा। इस अभियान के तहत लोगों को पहाड़ी इलाकों में वृक्षारोपण के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है। यह सभी जानते हैं कि पेड़ों की अंधाधुंध कटाई भी बाढ़ व भूस्खलन का एक बहुत बड़ा कारण है। पहाड़ियों पर जब पेड़ लहराएंगे, पेड़ों की कटाई जब बंद होगी तभी जाकर महानगर को भूस्खलन के खतरे से बचाया जा सकेगा। हमें यह समझ लेनी चाहिए कि आंदोलन, धरना-प्रदर्शन, हड़ताल-बंद का आयोजन कर बाढ़-कटाव-भूस्खलन जैसी समस्या से निजात नहीं पा सकते। इसके लिए अभी को एकजुट होकर प्रयास भी करने होंगे।

भ्राम्यमान थिएटर की 'भाग्यदेवी'

असम में भ्राम्यमान थिएटर का इतिहास बहुत पुराना है। नलबाड़ी जिले के पाठशाला को असम का बालीवुड कहा जाता है। आज से पांच दशक पहले इसी शहर से 'भाग्यदेवी थिएटर' का जन्म हुआ था। एक थिएटर गोष्ठी का अपनी स्थापना के पचास साल पूरे करना कम बड़ी बात नहीं है। राज्य के सांस्कृतिक जगत में इसे एक उपलब्धि के तौर पर देखा जाना चाहिए। इन पांच दशकों में न जाने कितने ही कलाकारों ने भाग्यदेवी के मंच से अपने कैरियर की शुरुआत की और अपने भाग्य को निखारा-संवारा। भाग्यदेवी थिएटर की इस यात्रा को भ्राम्यमान थिएटर संस्कृति से जोड़कर देखा जाना चाहिए। जब कभी भी असम के भ्राम्यमान थिएटर का इतिहास लिखा जाएगा, उसमें भाग्यदेवी थिएटर का जिक्र स्वर्णाक्षरों के साथ किया जाएगा। पिछले कई सालों से राज्य के भ्राम्यमान थिएटरों को जहां एक ओर दर्शकों सहयोग-समर्थन मिल रहा है, वहीं दूसरी ओर इनके संचालन को लेकर विवाद भी रहा है। मंच पर अथवा मंच के पीछे काम करने वाले कलाकारों ने कई बार थिएटर मालिकों पर तरह-तरह के आरोप लगाए हैं। मगर, जहां तक भाग्यदेवी थिएटर

की बात है तो वह ऐसे सभी प्रकार के आरोप-प्रत्यारोपों से मुक्त रहा है। भ्राम्यमान थिएटर यात्रा के दौरान आने वाले बहुत से उतराव-चढ़ाव का गवाह रहा है भाग्यदेवी थिएटर। इसके रंगमंच पर अभिनय करने वाले बहुत से अभिनेता-अभिनेत्री, कलाकार-तकनीशियन आज इस दुनिया में नहीं हैं, मगर भाग्यदेवी का रंगमंच अब भी गुलजार है। इनमें से कुछ कलाकरों को शोहरत मिली तो कुछ कलाकार वैसे ही समय की गुमनामियों में खो गए। इसे दुनिया की सच्चाई के तौर पर भी देखा जाना चाहिए कि अभिनेता-अभिनेत्री सभी का आना-जाना लगा रहेगा, मगर रंगमंच सदैव बना रहेगा। पात्र-नाटक बदलते रहेंगे, मगर नाट्य-मंचन का सिलसिला जारी रहेगा। असम के हर एक कलाकार का यह सपना रहा है कि वह कम से कम एक बार भाग्यदेवी थिएटर के मंच पर अभिनय जरूर करे। यह ऐसी गोष्ठी है, जहां पूरे साल भर सभी लोग एक परिवार की तरह रहते हैं।

स्व. शरत मजुमदार ने विभिन्न प्रकार की बाधाओं को झेलते हुए भाग्यदेवी थिएटर को गति प्रदान की। अपने जन्मकाल से ही यह थिएटर गोष्ठी मौलिक सृजनता पर विशेष ध्यान देती आई है। स्व. मजुमदार के दिवंगत हो जाने के बाद उनके बेटे सुबोध मजुमदार अपने पिता के सपनों को साकार करने में लगे हैं। दर्शकों की पसंद को सर्वोच्च सम्मान देने की नीति पर चलने के कारण इस थिएटर के नाटक को देखने के लिए दर्शकों की भीड़ टूट कर उमड़ती है। राज्य का कोई सा भी शहर-गांव हो, जहां भी 'भाग्यदेवी' जाती है, कलाप्रेमी दर्शकों की भारी भीड़ उमड़ पड़ती है। स्व. मजुमदार और बाद में उनके बेटे ने भाग्यदेवी थिएटर का इतने शानदार तरीके से संचालन किया कि इसे कभी भी संकट-समस्याओं का मुंह नहीं देखना पड़ा। जहां तक फायदे-नुकसान का सवाल है तो उसका भी पलड़ा कभी इधर तो कभी उधर डोलता रहा। वैसे यदि भ्राम्यमान थिएटर की सफलता-असफलता की बात की जाए तो इसके लिए नियमित आय होना बहुत जरूरी है। यह बात सभी लोगों को पता नहीं होगी कि भ्राम्यमान थिएटर चलाने के नाम पर प्रतिदिन हजारों रुपयों का खर्च बैठता है। एक थिएटर गोष्ठी में कलाकार-तकनीशियन, अधिकारी-पदाधिकारी, श्रमिक-मजदूर सहित सैकड़ों लोग होते हैं। नाट्य-

मंचन काल के दौरान इन सभी के रहने-ठहरने, खान-पान की पूरी जिम्मेदारी थिएटर मालिकों पर ही होती है। ऐसे में यदि नाटक देखने के लिए दर्शकों की भीड़ नहीं उमड़ी तो उस थिएटर के अस्तित्व पर ही संकट के बादल मंडराने लगते हैं।

आज के दिन भाग्यमान थिएटरों के मंच पर अभिनय के साथ-साथ ग्लैमर का भी तड़का देखने को मिलता है। साफगोई के साथ कहा जाए तो अब ग्लैमर को भी सफलता का एक पैमाना माना जाने लगा है। भाग्यदेवी थिएटर के मंच पर ऐसा नहीं दिखता। यहां अभिनय-अभिनेताओं पर विशेष तवज्जो दी जाती रही है। मगर, बदलते समय और दर्शकों की पसंद को ध्यान में रखते हुए अब भाग्यदेवी के मंच पर उन कलाकारों को भी अहमियत मिलने लगी है, जिनका ग्लैमर की दुनिया में भी बड़ा नाम है। इसके बावजूद भाग्यदेवी ने अपने मूल स्वभाव-चरित्र के साथ किसी भी प्रकार का समझौता नहीं है। संभवत: यही वजह है कि पचास पूरे करने के बाद भी भाग्यदेवी थिएटर को मिल रहे दर्शकों के प्यार में किसी भी प्रकार की कमी नहीं आई है।

योग दिवस पर प्रधानमंत्री का असमिया गमछा प्रेम

पिछले साल की तरह इस साल भी देश-विदेश में तीसरा अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस विभिन्न कार्यक्रमों के साथ बड़े पैमाने पर मनाया गया। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस पर लखनऊ के रमाबाई अंबेडकर मैदान में उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ के साथ योग किया। मोदी-योगी के साथ करीब 55 हजार लोगों ने भी योग किया। इसमें 7,750 स्कूली बच्चों के अलावा 27 संस्थान भी शामिल थे। आयुष मंत्रालय के मुताबिक देश भर में करीब 5,000 स्थानों के अलावा 150 देशों में भी योग दिवस पर विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन किया गया। वैसे यदि देखा जाए तो इस साल का योग दिवस भी कुछ पिछले साल जैसा ही था। मगर, असम के परिप्रेक्ष्य में यदि देखें तो इसके कई मायने निकलकर सामने आते हैं। असम का शायद ही कोई व्यक्ति होगा, जिसकी नजर योग कर रहे प्रधानमंत्री के गले में लटकते असमिया गमछा पर नहीं पड़ी हो। श्री मोदी का असमिया गमछा प्रेम कोई

नया नहीं है। इससे पहले भी वे कई बार सार्वजनिक स्थानों पर असमिया गमछा में नजर आ चुके हैं। पाठकों को याद होगा सर्वानंद सोनोवाल के राज्य की सत्ता संभालने के कुछ ही दिन बाद इलाहाबाद में पार्टी की राष्ट्रीय कार्यकारिणी की बैठक हुई थी। इस बैठक में शामिल सभी भाजपा नेताओं ने असम के परंपरागत फुलाम गमछा को अपने गले में डालकर अपने ही अंदाज में भाजपा को शानदार जीत दिलाने के लिए असमवासियों के प्रति आभार प्रकट किया था। यह पहला मौका था, जब भाजपा ने अपनी राष्ट्रीय कार्यकारिणी की बैठक में किसी राज्य विशेष को इतना मान-सम्मान दिया था। कार्यकारिणी में शामिल सभी नेताओं ने फुलाम गमछा पहनकर जिस तरह से असम और असमवासियों का मान बढ़ाया, उसे राज्य की जनता आज तक भूली नहीं है। इस बार योग दिवस पर प्रधानमंत्री ने असमिया गमछा पहनकर स्वयं को असम की कला-संस्कृति का ब्रांड एंबेस्डर बताने की कोशिश की है। प्रधानमंत्री के असम प्रेम को देश-विदेश के लाखों करोड़ों लोगों ने देखा है। अब अपने असम प्रेम को साबित करने की बारी हमारी है। जब समूचा देश ही अपनी पुरातन परंपरा-संस्कृति, पहनावे-खानपान की ओर लौट रही है। तब हमें देखना होगा कि अपनी कला-संस्कृति के प्रति हम कितने संजीदा और गंभीर हैं। देश का प्रधानमंत्री यदि सार्वजनिक स्थान पर बेहिचक असमिया गमछा पहन सकता है तो हम असमवासी अपनी ही संस्कृति के प्रतीक गमछा को अपने गले में धारण क्यों नहीं कर सकते।

प्रधानमंत्री ने योग दिवस की सुबह हम असमवासियों को जो राह दिखाई है, इस पर चल कर हम न सिर्फ राज्य की बेरोजगारी दूर करने से लेकर कुटीर उद्योग को बढ़ाने और असम की कला-संस्कृति को और अधिक जीवंत बनाने में अपना योगदान दे सकते हैं, बल्कि अन्य राज्यों के लिए एक प्रेरणास्रोत भी बन सकते हैं। कल्पना करें, जब स्थानीय युवती-महिलाओं द्वारा बुना गया और युवाओं द्वारा बाजार में बेचा गया गमछा हर एक असमिया व्यक्ति के गले में नजर आएगा। इससे हमारा सांस्कृतिक गठबंधन तो मजबूत होगा ही साथ-साथ राज्य को आर्थिक मजबूती भी मिलेगी।

असमिया गामोछा के प्रति हमारा प्रेम-सम्मान तभी सार्थक कहलाएगा,

जब बाहरी राज्यों से मंगवाए जाने वाले गमछा, मेखला चादर तथा असम के अन्य परंपरागत परिधानों पर पूर्णत: रोक लगेगी और असम के बुनकर उद्योग को फलने-फुलने का मौका मिलेगा। इतने सालों के बाद राज्य सरकार को यह बात तो समझ में आ जानी चाहिए कि बुनकरों को सिर्फ धागा और हस्ततांत मशीन बांटकर ही राज्य के वस्त्र उद्योग का भला नहीं होने वाला। वस्त्र उद्योग को खड़ा करने के लिए चाहिए एक मजबूत बाजार। हमारे गमछा, मेखला चादर आदि का उत्पादन भी हमें करना पड़ेगा और खरीददार भी हम ही हैं। ऐसे में बाहरी राज्यों से चोरी छिपे मंगवाए जाने वाले गमछा-मेखला आदि पर पूरी कड़ाई से रोक लगना जरूरी है। स्थानीय बाजार को प्रोत्साहित कर और गैर कानूनी व्यापार को हतोत्साहित करके ही असमिया गमछा, असमिया वस्त्र उद्योग का भला किया जा सकता है। देश के प्रधानमंत्री जब असमिया गमछा, असमिया संस्कृति के लिए इतना कर सकते हैं तो हम असमिया उतना क्यों नहीं कर सकते। आइए आज से ही गले में असमिया गमछा डालने और असम की कला-संस्कृति को बचाने, संवारने का संकल्प लें। हर असमिया व्यक्ति को गले में असमिया गमछा डालने को प्रेरित करें।

अंबुवासी मेला और पर्यटन की संभावनाएं

गुवाहाटी के नीलांचल में इन दिनों अंबुवासी मेला चल रहा है। राज्य सरकार-जिला प्रशासन से लेकर विभिन्न समाजसेवी संगठन मेले को सफल बनाने में लगे हैं। पिछले सालों की तरह इस बार भी बाहरी राज्यों से बड़ी संख्या में श्रद्धालु-साधक, साधु-संन्यासी नीलांचल पर्वत पर डेरा डाले हुए हैं। नीलांचल पर जगह-जगह साधना का दौर, भजन-कीर्तन का सिलसिला जारी है। दो दिन बाद सभी मां कामाख्या के दर्शन करने के बाद अपने घर-आश्रम को लौट जाएंगे। राज्य का पर्यटन विभाग अंबुवासी मेले को देश-विदेश के पर्यटकों के सामने एक विशेष नजरिए के साथ पेश करना चाहता है। पर्यटन विभाग की यह कोशिश दिखाई भी देती है। पूरे महानगर को अंबुवासी मेले से जुड़े बैनर-पोस्टरों से पाट दिया गया है। क्षेत्रीय-राष्ट्रीय टीवी चैनलों में अंबुवासी मेले से संबंधित विज्ञापन प्रसारित किए जा रहे हैं। अखबारों में विज्ञापन दिए जा रहे हैं। पर्यटन विभाग की योजना है कि अंबुवासी मेले में आने वाला श्रद्धालु-दर्शक सिर्फ कामाख्या दर्शन करने के ही अपने घर लौटकर न जाएं। मेले की समाप्ति के बाद वह गुवाहाटी

और इसके आसपास के दर्शनीय स्थलों को देखें, महाबाहु ब्रह्मपुत्र के प्राकृतिक सौंदर्य को निहारें। जलक्रीड़ा का आनंद उठाएं और वक्त मिले तो राज्य के अन्य दर्शनीय स्थलों का भी दौरा करें। पर्यटन विभाग की इस कोशिश की जितनी भी तारीफ की जाए कम है। इसके लिए पर्यटन विभाग की ओर से बाहर से आने वाले पर्यटकों के लिए विशेष पैकेज, विशेष रहने-ठहरने के भी प्रबंध किए गए हैं। पहले अंबुवासी मेले में आने वालों के लिए रहने-ठहरने के खास प्रबंध नहीं हुआ करते थे, मगर अब स्थिति बदल गई है। आप अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार रहने-ठहरने संबंधी हर प्रकार की सुविधाएं प्राप्त कर सकते हैं।

पयर्टन विभाग पिछले कई सालों से पर्यटकों को आकर्षित करने में लगा है। इसके नतीजे भी दिखने लगे हैं। पर्यटकों की संख्या में निरंतर वृद्धि दर्ज की जा रही है। लेकिन पर्यटन विभाग का मानना है कि इस क्षेत्र में मौजूद संभावनाओं का अभी तक ठीक से लाभ नहीं लिया जा सका है। असम का प्राकृतिक सौंदर्य, ताल-नदी, पहाड़-झरने, ऐतिहासिक-पौराणिक स्थल आदि को जनता के सामने लाकर यहां के पर्यटन उद्योग को बुलंदियों तक पहुंचाया जा सकता है। पर्यटन बढ़ेगा तो सड़क-रास्ते, होटल, गेस्ट हाउस आदि का भी विकास होगा। राज्य में नए-नए उद्योग-रोजगार का सृजन होगा और सबसे बड़ी बात बेरोजगारों को रोजगार मिलेगा।

वैसे तो अंबुवासी मेला पहले जैसा ही दिखता है, मगर गहराई से यदि ध्यान दिया जाए तो बहुत कुछ बदला-बदला सा नजर आता है। मेला परिसर में न तो कहीं कचरे का ढेर दिखाई देता है और न ही कहीं पसरी पड़ी गंदगी। हम यदि पांच साल पीछे मुड़कर देखें तो तब अंबुवासी मेले के समय कामाख्या धाम में चारों ओर कीचड़-गंदगी ही फैली नजर आती थी। आमतौर पर अंबुवासी मेले के दौरान बरसात होती है और यह बरसात गंदगी को और अधिक फैलाने का काम करती थी। इसके अलावा नीलांचल पर्वत पर विभिन्न संगठनों द्वारा लगाए जाने वाले खान-पान के शिविर भी गंदगी को बढ़ाने का काम करते थे। मगर अब वह स्थिति नहीं है। जिला प्रशासन ने पिछले कई 3-4 सालों से मेला परिसर की साफ-सफाई और स्वच्छता पर विशेष ध्यान दे रही है। इसका नतीजा भी मेले के दौरान दिखाई दे रहा है। मेले में गंदगी साफ करने के लिए न सिर्फ बड़ी

संख्या में सफाईकर्मी नियुक्त किए गए हैं, बल्कि श्रद्धालुओं को भी समझाया जा रहा है कि मेले में गंदगी न फैलाएं। नीलांचल पर्वत पर जुटने वाली लाखों की भीड़ को संभालने के लिए पेयजल, शौचालय, स्नानागार आदि की पर्याप्त व्यवस्था की गई है, ताकि इनकी कमी के कारण गंदगी न फैले।

राज्य सरकार भी अंबुवासी मेले के माध्यम से देशी-विदेशी पर्यटकों को आकर्षित करने की कोशिशों में लगी है। मेले में आने वाले श्रद्धालु-साधकों के स्वास्थ्य, यातायात, खान-पान, रहने-ठहरने के प्रशासन द्वारा विशेष प्रबंध किए गए हैं। इसकी देखभाल के लिए सरकारी अधिकारी-कर्मचारियों की एक पूरी टीम को लगाया गया है। मेले के दौरान जुटने वाली भीड़ की सुरक्षा के लिए भी व्यापक प्रबंध किए गए हैं। पुलिस प्रशासन के अलावा कामाख्या देवोत्तर बोर्ड ने भी अपनी ओर से सुरक्षा के व्यापक प्रबंध किए हैं। जगह-जगह सीसी टीवी, स्वयंसेवक और स्काउट-गाइड के माध्यम से हर आने-जाने वालों पर नजर रखी जा रही है।

पेरिस जलवायु समझौते से अमरीका का पीछे हटना

बात जब अपने स्वार्थ की आती है तो अमरीका अपने दुश्मन को भी गले लगाने से परहेज नहीं करता, मगर हित पूरा होने पर अपने मित्र राष्ट्र को झटकने में भी देर नहीं लगाता। अपने फायदे के लिए दुश्मन देश के साथ गलबहियां करने और 'मतलब निकल गया तो पहचानते नहीं' की तर्ज में स्वयं को ढाल लेना अमरीका की पुरानी फितरत है। अंतर्राष्ट्रीय मामलों के इतिहास पर नजर दौड़ाई जाए तो अमरीका की कुछ ऐसी ही छवि उभरकर सामने आती है। पूरी दुनिया पर अपनी दादागिरी को कायम रखने के लिए अमरीका द्वारा हथियारों का उपयोग करना आम बात है। मदद-सहायता का लोभ दिखाकर अमरीका किस तरह अपना उल्लू सीधा करता है, इसे जानना है तो अमरीका-पाकिस्तान के रिश्ते का अध्ययन करना बहुत जरूरी है। अमरीका ऐसा कोई काम नहीं करता, जिससे उसको नुकसान उठाना पड़े। हाल ही में अमरीका राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप की टिप्पणी ने उक्त सारी बातों को एक बार फिर सच साबित कर दिया है। अमरीकी राष्ट्रपति ने पेरिस जलवायु समझौते से पीछे हटने के संदर्भ में जो दलीलें दी है, उसने विश्वपटल पर एक बार फिर अमरीका की असली छवि को प्रस्तुत करने का काम किया है। ट्रंप ने दलील दी है कि अमरीका भारत-चीन आदि देशों के विकास के लिए फुटी कौड़ी खर्च नहीं करेगा और इसलिए वह पेरिस जलवायु समझौते से पीछे हट रहा है। अमरीका का कहना है कि अन्य देश के विकास का बोझ वह क्यों उठाए, लिहाजा वह पेरिस जलवायु समझौते से पीछे हट रहा है।

डोनाल्ड ट्रंप के अमरीकी राष्ट्रपति पद की जिम्मेदारी संभालने के बाद से ही ट्रंप पेरिस जलवायु समझौते से पीछे हटने के पक्ष में तरह-तरह की दलीलें देते

आए हैं। विगत 2 जून को अमरीकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने जलवायु परिवर्तन पर पेरिस समझौते से अमरीका को अलग करने के फैसले की घोषणा करते हुए कहा कि पूर्ववर्ती ओबामा प्रशासन के दौरान 190 देशों के साथ किए गए इस समझौते पर फिर से बातचीत करने की जरूरत है। चीन और भारत जैसे देशों को पेरिस समझौते से सबसे ज्यादा फायदा होने की दलील देते हुए ट्रंप ने कहा कि जलवायु परिवर्तन पर समझौता अमरीका के लिए अनुचित है, क्योंकि इससे अमरीका पर वित्तीय बोझ बढ़ेगा। ट्रंप ने कहा कि वे चाहते हैं कि जलवायु परिवर्तन को लेकर पेरिस समझौते में अमेरिकी हितों के लिए एक उचित समझौता हो। उन्होंने कहा कि इस समझौते के अनुसार भारत और चीन दोनों ही देश कोयला उत्पादन और उसका व्यवहार कर सकेंगे। वर्ष 2020 तक भारत अपने यहां कोयला उत्पादन में दोगुनी वृद्धि कर सकता है। चीन कोयला द्वारा संचालित परियोजनाओं को जारी रख सकेगा, जबकि इसके लिए अमरीका को मनाही की गई है। ट्रंप ने इसे दोहरा मापदंड बताते हुए इसी को समझौते से पीछे हटने का आधार बनाया है। हालांकि उन्होंने यह भी कहा, हम इस समझौते से बाहर हो रहे हैं लेकिन फिर से बातचीत शुरू करेंगे और हम देखेंगे कि क्या हम एक ऐसा समझौता कर सकते हैं, जो उचित हो। अगर हम कर सके तो यह अच्छा होगा और अगर नहीं कर सके तो भी कोई बात नहीं। विश्व में प्रदूषण की मात्रा कम करने के उद्देश्य से किए गए पेरिस जलवायु समझौते से पीछे हटने की वजह से ट्रंप की विश्व भर में आलोचना हो रही है। इस पूरे प्रकरण में यह बात भी स्पष्ट हो गई कि चीन की बढ़ती ताकत पर अंकुश लगाने के लिए अमरीका ने भारत के साथ संबंध बनाए, मगर जब अमरीकी हित की बात आई तो उसने भारत को पूरी तरह से दरकिनार करने में पल भर नहीं लगाया। ट्रंप के इस फैसले की पूर्व अमरीकी राष्ट्रपति बराक ओबामा ने निंदा करते हुए कहा कि इस फैसले से अमरीका को विश्व-दरबार में नीचा देखना पड़ेगा। ओबामा ने इस प्रकार के फैसलों को भविष्य के लिए नुकसानदेह बताया। 2015 में हुए पेरिस क्लाइमेट समझौते में 195 देश शामिल है। इसका मकसद कार्बन एमिशन में कमी लाना और ग्लोबल वॉर्मिंग को 2 डिग्री सेल्सियस तक नीचे लाना है। बाद में इसे 1.5 डिग्री सेल्सियस तक ले जाने के लिए प्रयास करना और अमरीका के लिए 26% कार्बन एमिशन कम करने का लक्ष्य तय करना है।

परीक्षाफल के बाद अब दाखिले की समस्या

मैट्रिक-हायर सेकेंड्री परीक्षाओं के नतीजे निकल चुकेहैं। अब एक ओर जहां अभिभावक-विद्यार्थियों में अपने मनचाहे महाविद्यालय में दाखिला लेने की होड़ लगी हुई है, वहीं दूसरी ओर दोनों में इस बात को लेकर विवाद भी कम गहरा नहीं है कि बच्चा अपनी आगे की पढ़ाई किस संकाय में करेगा। डाक्टर पिता चाहता है कि बेटा विज्ञान संकाए में पढ़ाई करे, लेकिन बेटी का मन कला संकाए के माध्यम से पढ़ाई करने का है। एक इंजीनियर पिता चाहता है बेटा इंजीनियर बने, लेकिन बेटा और ही कुछ बनना चाहता है। यहां स्थिति बिल्कुल 'थ्री इडियट' फिल्म जैसी है। यह स्थिति तो उन अभिभावक-बच्चों के बीच की है, जहां बच्चों से बहुत शानदार रिजल्ट किया है। मगर उन बच्चों का क्या जिन्होंने तीसरी श्रेणी में परीक्षा पास की है। ऐसे बच्चों की स्थिति 'न घर के न घाट के' वाली बनी हुई है। तीसरी श्रेणी में उत्तीर्ण करने वालों के सामने संकाय चयन की बात दूर रही किसी महाविद्यालय में आगे की पढ़ाई के लिए दाखिला मिलना ही एक समस्या बना हुआ है। इस बार मैट्रिक की परीक्षा में 3,72,640 विद्यार्थी बैठे थे, इनमें से सिर्फ 1,78,656 विद्यार्थी ही परीक्षा उत्तीर्ण कर पाए। इसका मतलब हुआ कि कुल 1,93,984 विद्यार्थी मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण नहीं कर पाए। इसी तरह हायर सेकेंड्री की परीक्षा में भी हजारों विद्यार्थी उत्तीर्ण नहीं हो पाए।

अब सवाल यह उठता है कि इतनी बड़ी संख्या में अनुत्तीर्ण हुए विद्यार्थियों के भविष्य का क्या होगा। राज्य की इतनी बड़ी मानव संपदा को हम मुख्यधारा से अलग-थलग भी नहीं कर सकते। इस मानव संपदा का कौशल विकास कर

इसे राष्ट्र की प्रगति का हिस्सेदार बनाया जा सकता है। इस दिशा में केंद्र सरकार द्वारा संचालित दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल विकास योजना जैसे कार्यक्रम कारगार साबित हो सकते हैं। कुछ भी हो, सरकार और समाज शास्त्रियों को इस समस्या पर गंभीरता से विचार करना होगा। शिक्षा विभाग की ओर से इस साल से मैट्रिक की परीक्षा में कंप्लमेंटरी परीक्षा का चलन फिर से शुरू कर इस समस्या का तनिक समाधान निकालने की कोशिश की है। मगर, इस दिशा में शिक्षा विभाग को अभी भी अनेकों बड़े कदम उठाने हैं। इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता कि आजादी के 70 साल बाद भी हमारे राज्य में पर्याप्त संख्या में उच्चतम विद्यालय अथवा महाविद्यालय नहीं है। मैट्रिक में हर साल जितने विद्यार्थी उत्तीर्ण होते हैं, उतने विद्यार्थियों के लिए उच्चतम विद्यालय अथवा महाविद्यालय में सीट ही नहीं है। ऐसी स्थिति में शिक्षा विभाग पर हरदम एक प्रकार का दबाव रहता है। इस बार मैट्रिक के परीक्षा नतीजों को लेकर भी कम राजनीति नहीं हुई। सत्ता पक्ष से लेकर विपक्ष के सुधार को लेकर सत्ता पक्ष, विपक्ष और आमजनता में बहस हो तो इसमें किसी को आपत्ति नहीं है, लेकिन ऐसा कोई भी नहीं चाहेगा कि विद्यार्थियों के भविष्य और शिक्षण संस्थानों को लेकर किसी भी प्रकार की राजनीति हो।

शिक्षा विभाग को भी अपने आप में बदलाव लाने होंगे। असम माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (सेबा) द्वारा संचालित मैट्रिक की परीक्षा के दौरान गाय द्वारा उत्तर-पुस्तिकाओं के चर जाने अथवा प्रश्नपत्र वितरण में गड़बड़ी जैसी गलतियों को जनता-सरकार नजरअंदाज करने के मूड में नहीं है। वैसे भी ऐसी घटनाओं गलती नहीं लापरवाही का ही नतीजा कहा जाना चाहिए। खैर, अब तक जो होना था, हुआ। अब शिक्षा विभाग में बदलाव आना ही चाहिए। हम यह क्यों नहीं सोच सकते कि मैट्रिक का परीक्षाफल शत-प्रतिशत होगा अथवा बिना ग्रेस मार्क या तीसरी श्रेणी के सभी विद्यार्थी अच्छे नंबरों से मैट्रिक की परीक्षाएं उत्तीर्ण करेंगे। ऐसा हो सकता है, यह जिम्मेदारी सेबा को लेनी होगी और मैट्रिक की परीक्षा में उत्तीर्ण होने वाले सभी विद्यार्थियों को उच्चतर विद्यालय अथवा महाविद्यालयों में दाखिला मिले, यह जिम्मेदारी राज्य सरकार को भी उठानी पड़ेगी। कोई बच्चा किसी भी वजह से मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद बिना दाखिले के रह जाए, यह बड़ी शर्म की बात है। सरकार के लिए भी और समाज के लिए भी।

भूपेन हजारिका सेतु

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने विगत 26 मई को धौला-सदिया के बीच देश के सबसे लंबे 9.15 किलोमीटर (5.69 मील) पुल उद्घाटन कर असम सहित पूर्वोत्तर की जनता को यह संदेश देने की कोशिश की है कि देश के विकास में इस क्षेत्र की प्रगति कितना महत्व रखती है। ब्रह्मपुत्र की उपनदी 'लोहित' पर बने इस पुल का एक छोर अरुणाचल प्रदेश के धौला और दूसरा असम के तिनसुकिया जिले के सदिया कस्बे से जुड़ा है। इस पुल के बन जाने से न केवल असम-अरुणाचल प्रदेश के बीच की दूरी 165 किलोमीटर कम हो जाएगी, बल्कि यात्रा अवधि भी छह घंटे से घटकर मात्र एक घंटे ही रह जाएगी। इस पुल के बनने से जहां रोजाना 10 लाख रुपए के डीजल-पेट्रोल की बचत होगी, वहीं दो प्रदेशों की दूरी कम होगी। साथ ही साथ दोनों प्रदेशों का सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास भी संभव हो पाएगा। इस पुल के बन जाने से आर्थिक दृष्टि से लोगों को लाभ मिलेगा तथा पर्यटन का नया भी मार्ग खुलेगा। अब सदिया के उच्च गुणवत्ता वाले अदरक को विदेश तक भेजा जा सकेगा और इससे अदरक की खेती करने वाले किसानों की आर्थिक स्थिति सुधरेगी, इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता।

श्री मोदी ने इस पुल का नामकरण 'भूपेन हजारिका सेतु' के नाम पर करके असमवासियों की भावना का सम्मान किया है। सामरिक दृष्टि से भी देश के सबसे बड़े इस पुल को बहुत महत्वपूर्ण माना जा रहा है। भारत-चीन की अंतर्राष्ट्रीय सीमा नजदीक होने के युद्ध की स्थिति में यह पुल एक अहम भूमिका निभा सकता है। 60 टन वजह का विध्वंसक टैंक इस पुल पर से होकर बड़े आराम से गुजर सकता है। इस पुल के बनने से चीन के ललाट पर भी बल पड़ गए हैं। चीनी विदेश मंत्रालय ने कहा है कि 'चीन-भारतीय सीमा क्षेत्रों के पूर्वी हिस्से में चीन की स्थिति सुसंगत और स्पष्ट है।' विश्लेषकों का कहना है कि इस पुल से अरुणाचल प्रदेश में भारतीय सैनिकों के तेज गति को सुनिश्चित किया जा सकेगा, जो चीन की सीमा पर भारत

की रक्षा को मजबूत करेगा। यह सबको पता है कि चीन और भारत ने 1962 में एक संक्षिप्त युद्ध लड़ा था, जब चीनी सेना अरुणाचल प्रदेश में घुस गई थी और उसके मैकमोहन लाइन से वापस जाने के बाद एकतरफा युद्धविराम घोषित किया। तब से ही भारतीय और चीनी सैनिकों झड़पें होती रहती है। मीडिया में आई खबरों को यदि मानें तो चीन भी लंबे समय से भारत की सीमा के आधार पर बुनियादी ढांचे का निर्माण कर रहा है। इस पुल के उद्घाटन के बाद पुल पर प्रधानमंत्री की अकेले-अकेले की गई चहलकदमी के भी अलग-अलग मायने निकाले जा रहे हैं। चहलकदमी के दौरान उनके चेहरे की मुस्कान में आत्मविश्वास की झलक को भी लोगों ने देखा व महसूस किया होगा। देश की सुरक्षा को और अधिक सुदृढ़ किए जाने से उभरी संतोष की झलक भी उनके चेहरे पर दिखाई दी थी। हम इस बात का जिक्र कर चुकेहैं कि यह पुल बात-बात पर भारत को आंख दिखाने वाले चीन के आंखों की किरकिरी साबित हो सकता है। चीन के साथ कंधे से कंधा मिलाकर बात करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय सीमा पर ऐसे ही एक मजबूत पुल की जरूरत बहुत पहले से महसूस की जा रही थी। इसके बन जाने से भारत-चीन के बीच कभी यदि युद्ध छिड़ता है तो उस दौरान इस पुल के ऊपर से सैनिक साजो-सामान को आसानी से अंतर्राष्ट्रीय सीमा तक ले जाया जा सकता है। इतने दिन सीमावर्ती क्षेत्र में चीन द्वारा ही निर्माण कार्य चलाए जाने की खबरें सुनने को मिलती थी। कभी हैलीपेड तो सभी सड़क निर्माण की खबरें आम थी। ऐसे में भारत द्वारा इस पुल के निर्माण को 'सौ सुनार की' के जवाब में 'एक लोहार की' कहा जा सकता है।

वैसे भी यदि हम चीन की बात छोड़ भी दें तो यह पुल असम-अरुणाचल प्रदेश के विकास की गति को तेज करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। वैसे भी पूर्वोत्तर क्षेत्र पिछड़े क्षेत्र को अत्याधुनिक यातायात-संचार व्यवस्था की शुरू से ही जरूरत रही है। वैसे यदि देखा जाए तो इस पुल का निर्माण कार्य पिछली कांग्रेसी सरकार के दिनों में शुरू हुआ था, मगर पुल के निर्माण कार्य को तेजी से समाप्त कर पुल को लोकार्पण लायक बनाने के लिए मोदी सरकार का धन्यवाद अदा करना ही पड़ेगा। प्रसंगवश इस बात का भी जिक्र किया जाना चाहिए कि जनता को यह लगने लगा है कि असम सहित पूर्वोत्तर के विकास पर नरेंद्र मोदी की सरकार पिछली सरकारों की तुलना में अधिक ध्यान दे रही है।

स्मार्ट पुलिस : वर्दी बदली अब व्यवहार बदलने की बारी

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के स्मार्ट पुलिस के सपने को साकार करने की कवायद शुरू हो गई है। गुवाहाटी ट्रैफिक पुलिस की वर्दी बदले जाने को इसकी शुरुआत के रूप में देखा जा सकता है। यह सही है कि इंसान की मनोदशा और दिमागी राहत के लिए संतुलित परिधान का होना बेहद जरूरी है। अब तक हम ट्रैफिक पुलिस को सफेद शर्ट-पैंट और ऊन की बनी गहरे नीले रंग की टोपी में ही देखा करते थे। ट्रैफिक पुलिस की शर्ट भी उसकी पैंट के मोटे से बनी कपड़े की होती थी। अब जरा कल्पना कीजिए उस ट्रैफिक कर्मी की जो, जुलाई की चिलचिलाती गर्मी में दोपहर 12 बजे महानगर के किसी चौराहे पर हमको यातायात व्यवस्था को संचालित करता दिखाई पड़ता है। जुलाई की दोपहर और सिर पर ऊन से बनी टोपी, इससे अधिक अमानवीय बात क्या हो सकती है। भीषण गर्मी में जब हमें अपने सिर पर पंखा अथवा एसी-कूलर चाहिए, वैसे में पसीने से तर-ब-तर ट्रैफिक पुलिस कर्मी की हालत को आसानी से समझा जा सकता है। ट्रैफिक पुलिस की वर्दी में किए गए इस बदलाव के बाद अब उम्मीद की जा रही है कि उनके व्यवहार में भी बदलाव देखने को मिलेगा। कभी-कभी एक छोटी-सी बुरी आदत हमारी तमाम अच्छाइयों को ढंक देती है। असम पुलिस के साथ भी कभी-कभी ऐसा ही हुआ प्रतीक होता है।

बात चाहे कानून व्यवस्था की हो या ट्रैफिक व्यवस्था की। हम हर एक समस्या के लिए पुलिस को जिम्मेदार ठहराकर अपनी जिम्मेदारी पूरी हुई समझ लेते हैं। लेकिन अब हम नागरिकों को भी अपनी भूमिका को समझना-परखना होगा। गलत को गलत और सही को सही कहने की आदत डालनी होगी। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि पुलिस भी हमारे समाज के अंदर से आती है। समाज का जो स्वरूप होगा, इसका प्रभाव सभी पर पड़े, लेकिन पुलिस पर न पड़े ऐसा हो नहीं सकता।

लेकिन पुलिस अधिकारी-जवानों को भी यह बात समझनी होगी कि समाज व्यवस्था और शांति-शृंखला बनाए रखने में पुलिस की अहम भूमिका है। पुलिस यदि अपनी भूमिका से तनिक भी इधर-उधर हटती है तो इसका सीधा प्रभाव हमारी कानून व्यवस्था पर पड़ता है। हमने कभी-कभी महानगर के चौराहों पर देखा है, जब ट्रैफिक पुलिस कर्मी पांच मिनट के लिए इधर-उधर होते हैं, वाहनों के जाम लग जाते हैं। इसी से समझा जा सकता है कि कानून व्यवस्था को बनाए रखने के लिए पुलिस की उपस्थिति कितनी जरूरी है। वह भी चौबीसों घंटे-365 दिन।

इस नई वर्दी को पहनकर ट्रैफिक पुलिस स्मार्ट तो लगने लगे हैं। पिछले दो दिनों में महानगर के विभिन्न स्थानों पर नई वर्दी में तैनात पुलिस कर्मियों का आत्मविश्वास देखते ही बनता है। गुवाहाटीवासियों ने भी पुलिस के इस कदम का स्वागत किया है। हल्का नीला रंग व्यक्ति के हृदय की विशालता को दर्शाता है। पुलिस के अधिकारी-जवानों को भी इस रंग के अनुरूप अपना परिचय स्थापित करना होगा। हम जानते हैं यह योजना सिर्फ वर्दी में बदलाव लाने भर तक ही सीमित नहीं है। पुलिस के जनहितैषी-पीपुल्स फ्रैंड बने अब इसकेलिए कोशिशें शुरू कर देनी चाहिए। पुलिसकर्मियों की मनोचिकित्सकों के साथ नियमित बैठक (काउंसिलिंग) इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम साबित हो सकता है। इसके साथ ही यह भी जरूरी है कि जिस तरह से 70 साल पुरानी पुलिस की वर्दी को बदला गया, उस तरह पुलिस के प्रति आमजनता की भावना को भी बदला जाए। इसकेलिए विभिन्न समाजसेवी संगठनों को पुलिस विभाग को ही कोशिश करनी होगी। असम पुलिस समाज का रोल मॉडल बने, पुलिस और समाज के लिए यह बेहद जरूरी है।

हमारे समाज में आज भी पुलिस को वह सम्मान हासिल नहीं है, जो एक शिक्षक अथवा चिकित्सक को है। इसके कारणों को लेकर लंबी बहस की जा सकती है, लेकिन जिस पर समाज की शांति-कानून व्यवस्था की जिम्मेदारी हो, समाज में उसी का पूरा सम्मान न हो, इसे सुखद स्थिति नहीं कहा जा सकता। पुलिस के प्रति जनता के मन का डर और पुलिस से दूर-दूर रहने की प्रवृत्ति को भी बदले जाने की जरूरत है। इसके लिए पुलिस को ही शुरुआत करनी होगी। ऐसे किसी भी कदम का जनता समर्थन न करे ऐसा नहीं लगता, क्योंकि राज्य की जनता भी चाहती है कि हमारी पुलिस स्मार्ट बने।

देश में ही नहीं विश्व राजनीतिक पटल पर हो रहा है परिवर्तन

हमारे देश में ही नहीं पूरे विश्व के राजनीतिक पटल पर परिवर्तन की लहर देखने को मिल रही है। परंपरागत शासन व्यवस्था और पुरानी रीति-नीतियों से जनता ऊब चुकी है और परिवर्तन के लिए आतुर दिखती है। विशेषकर पिछले तीन सालों से विश्व भर में परिवर्तन की यह लहर सुनामी बनकर छाई हुई है। लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था द्वारा संचालित देशों में दिखाई पड़ रही इस परिवर्तन की लहर की वजह वहां के मतदाताओं के नजरिए में आए बदलाव को माना जा रहा है। ऐसे देशों के मतदाता राजनीतिज्ञों के झूठे वादे, भारी घोटाले, भ्रष्टाचार के आरोप आदि से बुरी तरह से आजीज आ चुके थे। तीन साल पहले राजनीतिक परिवर्तन की यह लहर हमारे देश से ही उठी थी और देखते ही देखते परिवर्तन की लहर सुनामी बनकर पूरे विश्व में फैल गई। नरेंद्र मोदी ने भारतीय राजनीतिक पटल पर जिस सुपर सुनामी का सृजन किया वह भारत तक ही सिमटी नहीं रही, बल्कि अमरीका को भी अपने आगोश में ले लिया। इसीलिए अमरीका की जनता ने भी भारतीय मतदाताओं की तर्ज पर अब की बार परिवर्तन के नाम पर मतदान किया और डोनाल्ड ट्रंप अमरीका के राष्ट्रपति पद पर आसीन हुए। इसी कड़ी में हम हाल ही में जीत कर आए दक्षिण कोरिया और इटली के राष्ट्रपति को भी शामिल कर सकते हैं।

उत्तर कोरिया और दक्षिण कोरिया के बीच जारी शीत युद्ध के बीच ही वामपंथी नेता मून-जा-इन को दक्षिण कोरिया की जनता ने अपने राष्ट्रपति के रूप में चुना। इसी क्रम में फ्रांस के मतदाताओं ने अपने राष्ट्रपति के रूप में एमेनुअल जीन माइकल फ्रेडेरिक मैकरान (39) को चुना। मैकरान का मुख्य मुकाबला दक्षिणपंथी नेता

ली पेन से था। मैकरान को फ्रांस के राष्ट्रपति पद तक पहुंचाने में उनकी पत्नी ब्रिगिट ट्रोगनेक्स की उल्लेखनीय भूमिका रही। उम्र में मैकरान से 24 साल बड़ी उनकी पत्नी ब्रिगिट ट्रोगनेक्स ने मात्र छह महीने में फ्रांस के राजनीतिक परिदृष्य को ही बदलकर रख दिया। वैसे कहावत भी है कि हर एक व्यक्ति की सफलता के पीछे किसी न किसी औरत का हाथ होता है। मैकरान की सफलता के मामले में तो यह कहावत सौ फीसदी सच साबित हुई है। मैकरान के राष्ट्रपति चुने जाने के बाद से तो ब्रिगिट ट्रोगनेक्स और अधिक चर्चा में आ गई है। मालूम हो कि नाटक का प्रशिक्षण लेने गए मैकरान प्रशिक्षण के दौरान ही अपनी ड्रामा टीचर ब्रिगिट ट्रोगनेक्स के प्रेमपाश में बंध चुके थे। उस वक्त ब्रिगिट न सिर्फ शादी-शुदा थीं, बल्कि तीन बच्चों की मां भी थीं। जब मैकरान के पिता को यह बात पता चली तो उन्होंने ब्रिगिट ट्रोगनेक्स से कहा कि जब तक उनका बेटा 18 साल का बालिग नहीं हो जाता तब तक वह उससे दूर रहें। लेकिन ब्रिगिट ने ऐसा वादा करने से इनकार कर दिया। उस वक्त मैकरान 16 साल के थे। उनकेआपसी संबंध बने रहे और अंतत: 2007 में ब्रिगिट के अपने पति को तलाक देने बाद इन दोनों ने शादी कर ली। शादी के बाद तमाम मैगजीनों समेत पूरे फ्रांस में उनकी अनोखी लव स्टोरी के किस्से बहुत मशहूर हुए। एक किताब 'एमेनुअल मैकरान : ए परफेक्ट यंग मैन' में इस किस्से को बखूबी पेश किया गया। इसके बाद मैकरान ने चुनाव जीता और ब्रिगिट को फ्रांस की फर्स्ट लेडी बनने का गौरव प्रदान किया। मालूम हो कि उम्र के लिहाज से बेमेल इस शादी की बुनियाद दोनों में छिपी प्रतिभा को परख लेने का आपसी समझ थी। उम्र में अपने से 24 साल बड़ी टीचर को पत्नी के रूप में पाने के बाद मैकरान की जिंदगी प्रवाह ही बदल गया। वे धीरे-धीरे अपने देश की राजनीति की ओर आकर्षित हुए और देश की राजनीतिक तस्वीर को ही बदलकर रख दिया। फ्रांस की जनता में परिवर्तन की लहर कैसे पैदा की जाए, इसकी पूरी पटपथा-निर्देशन और मंचन उनकी पत्नी ब्रिगिट ट्रोगनेक्स का ही था। ब्रिगिट ने मात्र एक साल में फ्रांस की राजनीति और बड़े-बड़े धुरंधर राजनेताओं को हिलाकर रख दिया था। उन्होंने न सिर्फ फ्रांस की जनता की कमजोरी-दुखती रग को पकड़ा। ब्रिगिट ट्रोगनेक्स ने पत्नी के साथ-साथ एक टीचर की भूमिका का भी शानदार प्रदर्शन किया, जिसकेनतीजे के रूप में मैकरान की इस बेमिसाल सफलता को देखा जा सकता है।

लाल बत्ती हटी, नेताओं की मानसिकता कब बदलेगी

हमारे देश के संविधान ने भले ही हर छोटे-बड़े, महिला-पुरुष, अमीर-गरीब, शिक्षित-अनपढ़ नागरिकों को समान अधिकार दिए हैं। संविधान ने भले ही सभी नागरिकों को पूरे आत्मसम्मान के साथ जिंदा रहने के अधिकार प्रदान किए हों, मगर हमारे देश की राजनीति स्वाधीनता के बाद से पिछले महीने तक नेता-मंत्री और जनता-जर्नादन में भेदभाव करती आई है। लाल बत्ती लगी सफेद गाड़ियां आमजनता को यह अहसास दिलाती थी कि वह नेता-मंत्रियों के बाद में है। हमारे ही राज्य में अगली सरकार के दिनों जब सड़कों से मुख्यमंत्री का काफिला गुजरता था, तब आमजनता को जो जहां है, उसे वहीं पर रोक दिया जाता था। मुख्यमंत्री के काफिले को सबसे पहले जाने देने के लिए रोके गए वाहनों की भीड़ में एंबुलेंस और मरीजों के फंसे होने की घटना तब आम हुआ करती थी। स्वाधीनता के बाद से ही हमारे देश में लाल बत्ती की परंपरा शुरू हो गई थी। देश के नेता-मंत्री से लेकर उनके परिवार-खासमखास तक लाल बत्ती लगी वाहनों का इस्तेमाल कर आमजनता पर रौब गांठने का कोई मौका नहीं गंवाते थे। लाल बत्ती लगी वाहनों में बैठकर साहबों की मेमसाहब को बाजार में सब्जी खरीदते हुए देखे जाना पिछले महीने तक आम बात हुआ करती थी। मंत्री-अधिकारियों के वाहनों पर लाल बत्ती लगाने के पीछे यह सोच रही होगी कि वह लोग जनता से जुड़े कार्यों को पूरा करने के लिए अथवा जनता की सुध लेने के लिए उनके पास तुरत-फुरत पहुंच सकें मगर, पिछले महीने अर्थात अप्रैल, 17 को नरेंद्र मोदी की कैबिनेट ने यह फैसला लेकर पूरे देशवासियों को चौंका दिया कि राष्ट्रपति के अलावा देश का कोई भी नेता-मंत्री अपने वाहन पर लाल बत्ती का प्रयोग नहीं कर सकेगा। केंद्र सरकार के इस फैसले का जहां एक ओर

आमजनता ने स्वागत किया, वहीं बिहार-बंगाल सरीखे कई राज्यों के मंत्रियों ने इस केंद्र सरकार की क्षमता से बाहर का मामला बताया। बिहार के एक मंत्री ने कहा कि हम केंद्र सरकार की कैबिनेट के फैसले को मानने को बाध्य नहीं है और हमारे राज्य सरकार की कैबिनेट ने ऐसा कोई निर्णय नहीं किया है।

ऐसे हल्के-फुल्के विरोध के बावजूद यदि समग्रता के साथ देखा जाए तो देश भर में इस फैसले का स्वागत किया गया है। अब सवाल यह है कि लाल बत्ती का चलन तो बदल गया, मगर नेता-मंत्रियों की मानसिकता को कैसे बदला जाए। जब केंद्र सरकार ने सरकारी वाहनों पर लाल बत्ती हटाने का फैसला सुनाया तो कई धुरंधर नेताओं ने इसका भी तोड़ निकाल लिया। उन्होंने अपने वाहनों से लाल बत्ती तो हटा दी, लेकिन उनकी सुरक्षा में आगे-आगे चलने वाले सुरक्षाकर्मियों के वाहनों में हुटर (सायरन जैसी तेज आवाज करने वाला यंत्र) लगाकर इसका भी तोड़ निकाल लिया। सड़क से हूटर लगा जब भी कोई वाहन गुजरता है, जनता पहले से ही रास्ता खाली कर देती है ताकि मंत्री-नेताजी को किसी भी प्रकार की तकलीफ न हो।

नरेंद्र मोदी और उनकी कैबिनेट ने जो फैसला लेना था, ले लिया। अब मंत्री-नेता और वरिष्ठ अधिकारियों को अपनी मानसिकता बदलनी पड़ेगी। उनको यह बात समझ लेनी चाहिए कि देश स्वाधीन होने के करीब 70 साल गुजर जाने के बाद अब कोई भी नागरिक आम अथवा खास नहीं रह गया है। कल तक रेलवे स्टेशन पर चाय बेचने वाला देश का प्रधानमंत्री है और मंदिर में भगवान की मूर्ति के सामने घंटी बचाने वाला उत्तर प्रदेश का मुख्यमंत्री। देश बड़ी तेजी से तरक्की के मार्ग पर दौड़ रहा है। देश के प्रधानमंत्री से लेकर साधारण से साधारण नागरिक तक सभी के लिए वक्त महत्वपूर्ण है। ऐसे में किसी मंत्री-नेता की सुरक्षा के नाम पर देश की जनता को सड़क किनारे खड़ा नहीं रखा जा सकता। इस बात का हिसाब करने का वक्त आ गया है कि लाल बत्ती लगे वाहनों की वजह से देश की जनता की मानव संपदा का कितना वक्त, कितना काम और कितनी ऊर्जा बेकार चला जाया करती थी। समय के साथ जब मेरा देश बदल रहा है तो मेरे मंत्री-नेता और अधिकारियों को भी बदलना होगा। वक्त की यही मांग है और देश की भी।

पाक सेना की नृशंसता पर कितने दिन चुप रहेगा भारत

पाकिस्तानी सैनिकों ने अपनी अमानवीय करतूतों को अंजाम देते हुए शहीद हुए भारतीय जवानों के शवों को क्षत-विक्षत कर एक बार फिर सारे अंतर्राष्ट्रीय नियम-कानूनों को ठेंगा दिखाने का काम किया है। विगत 1 मई की सुबह पाकिस्तानी सेना की बार्डर एक्शन टीम (बैट) द्वारा जम्मू-कश्मीर के पुंछ सेक्टर में शहीद हुए दो भारतीय जवानों के शव क्षत-विक्षत किए जाने की घटना को लेकर देश भर में रोष देखा जा रहा है। जम्मू-कश्मीर की भारत-पाक अंतर्राष्ट्रीय सीमा पर बारूदी सुरंग को नाकाम करने गए बीएसएफ के हेड कांस्टेबल प्रेम सागर और जेसीओ परमजीत सिंह पाकिस्तानी सेना की ओर से की गई गोलीबारी में शहीद हो गए थे।

वैसे भी पाकिस्तानी सैनिकों द्वारा अंजाम दी गई यह पहली बर्बर घटना नहीं है। इसके पहले कई बार पाकिस्तानी सेना सारी संवेदनाएं-मानवता को दरकिनार कर भारतीय सेना के जवानों के साथ ऐसी बर्बर हरकतें कर चुकी है। पाकिस्तानी सेना की बुजदिली और बहशीपना किसी से भी छिपा नहीं है। भारतीय

सेना के साथ सीधी लड़ाई लड़ने की हिम्मत तक नहीं जुटा पाने वाले पाकिस्तानी सैनिक भारतीय सैनिकों के शवों के साथ जब भी मौका मिलता है, बर्बरता दिखाने में नहीं चुकते। इस बात का जिक्र करने की भी जरूरत नहीं है कि पाकिस्तानी सैनिक अपने राजनैतिक आकाओं और सेना के उच्च अधिकारियों की शह पर ऐसी करतूतों को अंजाम देते हैं। पाकिस्तानी सेना की मदद से ही आतंकवादी जम्मू-कश्मीर में घुसपैठ कर आतंकी घटनाओं को अंजाम देते हैं। पाकिस्तानी सेना को जब भी आतंकियों को भारत में घुसपैठ करानी होती है, वह लोग अंतर्राष्ट्रीय सीमा पर तैनात सीमा सुरक्षा बल के जवानों का ध्यान भंग करने के लिए बिना वजह फायरिंग करते हैं। भारत-पाक सीमा पर 1 मई की सुबह भी कुछ ऐसा ही मंजर था।

वैसे शत्रु की श्रेष्ठता तभी है, जब वह दुश्मन के साथ आमने-सामने का मुकाबला करे। सैनिकों के शवों के साथ नोंच-खसौट करने को पाकिस्तानी सैनिकों की वीरता नहीं बुजदिली ही कहा जाएगा। पाक सेना के पास वह हिम्मत-हौसला ही नहीं है, जिसके दम पर वह भारतीय सेना के सामने खड़ी तक हो सके। ऐसी स्थिति में सवाल यह उठता है कि इतना कुछ हो जाने के बाद भी भारत हाथ पर हाथ धरे क्यों बैठा है। पूरे देश ने सुना शहीद सैनिकों के बच्चे अपने पापा के सिर के बदले, दुश्मन के 50-50 सिर मांग रहे हैं। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी से लेकर केंद्रीय गृह मंत्री राजनाथ सिंह, रक्षा मंत्री अरुण जेटली तक कह रहे हैं कि सैनिकों का बलिदान बेकार नहीं जाएगा। बदला कैसे, कब, कहां लिया जाए, यह भारतीय सेना तय करेगी। ऐसे में भारतीय जनमानस की उबाल खाती भावनाओं का क्या। यह पहला मौका नहीं है जब पाक ने ऐसी नापाक हरकत की है और भारतीय नेताओं ने पाक को देख लेने की धमकी दी है। मगर, धमकी का असर जमीन पर नहीं दिखा तो संभावना है कि पड़ोसी देश इसे भारत की केवल गीदड़ भभकी समझे। लिहाजा अब एक बार फिर सर्जिकल ऑपरेशन जैसे किसी अभियान के छेड़े जाने की जरूरत नहीं है। हमारी मीडिया दो दिन से देश को यह बात चीख-चीखकर बता रही है कि पाकिस्तानी सेना की बॉर्डर एक्शन टीम के जवान लाइन ऑफ कंट्रोल को पार कर भारतीय सीमा के कई सौ मीटर अंदर तक आए और सैनिकों के शवों को क्षत-विक्षत कर वापस अपने

इलाके में भाग खड़े हुए। इस बात को गंभीरता से लिए जाने की जरूरत है कि भारतीय जवानों की कड़ी चौकसी के बावजूद पाकिस्तानी सैनिक भारतीय सीमा में घुसकर भारतीय सैनिकों के साथ बर्बरता दिखा अपने इलाकेमें लौटकर कैसे चले गए। क्या यह हमारी सीमा की सुरक्षा व्यवस्था की चूक नहीं है।

भारतीय नेताओं को यह बात समझ लेनी चाहिए कि पाकिस्तान अपनी करतूतों से बाज आने वाला नहीं है। अमरीका के साथ भारत के घनिष्ठ होते रिश्तों ने रूस और चीन जैसे देशों को पाकिस्तान के करीब ला दिया है। ऐसी स्थिति में पाकिस्तान की हेंकड़ी भी बढ़ गई है। पाकिस्तान को उसकी करतूतों की सजा देने के लिए जरूरी है कि एक बार फिर सर्जिकल ऑपरेशन जैसा कुछ किया जाए, चाहे सेना ही उसका वक्त, स्थान और तरीका तय करे। एक बात और देशवासियों को यह बात समझ में नहीं आ रही कि इतना कुछ हो जाने के बाद भी भारत ने पाकिस्तान को 'मोस्ट फेवरेट नेशन' का दर्जा क्यों दे रखा है। यह बात भी समझ से परे है कि अमरीका से पाकिस्तान को आतंकी देश घोषित करने की मनुहार करने वाला भारत स्वयं पाकिस्तान को आतंकी देश घोषित क्यों नहीं करता। यह बात समझ लेनी चाहिए कि दुश्मन आपका हो तो कदम भी आपको ही उठाने पड़ेंगे। दूसरों के सहारे दुश्मन को साधने की रणनीति हमेशा सफल साबित नहीं होती।

औपचारिकता मात्र है 'मजदूर दिवस', अब भी नहीं मिलता श्रम का मूल्य

विश्व भर में मई महीने का पहला दिन मजदूर दिवस के रूप में मनाया जाता है। मजदूरों को शोषण से मुक्त कराने के उद्देश्य से आयोजित इस दिवस पर विश्व के सभी देश भले ही साल में एक दिन के लिए ही सही मजदूरों के बारे में कहते-सुनते, बोलते-विचारते हैं। मई दिवस यह भी साबित करता है कि दुनिया भर में मजदूरों के हितों को लेकर आवाज उठाने वाले, आंदोलन करने वाले लोग आज भी हैं। मगर, मजदूरों के हक में आवाज आखिर उठाने वाले कौन हैं। क्या कभी कहीं भी, किसी भी देश में मालिक पक्ष ने मजदूरों के साथ हो रहे अन्याय-शोषण के बारे में चर्चा की है। ऐसा कहीं नहीं होता, क्योंकि कोई भी सामने लगे दर्पण में अपनी करतूतों को देखना नहीं चाहता। मजदूरों में सदियों से यह अवधारणा प्रचलित है कि मालिक पक्ष उन्हें इंसानों की श्रेणी में शुमार नहीं करता। मजदूरों के जीवन में भी दुख-दर्द, भूख-गरीबी हो सकती है, मालिक पक्ष को इस बिंदु पर तनिक ठहरकर सोचने भर की फुर्सत नहीं है।

मई दिवस के दिन भी पूरी दुनिया में मजदूरों का शोषण किया जाता है। मई दिवस के दिन मजदूरों से काम करना भी एक प्रकार का शोषण ही है। मजदूरों में विभेद पैदा कर फायदा उठाने की थ्यौरी पूरी दुनिया में पिछले कई सौ सालों से चली आ रही है। पूरी दुनिया कहां से कहां पहुंच गई। लोगों ने कितनी तरक्की कर ली, मगर मजदूरों की दुनिया आज भी वैसी की वैसी ही है। टूटी झोपड़ी, टपकती छत, खाली पेट और तंग हाथ यह सारे मजदूरों के गहने हैं। मजदूरों की झोपड़ी में आज भी अभाव-अज्ञानता और अन्याय का घनघोर अंधेरा है। असम के चाय बागानों में काम करने वाले चाय मजदूरों की संघर्ष भरी जिंदगी की बिना चर्चा किए हम मजदूर दिवस पर सटीक ढंग से आलोकपात नहीं कर सकते। चाय बागानों के मजदूरों तक आज भी स्वास्थ्य, शिक्षा, रोजगार, आर्थिक स्वावलंबन की रोशनी नहीं पहुंची है। विभिन्न प्रकार के अंधविश्वासों से घिरे चाय बागानों में चाय मजदूरों का किस तरह से शोषण किया जाता है, इस पर अधिक कुछ लिखने की जरूरत नहीं है। संसदीय कार्य मंत्री चंद्रमोहन पटवारी ने विधानसभा सत्र के दौरान कांग्रेस के विधायक दुर्गा भूमिज द्वारा पूछे गए एक तारांकित सवाल के जवाब में सदन को बताया था कि ब्रह्मपुत्र और बराक घाटी के चाय मजदूरों को दैनिक मजूरी के रूप में क्रमशः 115 रुपए और 95 रुपए दिए जाते हैं। श्री पटवारी का यह बयान भी मजदूरों के शोषण की तस्वीर को स्पष्ट करने को काफी है। इस बात से भी किसी को इंकार नहीं है कि मजदूरों के हितों की रक्षा के नाम पर बने मजदूर संगठन भी अनपढ़ भोले-भाले मजदूरों का कम शोषण नहीं करते हैं। मजदूर नेताओं के मालिक पक्ष से मिलकर मजदूरों के हितों की अनदेखी कर अपना उल्लू सीधा करने की कम घटनाएं आए दिन प्रकाश में नहीं आती है। मजदूरों को ढाल बनाकर अपना काम निकलवा लेने के मामले में जितना मालिक पक्ष आगे है, मजदूर नेता भी उससे कम पीछे नहीं है। सैकड़ों साल गुजर जाने के बाद भी दुनिया भर में चल रहा मजदूरों का आंदोलन किसी नतीजे पर नहीं पहुंच पाया है। मजदूरों के हितों की रक्षा करने के मामले में विभिन्न देशों की सरकारें भी असफल रही है। ऐसे में यह सवाल उठना लाजमी है कि आखिरकार यह मजदूर आंदोलन कहां जाकर ठहरेगा अथवा इसका नतीजा किस तरह से सुखकर और जनकल्याणी हो सकता है।

विश्व के मजदूरों को मजबूती के साथ उनके पैरों पर खड़ा करने के लिए जरूरी है कि उन्हें सबसे पहले गरीबी के चुंगल से आजाद कराया जाए। गरीबी के बोझ से दबा एक मजदूर कभी भी अपने मालिक के अन्याय के सामने सीना तानकर खड़ा नहीं हो सकता। आज भी मजदूरों की ऐसी हालत है कि एक दिन की मजूरी न मिले तो उनके घर के चूल्हे नहीं जलते। मजदूरों को शिक्षित और जागरूक किए जाने की भी जरूरत को दरकिनार नहीं किया जा सकता। मजदूरों में फैली निरक्षरता ही है, जिसकी वजह से एक मजदूर अपने अधिकारों के बारे में पुख्ता तौर पर जान नहीं पाता। ऐसे में मजदूर नेता उसे जैसी पट्टी पढ़ा देते हैं, वह वैसा ही पाठ पढ़ लेता है। हम दुनिया भर के मजदूरों को अंधेरे में रखकर संपूर्ण विश्व को उजाले की ओर ले जाने का दावा नहीं कर सकते। वैसी हर प्रगति अधूरी है, जिसमें मजदूर शामिल नहीं है। हमें एक सुंदर दुनिया बनाने का सपना जरूर देखना चाहिए, मगर मजदूरों को साथ लेकर।

यात्रा-स्मरण.....

प्राकृतिक छटाओं के बीच बसा है मां वैष्णव देवी का मंदिर

देश के प्रमुख तीर्थस्थलों की सूची में माता वैष्णव देवी मंदिर का नाम भी शामिल है। देश-विदेश में बसे हर एक हिंदू व्यक्ति के मन में वैष्णव देवी दर्शन की कामना रहती है। पहाड़ के ऊपर स्थित मातादी के मंदिर में पूरे साल भर भक्तों की भीड़ लगी रहती है। पहाड़ की तलहटी से 14 किलोमीटर लंबा घुमावदार रास्ते की यात्रा करने के बाद ही श्रद्धालु माता के दर्शन कर पाता है। वैष्णव देवी माता के दर्शन की कामना के लिए मैं पहली अप्रैल को अपने दो दोस्त देवजीत गोस्वामी और अरुण अग्रवाल के साथ हवाई जहाज से गुवाहाटी से नई दिल्ली के लिए रवाना हुआ। दिल्ली में कुछ समय गुजारने के बाद शाम 5.30 बजे श्री शक्ति एक्सप्रेस से कटरा की यात्रा पर निकल पड़ा। अगली तड़के 5 बजे जब कटरा रेलवे स्टेशन पर उतरा तो वहां खुद को प्राकृतिक सौंदर्य और माता की भक्ति से सराबोर एक अलौकिक माहौल में पाया। अत्याधुनिक

सुविधाओं से लैस कटरा रेलवे स्टेशन किसी अंतर्राष्ट्रीय स्तर के रेलवे स्टेशन से कम नहीं था। यहां का साफ-सुथरा, स्वच्छ माहौल प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के स्वच्छ भारत अभियान का एक प्रामाणिक दस्तावेज सरीखा लग रहा था। स्टेशन पर एक कप गर्मागरम चाय की चुस्की लेने के बाद पहले से बुक कराए गए एक होटल में जाकर आराम करने लगा। रेल में ही हल्की-हल्की नींद आने लगी थी और अभी भी सोने का ही मन कर रहा था।

कटरा से माता के मंदिर तक जाने के लिए हेलीकाप्टर सेवा भी है और श्रद्धालु यदि चाहे तो टेढ़े-मेढ़े पहाड़ी रास्ते से पैदल चलकर अथवा घोड़े अथवा पालकी से भी मंदिर तक जा सकते हैं। पहाड़ पर स्थित मंदिर तक घोड़े से जाने के लिए 900 रुपए, पालकी पर जाने के 4500 रुपए, पीठ पर चढ़कर जाने के 500 रुपए बतौर शुल्क देने पड़ते हैं। यहां इस बात का भी जिक्र करना जरूरी है कि वैष्णव देवी दर्शन और यात्रा का तब तक पूरा पुण्य नहीं मिलता, जब तक श्रद्धालु भैरव के दर्शन नहीं कर लेता। लिहाजा वैष्णवी दर्शन के बाद श्रद्धालु को भैरव मंदिर दर्शन को जाना अनिवार्य है। भैरव मंदिर तक घोड़े और पीठ पर जाने के 300 रुपए और पालकी में जाने के 2500 रुपए देने पड़ते हैं। हमने दो महीने पहले ही आनलाइन से हेलीकाप्टर की टिकटें बुक करा ली थी। लिहाजा हमने हेलीकाप्टर से अपनी आगे की यात्रा शुरू की। हेलीकाप्टर यात्रा करने के लिए 2240 रुपए किराए के रूप में देने पड़ते हैं। हिमालय और ग्लोबल नामक दो कंपनियां वहां हेलीकाप्टर सेवाएं चला रही है। एक हेलीकाप्टर में अधिक से अधिक छह यात्री बैठ सकते हैं और एक दिन में एक हेलीकाप्टर 80 फेरे लगाता है।

वैष्णव देवी मंदिर जाने वालों को हर कदम पर कड़े नियम और अनुशासन से होकर गुजरना पड़ता है। मंदिर दर्शन के लिए कटरा में ही कूपन लेने पड़ते हैं और आनलाइन द्वारा ही कूपन प्राप्त किए जा सकते हैं। ऐसे कूपन को पर्ची कहा जाता है और पर्ची दिखाने पर ही मंदिर दर्शन की अनुमति दी जाती है। जो श्रद्धालु पर्ची नहीं लेते हैं, उन्हें 14 किलोमीटर का फासला तय कर पहाड़ के शिखर तक चढ़ने के बाद भी देवी दर्शन का सौभाग्य प्राप्त नहीं होता। यह पर्ची वैष्णव देवी साईन बोर्ड द्वारा जारी की जाती है। पहाड़ पर स्थित हैलीपेड पर

हेलीकाप्टर से उतरने के बाद हेलीकाप्टर वालों ने हमें ढाई घंटे में देवी दर्शन पर पुनः उसी स्थान पर आने को कहा। साथ में यह भी हिदायत दी गई कि समय पर लौटकर नहीं आने की स्थिति में वापसी संभव नहीं भी हो सकती है।

नवरात्रा के मौके पर वैष्णव देवी मंदिर को बहुत ही शानदार-मनभावन तरीके से सजाया गया था। शरत और बसंत काल की दोनों ही नवरात्रा का वैष्णव देवी के मंदिर में पालन किया जाता है। पूरे मंदिर को रजनीगंधा और गुलाब के फूलों से सजाया गया था। फूलों के बीच चमक रही रंग-बिरंगी लाइटें माहौल को और भी भक्तिपूर्ण बना रही थी। मैं इससे भी पहले कई बार मंदिर आया हूं, लेकिन इस बार माता का दरबार मुझे अधिक आकर्षित करता हुआ लगा। देवी दर्शन के लिए हम पांच नंबर वाली कतार में लग गए। पहले से परिचित एक सैन्य अधिकारी ने हमें वीवीआईपी टिकट होने के कारण एक विशेष कतार से देवी-दर्शन की विशेष सुविधा उपलब्ध कराई। आमतौर पर वीआईपी कूपन रहने पर पांच नंबर गेट की कतार के बीच से मंदिर में प्रवेश कराया जाता है। जो भी हो अब की बार माता का मंदिर मुझे पिछली बार की अपेक्षा अधिक साफ-सुथरा नजर आया। यात्री भी अपने साथ लाए कचरा तय स्थान पर ही फेंक रहे थे और उस कचरे को समय रहते साफ करने की भी मंदिर प्रबंधन की ओर से शानदार व्यवस्था की गई थी। नवरात्रा होने के कारण मंदिर में बड़ी संख्या में श्रद्धालुओं की भीड़ लगी थी। देश-विदेश से बड़ी संख्या में श्रद्धालुगण अपने परिवार के साथ देवी दर्शन को आए थे। लंबी कतारों का दूसरा छोर दिखाई ही नहीं दे रहा था। हमारी कतार में तामिलनाडु से आया एक 70 वर्षीय श्रद्धालु हमारे पहले खड़ा था। उसने बताया कि वह साल में कम से कम एक बार वैष्णव देवी दर्शन को जरूर आते हैं। उनको देखकर यह बात समझ में आई कि उम्र की सीमा किसी भी श्रद्धालु को तीर्थ भ्रमण से नहीं रोक सकती। डेढ़ घंटे बाद हमें मंदिर के अंदर प्रवेश करने का मौका मिला। अंदर जाकर एक बार तो लगा, जैसे हमलोग वैकुंठपुरी में आ गए हैं। पहले से परिचित एक पुजारी ने हमारी मदद की।

देवी दर्शन के बाद हम मंदिर के प्रधान पुजारी के निवास पर पहुंचे। उनके साथ हमारा पुराना परिचय है। नवरात्रा के कारण वे अपने घर में विशेष पूजा-

अर्चना में व्यस्त थे। करीब 20 मिनट के बाद उनके साथ हमारी मुलाकात हो पाई। पुजारी जी से मिलकर बहुत अच्छा लगा। करीब 10 मिनट तक उनके साथ वैष्णव देवी मंदिर के बारे में बातचीत की। मात्र दस मिनट में ही उन्होंने मुझको मंदिर के बारे में बहुत ही सुंदर तरीके से बताया। मैंने उनको गुवाहाटी आकर कामाख्या दर्शन करने का न्यौता भी दिया। इसके बाद हमारी वापसी की बारी थी। मंदिर प्रांगण छोड़ने से पहले हम काउंटर पर पहुंचे और कई दोस्तों द्वारा मंदिर के लिए भेजे पैसे वहां जमा करवाकर रसीद ली। वहां किसी भी प्रकार का चंदा लिए जाने पर उसकी रसीद देने का नियम है और इस नियम का बड़ी ही सख्ती के साथ पालन किया जाता है। इसके बाद हम हेलीकाप्टर से मात्र तीन मिनट का सफर तय कर नीचे पहुंचे और रात को पहले से बुक की गई टिकट पर कटरा से नई दिल्ली के लिए रवाना हो गए।

पहाड़ी गुफा में स्थित देवी के मंदिर के बारे में पूछने पर मंदिर के एक पुजारी ने बताया कि इस गुफा में हजारों सालों से देवी की पूजा-अर्चना की जा रही है। पुजारी ने बताया कि भू-वैज्ञानिक भी इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि यह गुफा हजारों साल पुरानी है। मगर यहां देवी पूजन कब से हो रहा है, इसकी सटीक जानकारी कहीं उपलब्ध नहीं है। महाभारत में पहली बार देवी के बारे में जिक्र मिलता है। कौरव-पांडव के कुरूक्षेत्र युद्ध के समय भगवान श्रीकृष्ण के कहने पर अर्जुन ने उक्त गुफा में देवी की पूजा-अर्चना कर उनसे आशीर्वाद मांगा था। धर्म ग्रंथों में यह भी उल्लेख है कि देवी को संतुष्ट करने के लिए पांडव इस गुफा में आए थे। लोगों में कथा प्रचलित है कि त्रिकूट पहाड़ के निकटवर्ती पहाड़ की गुफा में स्थित पांच शिला-स्तंभ पांच पांडवों की स्मृति में खड़े हैं। जम्मू-कश्मीर के त्रिकूट पहाड़ पर स्थित वैष्णव देवी के मंदिर में स्थित वैष्णव देवी दुर्गा का ही एक स्वरूप है। अनादिकाल से ही शक्ति की देवी के रूप में वैष्णव देवी की पूजा-अर्चना की जा रही है। रक्त वस्त्र परिधान युक्त देवी का स्वरूप अष्टभुजी है। देवी के हाथों में सुदर्शन, कमल, तलवार, शंख, धनुष, त्रिशूल और गदा सुशोभित है और एक हाथ से देवी अपने भक्तों को आशीर्वाद और अभयदान देती प्रतीक होती हैं। देवी का वाहन शेर है, लिहाजा सभी भक्त सर्वशक्तिमान माताश्री का आशीर्वाद पाने को लालायित रहते हैं। माता का

आशीर्वाद पाने का ही जुनून है, जो भक्तों को 14 किलोमीटर लंबा टेढ़ा-मेढ़ा पहाड़ी रास्ते पर नंगे पांव पैदल चलने का हौसला देता है। मंदिर के पुजारी बताते हैं कि पहले शारदीय नवरात्रा के दौरान मंदिर में दर्शकों की भारी भीड़ जमा होती थी और तीन महीने तक भक्तों के आने-जाने का तांता लगा ही रहता था। साल के बाकी बचे आठ महीने मंदिर में भक्तों की भीड़ अपेक्षाकृत कम ही रहा करती थी, मगर जब से जम्मू तक रेल सेवा शुरू हुई है, तब से जम्मू से पैदल चलकर अथवा घोड़ा-गाड़ी से आने वाले भक्तों की संख्या में भी खासी बढ़ोतरी हुई है। अब कटरा तक रेल सेवा का संप्रसारण हो जाने की वजह से भक्तों की संख्या कई गुणा बढ़ गई है।

वैष्णव देवी मंदिर संचालन के लिए वर्ष 1986 में श्रीमाता वैष्णव देवी मंदिर बोर्ड का गठन किया गया। आज के दिन मंदिर के सभी कार्यों का संचालन इसी बोर्ड द्वारा किया जाता है। देश-विदेश से आने वाले भक्तों की सुख-सुविधाओं के लिए मंदिर बोर्ड ने पिछले कई सालों में बहुत सी योजनाओं को साकार किया है। मंदिर बोर्ड की यह सेवा भावना उल्लेखनीय व स्तुति योग्य है।

अक्लांत नायक : अरुण शर्मा

मौलिक सृजन और अपनी बात को अलग अंदाज से रखने के कारण नाट्यकार-साहित्यकार अरुण शर्मा राज्य की नाट्यप्रेमी जनता के साथ-साथ पाठक वर्ग में बेहद लोकप्रिय थे। मृदुभाषी-परोपकारी अरुण दा के निधन से न सिर्फ राज्य के नाट्य जगत को बल्कि साहित्य जगत को भी भारी क्षति पहुंची है। उन्होंने 27 मार्च, 2017 को दिल्ली के एक अस्पताल में अंतिम सांस ली। उनके चले जाने से साहित्य जगत में जो शून्य पैदा हुआ है, उसकी भरपाई संभव नहीं लगती। मौलिक सृजन को सबसे अधिक अहमियत देने वाले अरुण दा के साथ सांस्कृतिक कारणों से परिचय हुआ था। वे 'गति असम' नामक स्वैच्छा सेवी संगठन के अध्यक्ष भी थे। इस संगठन से जुड़ा होने की वजह से मेरे उनके साथ बेहद आत्मीयता भरे संबंध थे। इसके अलावा आवाहन थिएटर द्वारा 'भवेंद्र नाथ सइकिया पुरस्कार' कार्यक्रम के दौरान मेरी उनसे निकटता और भी घनिष्ट हो गई थी। अपने आप में विद्या का सागर छिपाए इस व्यक्ति को मैंने हमेशा ही ज्ञान की खोज में पाया। अपने मौलिक सृजन के लिए वे हमेशा कुछ न कुछ खोजते रहते थे। मैं जब भी उनसे मिलता, बात करता था। उसका उद्देश्य सृजन, साहित्य से जुड़ा ही होता था। उनकी हर बात में, हर सोच में सागर की गहराई और आकाश जैसी विशालता होती थी। यही कारण था कि उनकी कथनी और करनी में कभी भी फर्क देखने को नहीं मिला। बड़ी खामोशी के साथ साहित्य साधना में लीन अरुण दा ने असमिया लोगों की अनुभूति-भावनाओं की सदैव कद्र की। संभवत: यही कारण था कि उनकी रचना-नाटकों में असमिया समाज से जुड़ी छोटी-बड़ी घटनाओं का चित्रण बेहद शानदार तरीके से होता था। उनकी रचना 'आशीर्वादर रंग' में उनकी इस सोच की साफ झलक देखने को मिलती है।

उनके जीवन की सबसे बड़ी खासियत यह थी कि वे अनुशासन प्रिय और समय के साथ कदम मिलाकर चलने में विश्वास रखते थे। यही कारण था कि वे अपना हर एक काम पूर्व निर्धारित समय पर पूरा कर लिया करते थे। समय की पाबंदी उनके व्यक्तित्व की सबसे बड़ी पहचान थी। किसी काम से कभी भी उनसे मिलने गया तो उनको पूर्व निर्धारित समय अनुसार इंतजार करते हुए ही पाया। वे आगंतुक को बिना वजह इंतजार करने के पक्षधर नहीं थे। उन्होंने कभी नहीं चाहा कि उनकी वजह से किसी दूसरे का समय नष्ट हो। कोई भी उनसे जब कुछ लिखने का आग्रह करता था तो आमतौर पर वे उसको मना नहीं करते थे। किसी को भी निराश करना उनके व्यक्तित्व में नहीं था। जीवन में सफलता के सभी मुकाम हासिल करने के बाद भी अरुण दा का काम के प्रति जो जुनून था, वह रंच मात्र भी कम नहीं हुआ था। यही कारण था कि जीवन के अंतिम क्षणों में भी उनकी कलम की गति धीमी नहीं पड़ी। 'आर्शीवादर रंग' उपन्यास से उनकी एक अलग ही पहचान उभरकर सामने आती है। इसके अलावा 'निवारण भट्टाचार्य', 'कुकुरनेचिया मानुह', 'नेपोलियन आरु डिजेरी' जैसे लोकप्रिय नाटक लिखने वाले इस नाट्यकार ने कभी भी सस्ती लोकप्रियता को महत्व नहीं दिया। समाज हित से संबंधित मसलों पर तवज्जो देकर उन्होंने सृजन के लिए ही मानों कलम थामी थी। पद्मश्री पुरस्कार से सम्मानित अरुणा दा को साहित्य अकादमी पुरस्कार, संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार, असम उपत्यका साहित्य पुरस्कार, शंकराचार्य अवतार पुरस्कार, जापान प्राइज इंटरनेशनल पुरस्कार, एशियन पैसिफिक ब्रॉडकास्टिंग यूनियन पुरस्कार जैसे राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय स्तर के कई पुरस्कार हासिल करने के बाद भी अहंकार उनको छू तक नहीं गया था। एक बार उनसे पूछने पर भी इतने सम्मान मिलने पर भी आप में कभी अहम नहीं दिखता, के जवाब में उन्होंने कहा था कि पुरस्कार-सम्मान यह सब कुछ क्षणों के लिए आनंद प्रदान करते हैं। मनुष्य को अपने काम पर विश्वास करना चाहिए, सच्चा सुख तो उसी में छिपा है। उन्होंने कहा था कि बजाए पुरस्कार-सम्मान की बातों को याद रखने केआपको अपने व्यक्तित्व-व्यवहार से जुड़ी बातों पर भी अधिक ध्यान रखना चाहिए।

उनके साथ गुजारे पल मेरे लिए हमेशा ही प्रेरणा दायक रहेंगे। अरुण दा आज हमारे बीच नहीं हैं, मगर उनकी सृष्टि-रचना सदैव पाठक-दर्शकों के हृदय में सजीव रहेगी।